प्रकाशक
सुदर्शनकुमार, बी. ए, एल-एल बी,
प्रबन्धाध्यक्ष श्री भारत भारती लिमिटेड,
१, अन्सारी रोड, दरियागज,
दिल्ली-७।

मुद्रक
नरेन्द्र प्रिंटिंग प्रेस,
२०, मॉडल बस्ती,
दिल्ली।

दो शब्द

हिन्दी-साहित्य का आधुनिक काल अनेक नव्य एव भव्य विभूतियो से विभूषित है। इसमें साहित्य की विभिन्न धाराएँ बहुमुखी होकर प्रवाहित हुई हैं। देश की राजनैतिक, सामाजिक एवं सास्कृतिक चेतना ने उद्बुद्ध विवर्तनो ने प्रेरित होकर ही यह साहित्य-सरिता नवीन भावतरङ्गो को परिस्फुरित कर रही है। इसीलिए आधुनिक काल के साहित्य का इतिहास सर्वथा गरिमाशाली एव वर्तमान-मानव की जीवनत्वरा को नितान्त सहयोग देता हुआ प्रतीत होता है। अग्रेजो की राज्यसत्ता की नीव के जम जाने के बाद जिस तरह भारतीय जीवन के ढाँचे में आमूलचूल परिवर्तन हुए—नई धारणाएँ एव मान्यताएँ गतिशील हुईं—प्राचीन रूढियो तथा गतानुगतिक प्रवृत्ति की कदर्थना हुई—वही रूप एव प्रवृत्ति हमारे इस साहित्य का भी परिरम्भण कर रही है। भाषा भी पुरानी कंचुली उतार कर खडीबोली रूपी नया शरीर लेकर पुनर्जन्म के श्रेय को प्राप्त हुई है। इससे पूर्व हिन्दी के पद्य एव गद्य की भाषा-व्यवस्था की भी विचित्र ही स्थिति थी। पद्य के लिए व्रजभाषा तथा गद्य के लिए खडीबोली का आवाहन होता था। ससार के साहित्य में यह विभिन्नता एक रहस्य बनी हुई थी—एक पहेली थी। आधुनिक काल के साहित्यिको ने शनै शनै इस विपर्यय के विरुद्ध भी शखनाद किया। इस लक्ष्मणरेखा को आक्रान्त होना पडा। पुरानी लकीर पतली पडने लगी और पद्य तथा गद्य दोनो के लिए एक ही माध्यम खडीबोली मान्य हो गई।

भाषा के इस स्वस्थ एव स्वाभाविक निर्णय का ही फल था कि साहित्य के प्रतिपाद्य विषय में भी क्रान्ति का स्फोट हुआ। अनेक विषयो

को लेकर काव्य-निर्माण होने लगा। देश-प्रेम, भाषा-प्रेम, समाज सुधार आदि नवीन विपय कवियो के लिए उपजीव्य बने। साहित्य का यह युग नवीन जागरण का सन्देश लेकर आया। इसमें अनेक समस्याओ का हल विद्यमान था, इसलिए इसने साहित्य की गतिविधि को सौम्य एव स्वस्थ रूप प्रदान किया। कवियो का वैदुष्य भाषा के दाँव-पेंच में ही व्यय न होकर काव्य के कलेवर में अपूर्व सौरभ बखेरने लगा।

उपर्युक्त कारणो के आधार पर हिन्दी-साहित्य के आधुनिक काल का अध्ययन जहाँ नितान्त मनोमुग्धकारी होगा वहाँ इसका महत्त्व भी सर्वथा अक्षुण्ण ही रहेगा। इस विचार से प्रेरित होकर ही वर्तमान युग के मुख्य-मुख्य प्रतिनिधि कवियो का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। साहित्य के अग-प्रत्यङ्ग का गम्भीर अध्ययन करने वाले विद्यार्थियो के लिए यह पूर्वपीठिका का कार्य करेगा। इस विवेचन में इन कवियो की उन सम्पूर्ण प्रवृत्तियो का लेखा मिलेगा, जिनके कारण उनके काव्य की आत्मा ने नवीन उद्‌गार प्रकट किये हैं। मुझे विश्वास है कि इन कलाकारो का साहित्यिक परिशीलन हमारे विद्यार्थियो को नवीन दृष्टि देगा तथा मार्ग प्रशस्त करेगा।

—लेखक

क्रम

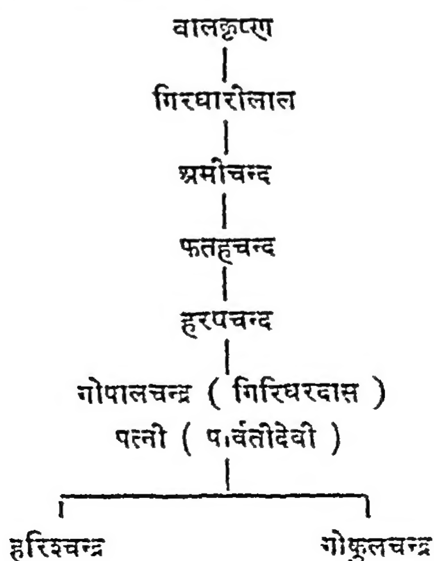
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

परिचय

श्री भारतेन्दु जी के आविर्भाव से पूर्व भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि के सम्बन्ध मे इतना ही निर्देश आवश्यक है कि उस समय मुस्लिम शासन अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था और जहाँ-तहाँ अंग्रेजी शासन का सूत्रपात भी हो चुका था।

भारत मे अतीत आदर्शों के प्रति श्रद्धा का स्रोत उमड रहा था, अपनी प्राचीन संस्कृति के पुनरुद्धार के लिए जनसाधारण में एक स्फूर्तिमय एव आशापूर्ण वातावरण जँभाई ले रहा था और सुदूर-पश्चिम में भी नव्य भव्य परिवर्तन हो रहे थे, ऐसी भारतीय मानसिक एवं सास्कृतिक परिस्थितियो में हमारे आधुनिक साहित्य-महारथी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ।

भारतेन्दु जी ने 'उत्तरार्ध भक्तमाल' में अपने वश का परिचय अधो-निर्दिष्ट 'वशवृक्ष' के रूप मे दिया है।



भारतेन्दु जी ने 'मधुमुकुल' नामक ग्रन्थ में लिखा है, "कविवर गिरिधरदास तनूभव हरिश्चन्द्र कृत गाने" अर्थात् भारतेन्दु जी गिरिधर-दास के सुपुत्र थे। 'चन्द्रावली नाटिका' में भी आपने अपने को गिरिधरदास का ही पुत्र बताया है। इसके अतिरिक्त आपने 'नाटक' नामक ग्रन्थ के परिशिष्ट में भी अपने पिता का नाम कविवर गिरिधरदास (वास्तविक नाम बाबू गोपाल-चन्द्र जी) ही लिखा है। और 'प्रेम-प्रलाप' में भी लिखा है 'गायति गोकुल-चन्द्राग्रज कवि हरिश्चन्द्र कुल चन्द्रं', इस पद्यांश से प्रतीत होता है कि आप गोकुलचन्द्र के 'अग्रज' थे, जैसा कि उपर्युक्त वंश-वृक्ष से भी परिलक्षित है।

ऐसा प्रसिद्ध है कि भारतेन्दु जी के पिता भी एक प्रतिभाशाली कवि थे। उनके विषय में स्वयं भारतेन्दु जी लिखते हैं—"जिन श्री गिरिधर-दास कवि, रचे ग्रन्थ चालीस" अर्थात् आपके पिता जी ने ४० चालीस ग्रन्थ लिखे थे, जिनमें भारती-भूषण, रस-रत्नाकर, नहुष नाटक, जरासन्ध-वध, भाषा-व्याकरण और गर्गसंहिता आदि उल्लेखनीय हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जन्म-संवत् तथा तिथि के संबंध में एक साधारण-सा मतभेद पाया जाता है। स्वर्गीय राधाकृष्णदास ने भाद्रपद शुक्ल ७ (ऋषि-सप्तमी) तदनुसार ता० ६ सितम्बर सन् १८५० और श्री ब्रजरत्नदास ने भाद्रपद शुक्ल ५ (ऋषि-पंचमी) तदनुसार ता० ७ सितम्बर सन् १८५० माना है। इन दोनों महानुभावों के मत में केवल दो दिन का अन्तर पाया जाता है। इसी प्रकार बाबू श्यामसुन्दरदास ने महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी की गणना के आधार पर भाद्रपद शुक्ल ७ (सप्तमी) तदनुसार ता० ६ सितम्बर 'सोमवार' का ही दिन निश्चित समझा है। परन्तु हमें भारतेन्दु जी के जन्म-संवत् एवं तिथि के विषय में अधिक विश्वसनीय मत श्री ब्रजरत्नदास का ही प्रतीत होता है, क्योंकि आप केवल साहित्यिक ही नहीं, प्रत्युत भारतेन्दु जी की सुपुत्री विद्यावती के द्वितीय पुत्र भी हैं, दौहित्र के नाते आपकी साक्षी, अपेक्षाकृत दूसरे विद्वानों से अधिक मान्य प्रतीत होती है।

भारतेन्दु जी की माता का नाम पार्वतीदेवी था। कहा जाता है कि अभी आप ५ वर्ष के ही थे कि आपकी माता का देहान्त हो गया और आपको कालीकदमा दाई तथा तिलकधारी नौकर ने ही पाला। विमाता का इन पर विशेष स्नेह नहीं था और पढ़ने-लिखने में विशेष रुचि न होते हुए भी ३–४ वर्षों तक 'क्वीन्स कालेज, बनारस' में पढ़ते रहे और परीक्षाओं में सफल होते रहे।

आप इतने कुशाग्रबुद्धि थे कि एक बार पाठ की आवृत्ति करते ही आपको पाठ स्मरण हो जाता था। बाल्यकाल में पं० ईश्वरीदत्त से आपने पढ़ा। मौलवी ताजअली आपके उर्दू के उस्ताद तथा पं० नन्दकिशोर अंग्रेजी के शिक्षक थे। उस समय काशी के रईसों में केवल राजा शिव-प्रसाद 'सितारेहिन्द' ही अंग्रेजी जानते थे, अतः आप समय-समय पर इन से भी सहायता लेते रहते थे। कृतज्ञता के नाते आप इन्हें अपना 'गुरु' मानते थे।

भारतेन्दु जी ने कालेज छोड़ दिया और स्वतन्त्र स्वाध्याय करना आरंभ कर दिया। आपने मराठी, बँगला, गुजराती और पंजाबी आदि लगभग २०–२५ प्रान्तीय भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया। प्रान्तीय भाषाओं में भी आपकी रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। यद्यपि आपकी कवित्व-प्रतिभा स्वाभाविक थी तथापि पं० लोकनाथ आपके काव्यगुरु माने जाते हैं।

कहा जाता है कि जब आप ५–६ वर्ष के थे तो अपने पिताजी को 'बलराम-कथामृत' की रचना करते देख आपने भी कविता करने की उत्कट इच्छा प्रकट की। आज्ञा पाते ही आपने निम्नलिखित पद कहा—

लै ब्यौंडा ठाडे भये, श्री अनुरुद्ध सुजान।
बानासुर की सैन को, हनन लगे भगवान॥

यह पद सुनते ही इनके पिता जी अत्यन्त विस्मित हुए और कहने लगे

"तू म्हारो नाम वढावेगा"। भारतेन्दु जी की कवित्व-प्रतिभा का यह उदाहरण हिन्दी-साहित्य में अमर रहेगा।

एक वार आपके पिता जी ने 'कच्छप-कथामृत' के मगलाचरण के "करन चहत जस चारु कछु-कछुआ भगवान को" इस अश पर अनेक प्रकार की व्याख्याएँ सुनीं। किसी ने 'कछु-कछुवा भगवान को' और किसी ने कछु, कछुवा भगवान को' ऐसा निर्देश किया। उसी समय भारतेन्दु जी ने कहा कि इन व्याख्याओ के अतिरिक्त 'कछुक छुवा भगवान को' ऐसा भी कहना चाहिए, अर्थात् मेरे पिता जी ने भगवान को कुछ कुछ छुआ है, प्राप्त किया है। यह सुनकर सब आश्चर्य-चकित रह गये।

आपका विवाह केवल १३ वर्ष की आयु में ही शिवाले के रईस लाला गुलाबराय की सुपुत्री मन्नादेवी से हो गया था और १५ वर्ष की आयु में आप सपरिवार तीर्थ-यात्रा के लिए चल पडे। एक बार जब आप जगन्नाथपुरी के बाहर लोगो से मधुरालाप कर रहे थे, तब किसी सज्जन ने आपको दो अशर्फियां प्रदान कीं और कहा कि समय पडने पर इन्हे खर्च कर लेना और यदि खर्च न कर सको तो वापिस कर देना। तदनन्तर सयोगवशात् आप अपनी विमाता से रुष्ट होकर कहीं बाहर चले गये। उस समय आपके पास उन दो अशर्फियों के अतिरिक्त कुछ नहीं था जो समय पडने पर खर्च कर ली गई। इस प्रकार आपको धीरे-धीरे ऋण लेने की बुरी आदत पड गई, यहां तक कि आपको इन दो अशर्फियों के बदले १०–१५ हजार का अपना मकान ही देना पडा था। इस प्रकार कई वार आपको अर्थ-सकट सहना पडा।

एक वार आपने अपनी विमाता से चार रुपये मांगे, पर उसने नहीं दिये। उस समय भी आपने ऋण लेकर अपना काम चलाया।

आप जगन्नाथपुरी की यात्रा से लौटकर वुलन्दशहर और कुचेसर गये। वहां से आपने एक अत्यन्त दु खपूर्ण पत्र अपने भतीजे कृष्णचन्द्र को

लिखा जिससे घरेलू वातावरण के प्रति आपका विक्षोभ प्रकट होता है।

भारतेन्दु जी के दो पुत्र और एक पुत्री विद्यावती थी। पुत्रो का देहान्त हो गया और पुत्री का विवाह देवीप्रसाद के पुत्र वलदेवदास से हो गया। विद्यावती के दो पुत्र और तीन पुत्रियाँ हुई। पुत्रियो का स्वर्गवास हो गया। आपके दूसरे पुत्र हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यिक बाबू व्रजरत्न-दास जी हैं।

'भारतेन्दु' उपाधि के सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक बार काशी के एक प्रसिद्ध प० वालशास्त्री ने कायस्थो को क्षत्रिय वना दिया। बस, इसी बात पर हरिश्चन्द्र ने 'जाति गोपाल की' नामक शीर्षक द्वारा काशी के पडितो की हँसी उडाई। फिर क्या था, हरिश्चन्द्र जी के एक घनिष्ठ मित्र प० रघुनाथ जी बिगड गये और अनाप-शनाप वकने लगे—"जैसे आप अपने सुयश से जाहिर हो, उसी तरह भोगविलास और वडो के असम्मान करने से कलंकी भी हो, इसलिए मैं आपको आज से 'भारतेन्दु' नाम से पुकारूँगा।" इस पर पं० सुधाकर द्विवेदी ने कहा—"कलक तो पूरे चाँद मे देख पडता है आप तो दुइज के चांद हैं जिसके दर्शन को लोग पुण्य समझते हैं। यह सुनकर सब प्रसन्न हुए और हरिश्चन्द्र ने तब से इस उपाधि को अपना गौरव समझा।

इसी सम्बन्ध में पं० रामेश्वरदत्त व्यास ने अपना एक प्रस्ताव लेख-रूप में 'सार-सुधानिधि' पत्र में प्रकाशित किया। समस्त भारत ने उसका अनुमोदन किया। तब से आप 'भारतेन्दु' पुकारे जाते हैं। दयानन्दाब्द की भाँति 'हरिश्चन्द्राब्द' भी आरम्भ हो गया था।

भारतेन्दु जी का व्यक्तित्व महत्त्वपूर्ण था। लोग इनके विविध गुणो की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा किया करते थे। परन्तु इनके कुटुम्बी इनको विलासी एव अपव्ययी समझते थे, इसलिए इनसे रुष्ट भी रहते थे। माधवी और मल्लिका को लक्ष्य बनाकर अनेक प्रकार के लांछन भी लगाते थे। परन्तु

वास्तविकता यह थी कि कवि होने के नाते आप सौन्दर्योपासक अवश्य थे। किसी व्यथित को देखकर आपका हृदय करुणार्द्र हो जाता था। इन दोनो देवियों को भारतेन्दु जी ने आर्थिक सहायता देकर उन्हें आत्म-निर्भर बना दिया। आपकी मडली में राजा से लेकर रक तक सभी विद्यमान रहते थे। आप 'अजातशत्रु' भी कहलाते थे। सच तो यह है कि उन्होंने साहित्य, समाज तथा देश-सेवा में अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया था। वे स्वय लिखते हैं—

सत्यासक्त दयाल द्विज, प्रिय अघहर सुखकन्द।
जनहित कमला तजन जय, शिवि नृप कवि हरिचद॥
चन्द्र टरै, सूरज टरै, टरै जगत ब्योहार।
पै दृढ कवि हरिचद को, टरै न सत्य विचार॥

भारतेन्दु जी की लेखन-शक्ति तथा आशु-कवित्व पर भी प्राय लोग मुग्ध रहते थे। इस विषय में भी वे स्वय लिखते हैं, "जग-जन-रजन आशुकवि, को हरिचद समान।" ये सब आपकी गर्वोक्तियां कही जा सकती हैं।

सेवक गुनीजन के, चाकर चतुर के हैं,
कविन के मीत, चित हित गुन गानी के।
सीधेन सो सीधे, महा बांके हम बांकेन सो,
'हरिचद' नगद दमाद अभिमानी के॥
चाहिबे की चाह, काहु की न परवाह, नेही,
नेह के दीवाने, सदा सूरति निवानी के।
सरबस रसिक के, सुदास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधारानी के॥

रेलो की प्रगति से आपकी यात्राएं भी सुविधा से होने लगी थीं, अनेक प्रकार के अनुभव भी आपने प्राप्त किये थे। इन्हीं यात्राओ में आप

को हिन्दी-प्रदेश और हिन्दी-साहित्य में अनेक अभाव खटके थे, जिनकी पूर्ति के लिए अंग्रेजी शासन का दोषपूर्ण वातावरण होते हुए भी, अंग्रेजी राज्य के आप प्रशसक हो गये और सन् १८६७ में बनारस में 'चौखम्भा स्कूल' की स्थापना की जो आज 'हरिश्चन्द्र कालेज' के नाम से विख्यात है।

'निज भाषा उन्नति' की ओर विशेष ध्यान देते हुए 'कवि-वचन-सुधा' और 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' ये दोनों पत्रिकाएं 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' और 'नवोदिता' के नामो से प्रसिद्ध रहीं। इनके द्वारा हिन्दी-साहित्य को अपनी गतिविधि में विशेष सफलता प्राप्त हुई।

स्त्रियो के लिए 'बालबोधिनी' पत्र प्रकाशित किया। 'कवितावर्धिनी सभा' भी स्थापित की, जिसमें सरदार, सेवक, दीनदयालगिरि, नारायण, द्विजकवि (मन्नालाल) इत्यादि ब्रजभाषा के कवि रहते थे। एक 'पैनी रीडिंग क्लब' की भी स्थापना की, जिसमें प्रसिद्ध लेखको के लेख पढ़े जाते थे और मनोरंजन की सामग्री भी प्रस्तुत की जाती थी। वैष्णव धर्म तथा ईश्वरभक्ति के लिए 'तदीय समाज' की स्थापना की थी, जिसके द्वारा, गोरक्षा-प्रसार और मदिरा-सेवन आदि दूषित आचरणों का विरोध किया जाता था। 'तदीय समाज' से 'भगवद्भक्तितोषिणी' नामक पत्रिका भी प्रकाशित होती थी। आपने 'वैश्यहितैषिणी सभा' की स्थापना करके अपनी पुत्री के विवाह में अश्लील गीतों का गाना भी बंद करा दिया था। आपने श्रीनिम्बार्क, श्रीरामानुज, श्रीमध्व और श्रीविष्णु-स्वामी नामक सम्प्रदायों में प्रविष्ट, प्रवीण और पारंगत नाम की तीन परीक्षाएं भी निश्चित की थीं जिनमें सफल हुए छात्रो को पारितोषिक भी दिये जाते थे।

इनके अतिरिक्त काशी सार्वजनिक सभा, काशी-नरेश की धर्मसभा, बनारस इन्स्टीट्यूट, ब्रह्मामृतवर्षिणी, डिबेटिंग क्लब, यंगमैन ऐसोसियेशन, कारमाइकेल लाइब्रेरी और बाल-सरस्वती-भवन संस्थाओं के आप प्रधान सहायक रहे थे।

आपने सन् १८६८ में विलियम म्योर के समय में हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाये जाने के लिए घोर परिश्रम किया था, परन्तु परिस्थितियो की प्रतिकूलता के कारण आपको सफलता न मिली।

कहा जाता है कि एक बार हरिश्चन्द्र जी के पिता स्नान करके तर्पण कर रहे थे तो आपने कहा था, "पानी में पानी डालने का क्या लाभ ?" यह सुनकर पिता जी बोले थे, "जान पडता है तू कुल बोरेगा।" और जब आपके पिता जी ने आपकी प्रथम कविता सुनी थी तब कहा था, "तू म्हारा नाम बढावेगा।" इस प्रकार भारतेन्दु ने पिता से दोनों प्रकार के वचन सुने।

आपने अपने जीवनकाल में ३३ दिनों की एक लम्बी यात्रा की। इस यात्रा में आपने कानपुर, लखनऊ, सहारनपुर, मसूरी, हरिद्वार, लाहौर, अमृतसर, दिल्ली, ब्रज और आगरा आदि स्थानो का पर्यटन किया और बडा भारी अनुभव प्राप्त किया। फिर पुष्करतीर्थ की यात्रा के लिए अजमेर गये। आपने उन्हीं दिनों 'हिन्दी-वर्द्धिनी सभा, प्रयाग' में एक पद्यात्मक भाषण दिया और इसके अनन्तर आपने सरयू, गोरखपुर, जनकपुर की भी यात्रा की। फिर काशीनरेश के साथ वैद्यनाथ के दर्शनार्थ गये। उदयपुर और चित्तौड भी गये। लौटते समय बलिया में भाषण दिया और वहीं पर 'सत्य-हरिश्चन्द्र' नाटक तथा 'नीलदेवी' नाटक का अभिनय भी किया गया।

भारतेन्दुजी के भाषण 'स्वदेश तथा निज भाषा उन्नति' विषयो पर होते थे। आपने पटना, कलकत्ता तथा हरिहर-क्षेत्र की भी यात्राएँ की थीं।

बलिया यात्रा के बाद आप अस्वस्थ होते गये। कार्याधिक्य एव घरेलू चिन्ताओं के भार से इतने दब चुके थे कि आप ६ जनवरी सन् १८८५ को कुल ३४ वर्ष ४ महीने की छोटी-सी आयु में इस ससार को छोडकर

चले गये। देश, हिन्दी भाषा तथा साहित्य के प्रति आपकी कार्यतत्परता सदा स्मरणीय रहेगी।

निस्सदेह भारतेन्दुजी ने जितना सामाजिक और साहित्यिक कार्य किया है उतना हिन्दी-साहित्य मे कदाचित् ही किसी ने किया हो।

रचनाएँ

नाटक—आपने पाखंडविडम्बन, विद्यासुन्दर, धनजय-विजय, कर्पूर-मंजरी, मुद्राराक्षस, दुर्लभबन्धु, हरिश्चन्द्र, नीलदेवी, प्रेमयोगिनी, अंधेर-नगरी, चन्द्रावली, भारत-जननी, भारतदुर्दशा, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति और विषस्य विषमौषधम् आदि नाटक लिखे हैं।

उपन्यास—आपने रामलीला, शीलवती और सावित्री-चरित्र, मदालसोपाख्यान, सुलोचना, पूर्णप्रकाश, चन्द्रप्रभा, राजसिंह, हम्मीर-हठ तथा कुछ आपबीती कुछ जगबीती आदि उपन्यास लिखे हैं।

इतिहास तथा पुरातत्त्व—आपने काश्मीरकुसुम, कालचक्र, महा-राष्ट्र देश का इतिहास, दिल्लीदरबार-दर्पण, रामायण का समय, पंच पवित्रात्मा, उदयपुरोदय, बूंदी का राजवंश, बादशाह-दर्पण, अग्रवालों की उत्पत्ति, खत्रियो की उत्पत्ति तथा पुरावृत्त-संग्रह एव चरितावली आदि इतिहास तथा पुरातत्त्व-सम्बंधी ग्रन्थ लिखे हैं।

काव्य—आपकी मौलिक, संपादित तथा संगृहीत काव्य-रचनाएँ निम्नलिखित हैं—प्रेमतरंग, गुलजार पुरबहार, सुन्दरीतिलक, फूलो का गुच्छा, कार्तिक-कर्मविधि, मार्गशीर्ष-महिमा, भागवतशका-निरासवाद, सुजान-शतक, पंचकोशी के मार्ग का विचार, तहकीकातपुरी की तहकी-कात आदि।

वैष्णव-धर्म-सम्बन्धी—आपने वैष्णवधर्म के साम्प्रदायिक रूप के आधार पर छोटी छोटी रचनाएँ इस प्रकार की है—

पुरुषोत्तम-मासविधान, उत्सवावली, भक्तिसूत्रवैजयन्ती, नारदीय-भक्ति-सूत्र, तदीय-सर्वस्व, बल्लभीय सर्वस्व, वैष्णव-सर्वस्व, प्रात स्मरण-स्तोत्र, अपवर्ग-पचक, अपवर्गदाष्टक, श्रीनाथस्तुति, श्रीपचमी, स्वरूप-चिन्तन, प्रबोधिनी, रानी छद्मलीला, दानलीला, तन्मयलीला, देवी-छद्मलीला, वैशाखमाहात्म्य, कार्तिकस्नान आदि ।

प्रेमसंबधी—कुछ प्रेमसबधी रचनाएँ भी बहुत सुन्दर हैं—रागसग्रह, होलीलीला, मधुमुकुल, होली, प्रेमतरग, प्रेम-प्रलाप, प्रेम-माधुरी, प्रेमाश्रुवर्षण, प्यास, चातकाभिमानी, प्रेमसरोवर, प्रेममालिका आदि ।

इनके अतिरिक्त कृष्णसम्बधी क्रीडाएँ, लीलाएँ तथा गगा-स्तुतियाँ भी आपने अनेकों लिखी हैं, जैसे—दैन्यप्रलाप, उरहना, पुरुषोत्तम-पचक, वेणुगीति, निवेदक-पचक, श्री सर्वोत्तम-स्तोत्र तथा सस्कृत-लावनी आदि ।

कुछ स्फुट समस्याग्रन्थ भी लिखे हैं—मानलीला, फूलबुझौवल, भीष्म-स्तवराज, श्रीसीतावल्लभ स्तोत्र, जैन-कुतूहल, सतसई-शृङ्गार एव गीत-गोविन्दानन्द आदि ।

वास्तव में भारतेन्दुजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी । आपने प्रत्येक विषय पर अनेक पुस्तकें लिखकर हिन्दी-साहित्य की झोली को भर दिया है।

प्रसिद्ध रचनाओं की संक्षिप्त आलोचना

विद्यासुन्दर—भारतेन्दुजी की नाटच-रचनाओ में 'विद्यासुन्दर' का स्थान सर्वप्रथम है । सस्कृत-साहित्य में 'चौर-पंचाशिका' नामक ग्रन्थ वर-रुचि की रचना मानी जाती है इसका नायक सुन्दर कवि चौर ही प्रतीत होता है । विद्यावती की मूल कथा का आधार भी यही 'चौर-पचाशिका' है । बगाली कवि भारतचन्द्रराय ने इसी कथा को काव्यरूप दिया है । बाद में महाराज यतीन्द्रमोहन ठाकुर ने इसी काव्य के आधार पर 'विद्या-सुन्दर' नाटक रचा है । भारतेन्दुजी ने इसी नाटक का अनुवाद किया है । इसमें विद्या और सुन्दर की प्रेम-गाथा का सुन्दर वर्णन है । नाटक का

आरभ विषय से है, मंगलाचरण से नहीं। वर्द्धमान नगर के राजा की पुत्री विद्या से जब सभी राजकुमार परास्त हो जाते हैं तब काचीपुर के राजा गुणसिन्धु के पुत्र 'सुन्दर' को बुलाया जाता है वह आकर हीरा मालिन के यहाँ ठहर जाता है और इसी मालिन से एक हार गुंथा कर विद्या के पास भेज देता है। वह कामपीडित हो जाती है, दोनों का गन्धर्व-विवाह भी हो जाता है। इसमें तीन अंक हैं, पहले में ४ गर्भाङ्क, दूसरे में ३ और तीसरे अंक में ३ हैं। भरत-वाक्य नहीं है। यह नाटक माना जाता है।

धनजयविजय—भारतेन्दु ने इसका अनुवाद सन् १८७३ में किया। यह एक 'व्यायोग' है। इसका मूलकवि 'काचन' माना जाता है। यह वीररस-प्रधान एकाङ्की है। घटना इस प्रकार है कि पाण्डवो ने अपना १३वां अज्ञातवास का वर्ष विराट् के यहाँ व्यतीत किया, अन्तिम दिन अचानक कौरवों ने विराट् की गौएँ हर लीं, और उन्हें अर्जुन वापिस लाये थे। इसी हर्ष के अवसर पर राजा विराट् ने अपनी पुत्री उत्तरा का सबंध अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से कर दिया था। इसमें मंगलाचरण, भरतवाक्य आदि सब-कुछ है। एक ही वीररस पूर्ण अक में रचा गया है। इसमें पद्यभाग विशेष है, एक ही दिन की घटना का वर्णन है।

पाखडविडम्बन—यह कृष्णमिश्र के 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक के तृतीय अक का अनुवाद है जो सन् १८७२ में भारतेन्दु जी ने किया था। इसमें गद्य-पद्य दोनो पाये जाते हैं। इस नाटक में शान्ति अपनी सखी करुणा के साथ अपनी माता श्रद्धा की खोज में निकलती है और जब शान्ति ने दिगम्बर, सिद्धान्त और भिक्षुक बुद्धागम के साथ तमोगुणी श्रद्धा को देखा, वह अत्यन्त दु.खी हुई। बाद में इन तीनों में विवाद हो जाता है। आवेश में आकर सिद्धान्त ने दिगम्बर पर आक्रमण किया परन्तु भिक्षुक ने बीच में पड़ कर शान्त कर दिया। कापालिनी श्रद्धा भिक्षुक और दिगम्बर दोनो को आलिंगन करती है, वे दोनो श्रद्धा की जूठी मदिरा पीते हैं, ये दोनो भक्ति महारानी के साथ श्रद्धा और धर्म

को पकड़ना चाहते हैं, भिक्षुक महाभैरवी विद्या का प्रयोग करने लगता है, दोनो सखियां देवी विष्णुभक्ति से उन धूर्तों की शिकायत करने जाती हैं, इस कथारूपक द्वारा यही बताया गया है कि लोग सात्त्विकी श्रद्धा को छोड़ कर, विषय-वासनाओं में पड़ कर, वास्तविक धर्म को भूल जाते हैं, और अधर्म की स्थापना करते हैं। भिक्षुक दिगम्बर कभी मारवाड़ी-मिश्रित भाषा और कभी शुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग करते हैं। यह एक आडम्बरपूर्ण चित्र है।

मुद्राराक्षस—यह नाटक संस्कृत में महाकवि विशाखदत्त की रचना है, जिसका अनुवाद भारतेन्दु जी ने सन् १८७८ में किया था। यह अनुवाद मौलिक-सा प्रतीत होता है। इस नाटक में राजनीति के दांव-पेच भरे पड़े हैं। इसमें वीर तथा अद्भुत रस की प्रधानता है। कथानक का मूल विषय नन्द के मन्त्री राक्षस का चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्त का मन्त्रित्व स्वीकार कराना है। इसके लिए चाणक्य ने जो नीतियां प्रयुक्त कीं, राक्षस उन्हें समझ तक न सका, और उनके चगुल में प्रतिक्षण फँसता हुआ अपने दैव को दोष दे रहा है और जो राक्षस ने चन्द्रगुप्त को मारने के लिए ६ उपाय किये, वे सब चाणक्य द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिये गये। उदाहरणार्थ राक्षस ने विषकन्या के प्रयोग से चन्द्रगुप्त का वध कराना चाहा, परन्तु उसके द्वारा उसी राक्षस के स्वामी मलय-केतु के पिता पर्वतक का गुप्त नाश किया गया। राक्षस ने अभयदत्त नामक वैद्य भेजा था, ताकि वह समय पाकर चन्द्रगुप्त को नष्ट कर सके, परन्तु जब एक दिन चन्द्रगुप्त को शिरोवेदना हुई और अभयदत्त विषौषधि देने लगा, उसी समय चाणक्य ने आकर वही औषधि वैद्य को पिलवा दी, जिससे वैद्य जी का निर्वाण हो गया। बीभत्सक आदि चन्द्रगुप्त के शयनागार तक खोदी हुई सुरग में इसलिए नियत थे कि रात्रि के समय चन्द्रगुप्त का वध किया जा सके, परन्तु शयनागार में जाकर एक दिन चाणक्य ने देखा कि एक सूराख से कुछ चींटियां मुंह में चावल लिये हुए

आ रही हैं। उसने यह अनुमान करके कि इस सुरंग में शत्रु छिपे हुए हैं, झट आग लगवा दी, जिसके परिणामस्वरूप सब जलकर वहीं नष्ट हो गये। इसी प्रकार दारुवर्मा आदि शिल्पी भेजे गये थे कि वे चन्द्रगुप्त के यहाँ नियुक्त होकर ऐसे तोरणों का निर्माण करें, जिनसे किसी अवसर पर उसका नाश किया जा सके। उन्होंने ऐसे तोरणों का निर्माण भी किया। एक दिन कौमुदी-महोत्सव मनाया जा रहा था, चन्द्रगुप्त के वेष में वैरोचक को हथिनी पर बिठा दिया गया और जब हथिनी तोरण के पास पहुँची, दारुवर्मा ने अपनी कला का कौतुक दिखाया, बेचारा वैरोचक चन्द्रगुप्त के धोखे से मारा गया, जिसका राज्य में अर्धभाग था। इस प्रकार राक्षस की सभी कूटनीतियाँ असफल हुईं और चाणक्य ने शकटदास द्वारा जो पत्र लिखवाया था, उसी पर राक्षस की मुहर कराने के लिए विश्वस्त गुप्तचर सिद्धार्थक को भेजा। यह कार्य इतनी निपुणता से सम्पन्न कराया कि किसी को सदेह तक नहीं हुआ, वलिक उस सिद्धार्थक का अधिकाधिक समादर किया गया, अर्थात् शकटदास को शूली से उतरवा कर सिद्धार्थक राक्षस के पास जा पहुँचा, उसने बहुमूल्य भूषण भी उसे दिये और १०–१५ दिन तक राक्षस का आतिथ्य भी ग्रहण किया और उसी की मुहर भी लगवाई। और जब चलने लगा, तब भेदिये द्वारा पकड़ा जाने पर सब रहस्य धीरे-धीरे मलयकेतु और राक्षस के सामने ही खोल दिये जिससे मलयकेतु राक्षस से रुष्ट हो गया और राक्षस तपोवनों में घूमता हुआ एक ऐसे स्थान पर पहुँचा, जहाँ चाणक्य का एक गुप्तचर 'उन्दुर' अपने गले मे फांसी लगा कर मरना चाहता था। कारण पूछने पर उसने बताया कि मेरे मित्र का एक मित्र चन्दनदास है, उसे दुष्ट चाणक्य फांसी दे रहा है, उसके मरने से पहले ही मैं मरना चाहता हूँ। 'चन्दनदास' का नाम सुनते ही राक्षस विकल हो उठा और तुरन्त उसकी रक्षा के लिए निर्दिष्ट स्थान पर जा पहुँचा। फिर क्या था, चाणक्य ने आकर उसे 'खड्ग' ग्रहण कराया अर्थात् मन्त्रित्व स्वीकार करा दिया।

इस प्रकार इस नाटक की कथा में अद्भुत रसों का परिपाक हुआ है। सचमुच ऐसे नाटक का अनुवाद भी नीतिनिपुण व्यक्ति, जो राजनीतियों से अभिज्ञ हो, ही कर सकता है। वास्तव में भारतेन्दुजी स्वयं एक आनरेरी मजिस्ट्रेट होने के कारण नीतिचक्रों का विशद परिचय रखते थे। यह एक प्रकार का संस्कृत-साहित्य में अद्भुत नाटक है।

कर्पूरमजरी—राजशेखर कवि ने इसकी रचना प्राकृत भाषा में की है। उसी का अनुवाद सन् १८७५ में भारतेन्दु जी ने हिन्दी में किया था। यह एक सट्टक है। यह चार अकों में है। राजा चन्द्रपाल अपनी रानी तथा विदूषक समेत विचक्षण के उपहास का आनन्द ले रहा है। विदूषक चिढ़कर बाहिर निकल जाता है, उधर सिद्ध भैरवानन्द को आते देख पुन लौट आता है। जब राजा ने सिद्ध जी से कुछ चमत्कार दिखाने के लिए कहा, तब कर्पूरमंजरी भी बुलाई गई जो रानी की मौसेरी बहिन थी। राजा ने ज्यों ही कर्पूरमजरी को देखा, सहसा दोनो में प्रेमाकर्षण बढ़ गया, कामपीडिता कर्पूरमजरी को धैर्य दिया जाता है। वह सुरग के मार्ग से महल में चली जाती है। रानी यह जानकर कि कर्पूरमजरी महल में पहुँच गई है, उस सुरग का मुंह बद करा देती है और घनसारमजरी से राजा का विवाह कराना चाहती है, परन्तु भैरवानन्द के प्रभाव से विवाह कर्पूरमंजरी से ही होता है। इस सट्टक में गर्भांक अथवा दृश्य नहीं हैं, किन्तु यह मगलाचरण, भरतवाक्य आदि लक्षणों से युक्त है। इसमें हास्यरस का सुन्दर समावेश है। इसमें अनुवादक ने जहां-तहां दूसरे कवियों के पद्यों को भी उद्धृत किया है। देव और पद्माकर के छन्द भी दूसरे अक में शोभायमान हैं। यह एक सुन्दर तथा सफल अनुवाद कहा जा सकता है।

दुर्लभबन्धु—यह योरुपीय प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपीअर के 'मर्चेण्ट आफ वीनस' का अनुवाद है जो सन् १८८० में भारतेन्दु जी ने किया था। इसका प्रथम दृश्य 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' और 'मोहन-चन्द्रिका' में

प्रकाशित हुआ था। अपूर्ण रह जाने पर रामशंकर व्यास तथा राधाकृष्णदास ने इसे पूर्ण किया है। भारतेन्दु ने पात्रों की नामावली में भी भारतीयता रक्खी है। अनन्त ने वसन्त मित्र की रक्षा के लिए ६०००) रु. समय पर अदा न कर सकने के कारण, अपना आधा सेर मांस काट लेने के लिए शैलाक्ष को खुली छुट्टी दे दी थी और जब अनन्त के जहाज अचानक समुद्र में डूब गये और समय पर रुपया न दे सका, तब शैलाक्ष कोर्ट में आधा सेर मांस लेने के लिए लालायित हो रहा है। पुरश्री ने गुप्त रूप से वकील का पार्ट अदा किया है। उसने मास काट लेने के लिए शैलाक्ष को कह दिया है। परन्तु चेतावनी दी है—"यदि एक भी रक्त की बूंद गिरेगी तो शैलाक्ष को लेने के देने पड जायेंगे।" वहाँ से तब शैलाक्ष चुपचाप खिसक जाता है। मित्रता का सौजन्य ऐसा ही होना चाहिए।

सत्यहरिश्चन्द्र—संस्कृत में क्षेमेश्वर ने 'चंडकौशिक' रचा है। भारतेन्दु जी ने सन् १८७५ में उसी की पौराणिक कथा लेकर यह मौलिक नाटक लिखा है। यह नाटक आपकी सर्वोत्कृष्ट रचना कही जाती है। इसमें सत्यप्रतिज्ञ महाराज हरिश्चन्द्र का यशोगान वर्णित है। एक बार नारद मुनि द्वारा हरिश्चन्द्र की प्रशंसा सुनकर इन्द्र को ईर्ष्या हुई। इन्द्र ने विश्वामित्र को उसकी कड़ी परीक्षा लेने के लिए प्रेरित किया। इधर रानी शैव्या अपने दु:स्वप्नों से व्याकुल है, राजा ने भी स्वप्न में किसी अज्ञात ब्राह्मण को समस्त पृथ्वी दान कर दी है, वह विश्वामित्र ही था, विश्वामित्र के पहुँचने पर हरिश्चन्द्र ने उसे राज्य दे दिया, तब विश्वामित्र ने इस महायज्ञ की दक्षिणा के रूप में एक सहस्र मुद्रा मांगी, उसी को चुकाने के लिए हरिश्चन्द्र आदि सब का काशी में बिकने का वर्णन है, जब शैव्या मृत पुत्र के शव को लेकर श्मशान में आती है और हरिश्चन्द्र कर मांगता है, उसी समय महादेव, पार्वती, भैरव, धर्म, सत्य, इन्द्र और विश्वामित्र प्रकट हो जाते हैं, वर देते हैं और विश्वामित्र क्षमा-

याचना करते हैं। इस नाटक में वीभत्स, भयानक और करुण रस का प्रवाह उमड रहा है। इस नाटक के आदि में नान्दीपाठ और अन्त में भरतवाक्य भी दे दिया गया है। इनकी रचनाओं में प्राय' रूपक के सभी लक्षण मिलते हैं। प्रस्तावना में गर्वोक्तियाँ भी सुहाती हैं। यह नाटक 'काशी की पत्रिका' में भी प्रकाशित होता रहता था। यह सर्वथा रग-मचीय है और अभिनय के योग्य है। परन्तु चौथा अक एकदम इतना बडा कर दिया है कि पहले तीनों अकों के बराबर हो गया है, और फिर उसमें केवल हरिश्चन्द्र एक ही पात्र टहल रहा है, जहाँ सुनने वाला दूसरा नहीं है। यह दोष अवश्य ही खटकता है।

चन्द्रावली—इस नाटिका की कथा पौराणिक है। श्रीकृष्ण जी के साथ चन्द्रावली के प्रेम, विरह तथा मिलन का वर्णन किया गया हैं। यह मौलिक नाटिका भारतेन्दु जी ने सन् १८७६ में लिखी है। भारतेन्दु जी ने इस नाटिका द्वारा अपनी पुष्टिमार्गीय भक्ति का निरूपण किया है। इस कथा का सकेत भागवत और सूरदास में भी पाया जाता है। चन्द्रा-वली एक उपवन में बैठी अपनी सखियों से कृष्ण के प्रति अनुराग प्रकट करती हुई, उन्मत्त की भाँति प्रलाप करने लगती है। कृष्ण के नाम 'चन्द्रावली की पाती' भी भेजी जाती है और सखियाँ उन दोनों के मिलने का उपाय सोचती हैं। श्रीकृष्ण जोगिनी के रूप में आते हैं। स्वामिनी की आज्ञा से वे मिलते हैं। इसमें काव्य-का सा अनूठा आनन्द है। इसके अनुवाद सस्कृत तथा ब्रजभाषा मे हो चुके हैं। इसकी भूमिका से लेखक के जीवन से सबधित कई बातों का पता मिलता है।

भारतजननी—भारतेन्दु जी ने इस नाट्यगीत को सन् १८७७ में लिखा था, जो बँगला के 'भारतमाता' नाटक पर आधारित है। इसका सबसे पहले प्रकाशन 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' में हुआ था। राधा-कृष्णदास ने इसे भारतेन्दु-रचित ही माना है। भारत के सपूतों की फूट के कारण उसकी दुर्दशा एव उसके उपायों का वर्णन किया गया है।

भारतमाता एक खंडहर पर बैठी हुई है, भारत, सरस्वती, साहेब, तथा भारत-सन्तान अनेक राग-रागिनियो मे अपना आशय प्रकट करते हैं। धैर्य भारत को शक्ति देता है। अंग्रेज, दयापूर्ण व्यवहार करने का वचन देता है। हिन्दू कहता है कि हिन्दुओ ने अपने हिन्दुत्व को भुला दिया है। अन्त में लेखक का देशभक्ति-पूर्ण उपदेश पाया जाता है।

भारतदुर्दशा—यह 'नाटयरासक' भारतेन्दु जी ने ६ अंको में सन् १८८० में लिखा है। इसमें भारत के प्राचीन गौरव तथा उसकी तत्कालीन दुर्दशा का चित्र है। इसमें मंगलाचरण के बाद एक योगी द्वारा भारत के प्राचीन गौरव, फूट के कारण, यवनों का भारत में प्रवेश तथा अंग्रेजों के शासन आदि का वर्णन किया गया है। दूसरी ओर एक टूटे-फूटे मन्दिर में कुत्ते, गीदड़ और कौए घूम रहे हैं, इधर-उधर हड्डियाँ पडी हुई हैं मानो बेचारा भारत अपनी दु:ख-कहानी सुनाते-सुनाते मूर्च्छित हो गया हो। निर्लज्जता उसे यह कहकर कि 'क्या हुआ जो सर्वस्व चला गया, एक जिंदगी हजार नियामत' उसे धैर्य बँधा रही है। आशा को भी बुला लेती है। भारत को उठाती है। भारतदुर्दैव आकर उसका बल, मान, विद्या, धन आदि सबको नष्ट कर देता है। वही दुर्दैव अब अंग्रेज के वेष में बैठकर रोग, आलस्य, मदिरा और अंधकार द्वारा भारत के सर्वनाश का श्रीगणेश कर रहा है। इसके बाद एक पुस्तकालय में एक सभापति, एक बंगाली, एक मरहठा, एक सम्पादक, एक कवि और दो अन्य महाशयो से युक्त कमेटी बैठी हुई है। प्रत्येक अपने ढंग से भारत की रक्षा के उपाय बताता है। इतने में 'डिसलायल्टी' आकर 'इंगलिश-पालिसी-एक्ट' के अनुसार सबको पकड़ ले जाती है। तत्पश्चात् भारत का भाग्य उसे जगाता है, उसकी गुण-गरिमा गाता है परन्तु भारत को मूर्च्छित देखकर अपनी छाती मे कटार भोंक लेता है। यह रचना अत्यन्त निराशा-पूर्ण है। इससे भारतेन्दु जी की व्यक्तिगत, राजनैतिक, देशभक्ति-संबंधी धारणाएँ व्यक्त होती हैं। मंगलाचरण तो है परन्तु भरत-वाक्य नहीं है।

'नाट्यरासक' के सभी लक्षण नहीं है, रचना प्रभावपूर्ण है।

नीलदेवी—यह सन् १८८१ में लिखा हुआ ऐतिहासिक गीतिरूपक नाटक है। इसमें १० अंक हैं। हिमालय की चोटी पर दो अप्सराएँ भारत की वीराङ्गनाओं का यशोगान कर रही हैं। अब्दुश्शरीफखाँ काजी के सम्मुख सूरजदेव की वीरता का वर्णन किया जा रहा है और उस पर विजय-प्राप्ति के उपाय सोचे जा रहे हैं। सूरजदेव, नीलदेवी तथा चार राजपूत विचार कर रहे हैं। सूरजदेव अधर्म की लड़ाई के पक्ष में नहीं है।

एक भटिहारी के अड्डे पर चपरगट्टूखाँ तथा पीकदानअली मजाक कर रहे हैं। सभी स्वार्थी है, अपने-अपने मतलब की कहते हैं। देवीसिंह सिपाही बाहरी स्थान में पहरा भी दे रहा है और घर वालों की भी याद कर रहा है, मुसलमानों की विजय का स्वप्न देख रहा है। सूरजदेव लोहे के पिंजरे में मूर्च्छित पड़ा है। देवगीत सुनकर उसे होश आ जाती है, परन्तु पुन मूर्च्छित हो जाता है। मियाँ और पागल गुप्तचरो द्वारा सूरजदेव की मृत्यु की सूचना मिलती है। नीलदेवी रोती है, शत्रुओं से बदला लेने के उपाय भी सोच रही है। नीलदेवी ने युद्ध न करके अपनी प्रतिभा द्वारा शत्रुओ के वध करने का निर्देश किया और वह स्वय अमीर की मजलिस में गायिका के रूप में जाती है। अमीर के शराब के नशे में चूर हो जाने पर वह उसे मार डालती है। तभी नीलदेवी के सकेत से ही कुमार सोमदेव मुसलमानो पर टूट पड़ता है और विजयी हो जाता है। इस नाटक में करुण, वीर तथा हास्य रसो का विशेष प्रवाह उमड रहा है। भारतेन्दु का देश-प्रेम एव स्त्रियो के प्रति उनका दृष्टिकोण भी स्पष्ट आभासित हो रहा है।

अन्धेरनगरी—भारतेन्दु जी ने सन् १८८१ में इस प्रहसन को ६ अकों में लिखा था। इसका मुख्य तात्पर्य यही है कि यदि राजा अवगुणी हो, प्रमादी हो, अदूरदर्शी हो तो उसकी प्रजा भी सदा सकटों में

फंसी रहती है। यह विहार प्रान्त के किसी अन्यायी जमींदार का चित्रण करके उसे सुधारने के उद्देश्य से लिखा गया है। महन्त जी के दो शिष्य नारायणदास और गोवरधनदास हैं। महन्त जी ने गोवरधनदास से कहा कि भिक्षा मांगते समय लोभी मत बनो। गोवरधनदास जब बाजार में जाता है तब वह प्रत्येक वस्तु को टके सेर पाता है। वह समझ जाता है कि यह अन्धेरनगरी है और यहां का राजा चौपट है। उस अंधेरनगरी का जब महन्त को पता चलता है तो वह नारायणदास को लेकर अन्यत्र चला जाता है और गोवरधनदास वहीं रह जाता है। एक बार जब राजा पीनक में बैठा था तब किसी ने अपनी बकरी के मारे जाने पर फरियाद की। राजा ने कल्लू बनिया, कारीगर, चूने वाले, भिश्ती, कसाई और गडरिया आदि सब को छोड़ कर अपने कोतवाल को ही फांसी की सजा दी क्योंकि उसकी सवारी निकलने से ही बकरी दबकर मर गई थी। चूंकि कोतवाल की गर्दन पतली थी, इसलिए उसे छोड़ दिया और मोटी गर्दन वाले निरपराधी गोवरधनदास को पकड़ लिया। अब उसे गुरुजी याद आने लगे। इतने मे नारायणदास को साथ लिये हुए गुरुजी भी उधर आ निकले और सब वृत्तात सुनकर उन्होंने गोवरधनदास के कान में कुछ कह दिया। फिर क्या था, दोनो झगडने लगे कि 'मैं फांसी पर चढूंगा'। यह देखकर राजा, मन्त्री और कोतवाल आकर पूछने लगे कि तुम दोनो क्यो झगड़ते हो ? गुरुजी बोले—इस सायत में जो भी फांसी चढ़ेगा वही स्वर्ग प्राप्त करेगा। बस फिर क्या था, मन्त्री और कोतवाल भी झगड़ने लगे कि 'मैं फांसी पर चढूंगा'। परन्तु भला राजा के होते हुए कौन स्वर्ग का अधिकारी हो सकता है ? राजा झटपट फांसी पर चढ़ गया और क्षण-भर में अंधेरनगरी में अन्धेरा छा गया। इस प्रकार सिद्ध किया है कि जहां केवल मूर्खता का साम्राज्य होता है, वहां प्रजा भी घोर संकट में पड जाती है। मूर्खता के कारण यहां राजा का भी सर्वस्व नाश हो गया है। यही अन्धेरनगरी का अन्धेर है।

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति—भारतेन्दु जी का यह मौलिक प्रहसन है जिसे सन् १८७३ में लिखा था। इसमें पुरोहित और मत्री द्वारा मासाहार की पुष्टि की गई है। पुरोहित और बगाली द्वारा विधवा-विवाह को शास्त्रानुकूल बताया गया है। तत्पश्चात् वेदान्ती और बगाली, शैव और वैष्णव का वाद-विवाद छिड जाता है और रडादास तथा गडकीदास के आते ही सब भाग जाते हैं। फिर पुरोहित द्वारा मासाहार तथा मदिरा-सेवन का समर्थन किया जाता है। राजा और मन्त्री भी इस वैदिकी हिंसा का अनुमोदन करते हैं। यमराज शैव और वैष्णव को छोड कर सब को दण्ड देते हैं। शैव और वैष्णव को कैलाश तथा वैकुण्ठवास मिलता है। इस प्रहसन में भारतेन्दु जी ने मासाहारियो, शराबियो तथा पशुबलि देने वालों और इसी प्रकार दूसरे पाखडियो की खिल्ली उडाई है। आरम्भ में नान्दी और अन्त में भरतवाक्य आदि भी हैं।

विषस्य विषमौषधम्—यह एक अक का भाणरूपक नाटक सन् १८७६ में भारतेन्दुजी ने लिखा है। इसमें भण्डाचार्य सन् १८७५ में बडौदा के गायकवाड को उसके कुप्रबन्ध के कारण गद्दी से उतारे जाने तथा उसकी जगह सयाजीराव को बिठाने की घटना का, आकाश को देखकर वर्णन किया गया है। इस रूपक से लेखक का स्वदेश-प्रेम प्रकट होता है।

विहंगम दृष्टि एव महत्त्व

श्री भारतेन्दुजी की रचनाएं मौलिक और अनूदित हैं, ऐतिहासिक, धार्मिक और पौराणिक भावनाओं से अनुस्यूत हैं। क्योकि आपका व्यक्तित्व प्रेम से परिपूर्ण है इसलिए आपकी प्रत्येक रचना में भी उसी प्रेम का स्पष्ट प्रतिबिम्ब पाया जाता है।

'मुद्राराक्षस' एक विशुद्ध नीति का प्रतीक है। आप 'ऑनरेरी मजिस्ट्रेट' थे इसलिए आपने अपनी राजनीतिक प्रवीणता का सुन्दर परिचय दिया है। इसका अनुवाद 'मौलिक' ग्रन्थ के समान बन पडा है। इसके अतिरिक्त प्राय आपकी सभी रचनाओ में प्रेम का प्रभाव पाया जाता है।

'विद्यासुन्दर' में विद्या और सुन्दर की प्रेम-कहानी, 'चन्द्रावली' में चन्द्रावली और श्रीकृष्ण का घनिष्ठ प्रेम, 'कर्पूर-मजरी' में राजा चन्द्रपाल और कर्पूरमजरी का प्रेम-विवाह आदि वर्णित हैं।

'सत्यहरिश्चन्द्र' में सत्य-प्रेम, 'धनंजय-विजय' में राजभक्ति-प्रेम, 'दुर्लभवन्धु' में मित्र-प्रेम, मुद्राराक्षस में राजनीति के दांव-पेच और मित्रप्रेम 'भारत-जननी', 'भारतदुर्दशा' और नीलदेवी' में देश-प्रेम लहरा रहा है।

आपके सभी रूपक अभिनेय हैं। परन्तु 'सत्यहरिश्चन्द्र' और 'चन्द्रावली' में अभिनय की दृष्टि से एक दोष यह पाया जाता है कि आदि से अन्त तक कथा का प्रवाह प्राय. एक-सा है और उत्तरोत्तर अंक पूर्वाङ्कों की अपेक्षा कुछ छोटे होने चाहिएँ ये पर हैं नहीं; क्योंकि 'सत्यहरिश्चन्द्र' में तीन अंक मिलकर जितना भाग है, ठीक उसके समान केवल चौथा अक है और उसमें भी पात्रो की भिन्नता न होकर केवल एक ही 'हरिश्चन्द्र' पात्र बोल रहा है, श्मशान का दृश्य है। इतने लम्बे कथानक को देखते-देखते दर्शकों का ऊब जाना स्वाभाविक है।

'चन्द्रावली' में तो उसकी विशेषता ही उसके अभिनय में बाधक बन गई है। उसकी विशेषता 'रसात्मकता' और 'काव्यतत्त्व' है, और यही सबसे बड़ी बाधा है।

इसी प्रकार जो 'काव्यात्मकता' और 'दार्शनिकता' 'प्रसाद' के अभिनय में बाधक सिद्ध हुई है, वही भारतेन्दु की चन्द्रावली के अभिनय में बाधा बनकर खटक रही है। कहीं-कहीं इनके रूपको में दृश्यो की कमी भी अखरती है। फिर भी भारतेन्दु ने नाट्यकला के अग्रदूत बनकर हिन्दी-रगमच को जो समृद्धिशाली बनाया है इसके लिए साहित्यप्रेमी इनके सदा आभारी रहेगे।

भारतेन्दु निस्सदेह आधुनिक हिन्दी-साहित्य के अग्रदूत हैं। इनकी सर्वातिशायिनी प्रतिभा ने सर्वप्रथम राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द और राजा लक्ष्मणसिंह के मिश्रित और व्रजभाषा-गद्य के जटिल प्रश्न को

'द्विपार्श्विक गद्य' का रूप देकर अनिश्चितता के गर्त से मुक्त किया था। आपने इस सवध में भारतेन्दु-मण्डली वनाकर प्रतापनारायण मिश्र, वालकृष्ण भट्ट, वालमुकुन्द गुप्त, चौधरी वदरीनारायण प्रेमघन, अम्बिकादत्त व्यास, जगमोहनसिंह ठाकुर आदि अनेक सहयोगियो द्वारा हिन्दी-गद्य का रूप परिमार्जित ही नहीं किया प्रत्युत उसमें हास्य, व्यग्य और सस्कृतमयता की पुट भी भर दी।

इसके अतिरिक्त 'कविवचनसुधा', 'हरिश्चन्द्र-मैगज़ीन', 'ब्राह्मण', 'आनन्द-कादम्बिनी' और 'हिन्दी-प्रदीप' आदि लगभग २८ पत्र-पत्रिकाओ का प्रकाशन किया और कराया जिनके द्वारा हिन्दी-गद्य को स्थिरता और धारावाहिकता प्राप्त हुई।

आपने 'हिन्दीवर्द्धिनी सभा', 'तदीय सभा', 'काशी-नरेश-सभा' आदि अनेक सभाओं का आयोजन किया था जिनके द्वारा हिन्दी-गद्य के प्रसार सौष्ठव तथा प्राचीन सस्कृति के गौरव की प्रेरणा मिली। अनेक उपन्यास, कहानियाँ, इतिहास-ग्रन्थ, पुरातत्त्वग्रन्थ, पुष्टिमार्गीय ग्रन्थ, धार्मिक भावनाओ के ग्रन्थ, प्रहसन, नाट्यरासक, सट्टक, भाण आदि अनेक रूपक तथा नाटक लिखकर आपने हिन्दी-साहित्य के कलेवर को परिपुष्ट कर दिया है।

विविध विषयों पर, इतनी अल्पायु में, इतने ग्रन्थ लिख सकना निस्सदेह एक चमत्कार है, जादू है। कुल ३४ वर्ष ४ महीने की छोटी-सी आयु में सैकडो ग्रन्थ लिखना, पत्रों का सम्पादन करना, सभी सभाओं में जाना-आना और अनेक वडी सभाओ का प्रधान सहायक वने रहना, भाषण देना, मजिस्ट्रेटी करना आदि कार्य विस्मय में डाल देते हैं। इतने पर भी आपका स्वाध्याय इतना गम्भीर था कि प्रत्येक विषय को भली भाँति निरूपण करते थे। साथ ही आपको घरेलू चिन्ताएँ सदा घेरे रहती थीं। अपने व्यक्तियों से आपको कभी प्रोत्साहन नहीं मिला। विलासी, अपव्ययी आदि निन्दनीय शब्दो में आप स्मरण किये जाते थे परन्तु इतना होने पर भी आप दृढ अध्यवसायी थे। आपकी कार्य-तत्परता एक क्षण के

लिए भी कभी शिथिल नहीं हुई। आपकी सफलता के अन्य भी कई कारण हैं। आप कहा करते थे—

अँगरेज राज सुख-साज सबै सुख भारी।
पै धन विदेस चलि जाति यहै अति ख्वारी॥

अर्थात् यद्यपि अंग्रेजों के राज्य में सभी सुख हैं, तदपि सबसे बड़ा दुःख उन्हें यह प्रतीत हुआ कि भारत में कलाओं का अभाव होने से सारा धन विदेश को चला जा रहा था—यह बात उन्हे रह-रह कर खलती थी। इसका कारण स्पष्ट था कि वे देशभक्त थे, स्वतन्त्रता-प्रिय, भावुक तथा भारतीय संस्कृति के उपासक थे। वास्तव में आपने साहित्य में अनेक सुधारात्मक वैसे ही कार्य किये, जैसे धर्म के क्षेत्र में आर्यसमाज ने किये थे। आपने हिन्दी-साहित्य में उन्हीं सुधारों को दुहराया है और अनेक प्रकार के आडम्बरों तथा पाखण्डो की उपेक्षा की है। वे यह भी कहा करते थे—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय को शूल॥

इसी उद्देश्य को मन में रखकर, मातृभाषा 'हिन्दी' के प्रसार के लिए उन्होंने मन, वचन और कर्म से अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। उपरोक्त पद से भी उनकी स्वदेश-भक्ति और मातृभाषानुरक्ति प्रकट हो रही है।

भारतेन्दु की सफलता का दूसरा रहस्य यह है कि उन्होने साहित्य और जीवन को एक-दूसरे के निकट कर दिया। अर्थात् भक्तिकाल में साहित्य को अवतारी पुरुषों की प्रशसा में रँगा और रीतिकाल में दरबारो की वाह-वाह में खो दिया। वास्तव में भारतेन्दु ने अनेक नये विषयों को साहित्य में स्थान देकर उन्हें जीवन के अति समीप लाने का सफल प्रयत्न किया। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक समस्याओ की भावनाओं को भी काव्य में स्थान दिया जाने लगा जिससे सर्व-साधारण साहित्य को अपना कहकर अपना सके।

इसके अतिरिक्त भारतेन्दु जी के साहित्य मे 'सहजता' अर्थात् प्रसादगुण है जिससे उनकी रचना में सरलता आ गई है और सभी की अनायास प्रवृत्ति हो पाई है। यही कारण है कि भारतेन्दु की रचनाएँ सर्वप्रिय हो रही हैं।

भारतेन्दु की दो प्रकार की शैलियां मिलती हैं—(१) भावावेश की शैली, (२) तथ्यनिरूपण की शैली। पहली शैली में वाक्य छोटे-छोटे, शब्द तद्भव और कहीं-कहीं अरबी-फारसी के प्रचलित शब्द आ जाते हैं। दूसरी शैली में प्राय संस्कृत-शब्दों का सहारा लिया गया है। इससे सिद्ध होता है कि प्राय: इसी भावावेश-शैली में ही आपकी रचनाएँ होती रही हैं। इसी से सर्वसाधारण भी अपने घरों में उनकी रचनाओं का आनन्द उठा सकता है। आपके नाटकों से भी समाज को स्थायी प्रेरणा मिलती है, जिनसे समाज में पूज्यों के प्रति श्रद्धा और अपूज्यों के प्रति उपेक्षा का भाव उत्पन्न हो। महाराज हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा का अभिनय मनुष्य के रोम-रोम को जीवन-भर के लिए सत्यनिष्ठ होने की प्रेरणा करता रहेगा। भारतदुर्दशा और भारत-जननी तथा नीलदेवी के अभिनय जहाँ देश-प्रेम और देशभक्ति की मूल प्रेरणा करेंगे, वहाँ स्त्रियों में भी नीलदेवी का अनुकरण एक नया साहस पैदा करेगा, जिससे वे वीराङ्गनाएँ बनकर शत्रु से 'येन केन उपायेन' बदला ले सकेंगी। यदि यह भावना इस नाटक द्वारा स्त्रैण-जगत् में पैदा हो सकी तो हम इन भावनाओं के प्रसारक भारतेन्दु को कदापि न भूल सकेंगे। हिन्दी-साहित्य में 'भारतेन्दु' ने चार चाँद लगा दिये हैं। सच तो यह है कि भारतेन्दु ही वर्तमान गद्यकाल के सजीव प्रेरक हैं। इसलिए इस काल से भारतेन्दु एक क्षण के लिए भी पृथक् नहीं किये जा सकते और न ही इस युग को उनसे पृथक् किया जा सकता है। दोनों का घनिष्ठ सामजस्य है। एक के बिना दूसरा जीवित ही नहीं रह सकता। इसीलिए आधुनिक काल के प्रारम्भिक उन्नायकों में भारतेन्दु अग्रगण्य माने गये हैं।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

परिचय

'हरिऔध' जी का जन्म, उत्तरप्रदेश के आजमगढ़ जिले के निजामाबाद नामक ग्राम में सवत् १९२२ में हुआ। आपके यहाँ कई पीढियो से, ब्राह्मण होते हुए भी, सिक्ख-धर्म के प्रति रुचि थी। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा का सूत्रपात आपके चाचा जी की देख-रेख में हुआ। वे स्वय ज्योतिष-शास्त्र के विद्वान् माने जाते थे। हरिऔध जी ने फारसी पढ कर सवत् १९३६ को छात्रवृत्ति के साथ मिडिल परीक्षा पास की। बाद में वे काशी के क्वीन्स कालेज में भर्ती हुए परन्तु अस्वस्थ हो जाने के कारण वापस घर चले गये और वहीं पर आपने उर्दू, फारसी और सस्कृत भाषाओं का विशेष अभ्यास करना आरम्भ कर दिया।

हरिऔध जी का प्रारम्भिक जीवन अर्थसंकटों से पूर्ण था, परन्तु सं० १९३९ में विवाह हो जाने के कारण वह सकट और भी बढ गया। विवश होकर आपने स० १९४१ में एक मिडिल स्कूल में शिक्षक-पद पर कार्य करना आरम्भ कर दिया, किन्तु कुछ दिनो के बाद आप 'सदर कानूनगो' के पद पर नियुक्त हो गये और लगातार ३४ वर्ष तक इसी पद पर कार्य करने के पश्चात् 'पेन्शनर' हो गये। तत्पश्चात् काशी के हिन्दू-विश्वविद्यालय मे आप हिन्दी के ऑनरेरी अध्यापक-पद पर नियत होकर कार्य करने लगे।

इन्हीं दिनो आपने 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' प्रयाग के सभापति-पद को सुशोभित किया, और सं० १९९५ में सम्मेलन ने आपके 'प्रिय-प्रवास' नामक महाकाव्य का समादर करते हुए १२००) रु० के मगला-प्रसाद पारितोषिक से आपको पुरस्कृत किया। साथ ही 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि से भी आपको विभूषित किया गया।

आपकी ७०वीं वर्षगाँठ पर आरा की 'हिन्दी-प्रचारणी सभा' ने आपको 'हरिऔध-अभिनदन-ग्रथ' भेंट किया। इस प्रकार जीवन के क्षेत्र में अनासक्त योगी की भाँति कार्य करते हुए स० २००२ में आपने इस नश्वर शरीर को तिलाजलि दे दी।

रचनाएँ

यद्यपि हरिऔध जी की मौलिक तथा अनूदित रचनाओं का हिंदी-साहित्य में पर्याप्त गौरव है पर अनूदित रचनाओं की अपेक्षा मौलिक रचनाओं का विशेष महत्त्व आँका जाता है। आपकी मौलिक रचनाओं को इस प्रकार विभक्त कर सकते हैं—

(१) 'प्रियप्रवास' और 'वैदेही वनवास' आपके महाकाव्य हैं। इन दोनों का हिंदी-साहित्य में विशेष स्थान है।

(२) रुक्मिणी-परिणय, काव्योपवन, प्रेमप्रपच, प्रद्युम्नविजय, प्रेम-पुष्पोपहार, पद्यप्रसून, चोखे चौपदे, चुभते चौपदे, बोलचाल, ऋतुमुकुर, काव्यलता, पारिजात तथा प्रेमाम्बुप्रवाह आदि आपके काव्यसग्रह हैं।

(३) अधखिला फूल और ठेठ हिंदी का ठाठ—ये दोनों उपन्यास हैं। इन दोनों में आपकी भाषा सरल है। 'वेनिस का बाँका' सस्कृत-निष्ठ भाषा में लिखा गया है।

(४) हिंदी भाषा और साहित्य का विकास, कबीर-वचनावली तथा रसकलश—ये तीनों आपकी आलोचनात्मक रचनाएँ हैं।

इस प्रकार हरिऔध जी ने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा से हिंदी-साहित्य के विविध क्षेत्रों की सेवा की है। जहाँ आपके महाकाव्यो का विशेष आदर है वहाँ आपकी स्फुट रचनाओं का भी कम महत्त्व नहीं है। आपका भाव-पक्ष जितना हृदयग्राही है, कला पक्ष भी उतना ही आकर्षक और रमणीय है। आपके चोखे चौपदे और चुभते चौपदे में मुहावरों का जितना चमत्कार पाया जाता है, उतना ही भावो का प्रवाह भी उमड़ता

दिखाई देता है। 'चोखे चौपदे' में राष्ट्रीय, सामाजिक तथा दार्शनिक आदि अनेक समस्याओ को सुलझाने का स्तुत्य प्रयत्न किया गया है।

हरिऔध जी ने खडीबोली में नवीन उद्भावनाओ की पुट देकर उसे नूतन गति प्रदान की है। पद्य-रचना भी महत्त्वपूर्ण हो गई है। आलोचनात्मक ग्रन्थ भी अपने में पूर्ण हैं। आपका 'रसकलश' एक रीतिग्रन्थ है। इसमें आपने आलंकारिक चमत्कार के साथ-साथ भाषा के सौष्ठव में भी विशेष प्रकार का माधुर्य भर दिया है। नायिका-वर्णन में सुधार-वादी भावना के कारण देश-प्रेमिका, धर्म-प्रेमिका आदि अनेक नवीन नायिकाओ की उद्भावना की है। इन्हीं सब नूतन एव भव्य स्फूर्तियो से यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो गया है।

प्रियप्रवास : सर्वांगीण आलोचना

(१) महाकाव्यत्व—हरिऔध जी का 'प्रियवास' हिन्दी-साहित्य की विशेष निधि है। प्राचीन आचार्यो ने जो महाकाव्य के लक्षण निर्धारित किये हैं प्राय: वे सब इसमें उपलब्ध होते हैं। इसमें १० सर्ग हैं, राधा-कृष्ण नायक है जो पौराणिक एव ऐतिहासिक दोनों दृष्टियो से अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इसमें वन-पर्वत आदि के अनेक प्राकृतिक दृश्यो का रमणीय वर्णन पाया जाता है। इस प्रकार इसमें महाकाव्यत्व के वाह्य लक्षण पाये जाते हैं, तथापि हम इसे सफल 'महाकाव्य' नहीं मान सकते; क्योंकि इसमें महाकाव्य के आतरिक लक्षणो का अभाव पाया जाता है जिनसे इसे महाकाव्य कहने में हमें सर्वथा सकोच होता है।

'प्रियप्रवास' का घटना-क्रम अत्यन्त शिथिल है, यहां तक कि इसमें से २—३ सर्ग निकाल भी दिये जायें तो भी कथा के प्रवाह में कुछ अन्तर नहीं होता। साथ ही एक बडा दोष यह है कि कवि ने मार्मिक स्थलो का चित्रित वर्णन न करके उनका उल्लेखमात्र ही किया है। इन्हीं कारणो से विद्वानो ने इसका महाकाव्यत्व सदिग्ध माना है और स्वयं हरिऔध जी भी इसे 'महाकाव्याभास' अनुभव करते थे।

इतना होने पर भी प्रस्तुत काव्य का महत्त्व स्थायी रहेगा क्योंकि इसमें श्रेष्ठ काव्य के सभी तत्त्व पाये जाते हैं। काव्यधारा में सरस मधुरामृत प्रवाहित हो रहा है। यह धारा पाठक की चेतना को सद्य स्पर्श करती एव प्रभावित करती है। कवि ने पवनदूत की मौलिक कल्पना करके, कालिदास की मेघदूत वाली कल्पना को सजीव करते हुए उसे भिन्न रूप में प्रस्तुत किया है। इससे काव्य की रमणीयता में आशातीत वृद्धि हुई है। सब से बडी विशेषता यह है कि आपने पौराणिक कृष्ण और राधा को लोक-सेवकों के रूप में प्रस्तुत कर नितान्त प्रशसनीय कार्य किया है। साथ ही समय की गतिविधि के अनुसार साचे बना लेना कवि का कौशल ही कहना चाहिए। अत 'प्रियप्रवास' महाकाव्य न सही, हिन्दी-साहित्य का एक परमोत्कृष्ट काव्य है, इसमें लेशमात्र सदेह नहीं।

(२) प्रकृति-चित्रण—किसी काव्य-ग्रंथ को अधिक सुन्दर एव आकर्षक बनाने के लिए, उसमें प्राकृतिक पदार्थों का वर्णन भी आवश्यक होता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार 'प्रियप्रवास' में अनेक प्राकृतिक दृश्य प्रस्तुत किये गये हैं, जो अपने रूप में नितान्त रोचक एव आकर्षक बन पडे हैं। आपने प्रकृति को आलम्बन और उद्दीपन दोनो रूपों में ग्रहण किया है। आपके काव्य के प्राकृतिक दृश्यों तथा ऋतुवर्णनों में एक विशेष क्रम पाया जाता है। उदाहरणार्थ प्रथम सर्ग में सध्या का, द्वितीय में रात्रि का, तृतीय में अर्धरात्रि का, चतुर्थ में ब्रह्ममुहूर्त का और पचमसर्ग में उषा की लालिमा का वर्णन है।

कहीं कहीं हरिऔध जी के प्रकृति-वर्णन सश्लिष्ट न होकर विश्लिष्ट रूप में पाये जाते हैं, इसलिए उनमें मार्मिकता का अभाव-सा प्रतीत होता है। फिर भी अनेक स्थलों पर उनके प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त मनोरम तथा मनोमुग्धकारी बन पडे है।

(३) चरित्र-चित्रण--हरिऔध जी चरित्रचित्रण की कला में अत्यन्त कुशल थे, इसीलिए आपके 'प्रियप्रवास' के चरित्र अत्यन्त सजीव बन पड़े हैं। कवि का सदा यही लक्ष्य रहा है कि वह पाठकों के समक्ष पात्रों को प्रस्तुत करे ; और इसकी पूर्ति के लिए आपने प्रायः अभिधा शक्ति का ही आश्रय लिया है। आगे हम श्रीकृष्ण और राधा के चरित्रों को स्पष्ट करते हैं—

श्रीकृष्ण—पौराणिक दृष्टिकोण के अनुसार श्रीकृष्ण को 'ईश्वर' माना गया है, परन्तु हरिऔध जी ने 'प्रियप्रवास' में उन्हें एक 'महापुरुष' के रूप में चित्रित किया है। आधुनिक युग की भावनाओं के अनुकूल होने के कारण यह विचारधारा वास्तव में प्रशंसनीय है। श्रीकृष्ण की गोवर्धन उठाने की घटना को कवि ने स्वाभाविक रूप दे दिया है। उनका कथन है कि श्रीकृष्ण ने व्रजवासियों को वर्षा की बाढ से बचाया; क्योंकि वे उन्हें गोवर्धन पर्वत के किसी ऊँचे भाग में ले पहुँचे थे। इसी प्रकार दावानल पान करने की कथा को आपने इस प्रकार परिवर्तित कर दिया है कि श्रीकृष्ण ने अग्नि में जलते हुए गोप और गोपिकाओं की रक्षा की। इस प्रकार हरिऔध जी के श्रीकृष्ण 'ईश्वर' न होकर केवल 'महापुरुष' हैं।

राधा—'प्रियप्रवास' की राधा भी रीतिकालीन कवियों की राधा से सर्वथा भिन्न है। यद्यपि राधा श्रीकृष्ण से अत्यन्त अनुराग करती है तो भी उनके लिए अधीर नहीं होती ; क्योंकि उसका प्रेम सर्वथा पवित्र एव सात्त्विक है। राधा जिस लोक-सेवा में विश्वास रखती है, पवन को दूत बनाकर श्रीकृष्ण को भी उसी सेवा के लिए सदेश देती है। लोक-सेवा ही नारायण की सेवा है, कर्मवीरों की तरह राधा ने अपने जीवन के प्रतिपल को लोक-सेवा में समर्पित कर दिया है। क्या ही अच्छा होता, यह भावना सदा ही लोक-समाज में पाई जाती।

(४) विरहवर्णन—'प्रियप्रवास' का विरह-वर्णन मर्यादापूर्ण तथा विशुद्ध है। उसमें स्वाभाविकता है। श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा है कि वे राधा और अन्य गोपियों के विरह में दुखी होने पर भी, कर्तव्य के कारण व्रज जाना नहीं चाहते। उधर राधा की भी आत्म-गौरव है, स्वाभिमान है, वह भी स्वयं द्वारिका नहीं जा रही। यद्यपि वह भी विरह से आतुर है तो भी 'मानिनी नायिका' है। इस प्रकार विरहाग्नि में तप्त होकर राधा और कृष्ण का चरित्र रूपी सुवर्ण 'कुन्दन' बन गया है, उज्ज्वल हो गया है। और वे दोनों तन-मन से जनसेवा के कार्य में तल्लीन हो गये हैं।

(५) भाषा-प्रयोग—'प्रियप्रवास' की भाषा खड़ीबोली है। उसमें संस्कृत के शब्दों की प्रचुरता पाई जाती है, फिर भी कोई दुरूहता नहीं आने पाई। साधारणतया इसकी भाषा पात्रों की स्थिति एवं योग्यता के अनुसार ही है। इसीलिए तो वृद्ध आभीर आदि की भाषा अत्यन्त सरल है। नन्द, श्रीकृष्ण, राधा और उद्धव आदि की भाषा उसकी अपेक्षा कुछ कठिन है। प्रायः हरिऔध जी की भाषा नितान्त शुद्ध और संस्कृत-गर्भित है। उन्होंने इस काव्य में संस्कृत के छंदों में संस्कृत-पदावली का प्रयोग करना उपयुक्त समझा है जो किसी प्रकार भी अनुचित नहीं कहा जा सकता।

'वैदेही-वनवास' का भाव तथा कलापक्ष

निस्सन्देह 'वैदेही-वनवास' का हरिऔध जी के काव्य-ग्रन्थों में विशेष महत्त्व है। इसमें हरिऔध जी ने वाल्मीकि-रामायण के सीता-निर्वासन के प्रसंग को नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। वास्तव में वाल्मीकि-रामायण के सीता-निर्वासन-प्रसंग को पढ़कर आधुनिक पाठक के मन में जो शंकाएँ उत्पन्न होती हैं, 'वैदेही-वनवास' में उन सब शंकाओं का समाधान पाया जाता है। और यह आधुनिक युग की प्रवृत्ति के सर्वथा अनुकूल होने से उचित ही है।

हरिऔध जी के राम वाल्मीकि के राम की तरह सीता को धोखे से वन में नहीं भेजते, अपितु वे सीता को वन में भेजने से पहले उनकी सम्मति लेते हैं, और यह भी समझते हैं कि दुष्ट पुरुषों की सम्मति में सीता का राम के साथ रहना अभीष्ट नहीं; क्योंकि वे जानते हैं कि सीता तो राम को दुष्ट एवं आततायियो के नाश के लिए उभारती रहती है और राम भी इस लोक-प्रवृत्ति से अपरिचित नहीं हैं। वे यह सब जानते हुए भी प्रजा को दण्डित करने की अपेक्षा स्वयं कष्ट-सहन करने में अधिक विश्वास रखते हैं। और साथ ही यह कल्पना नितान्त कायरतापूर्ण है कि राम ने एक धोबी की मिथ्या उक्ति को सुनकर सीता को वनवासिनी बनाने का दुस्साहस किया हो। वास्तव में तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक तथा पारिवारिक आदि अनेक उलझनो के कारण वे सीता को वन में भेजते हैं, ऐसा करने में सीता की भी पूर्ण सम्मति थी।

सीता ने ज्यों ही राम के मुंह से 'वनवास' की चर्चा सुनी, प्रथम तो वह विरह-वेदना की कल्पना से अत्यन्त व्यथित हो जाती हैं, परन्तु तुरन्त अपने को सँभालती हुई कर्तव्य-पथ की ओर अग्रसर हो जाती हैं और राम की सहधर्मिणी होने के नाते, राम के लोकव्रत में पूर्ण सहयोग देने का निश्चय कर लेती हैं तथा सहर्ष वन जाने के लिए तैयार हो जाती हैं। इस प्रकार हरिऔध जी ने सीता के चरित्र को प्रशस्त रूप में उपस्थित कर लोकसमाज की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

हरिऔध जी की सीता, वाल्मीकि एवं भवभूति की सीता के समान अबला नहीं हैं, जो चुपचाप अपने ऊपर आई हुई विपत्तियो को सहन कर ले। हरिऔध जी की सीता सतर्क हैं, कर्तव्यो के लिए अपने सुखों का बलिदान करना जानती है। वह आधुनिक कर्मठ नारी की तरह दुःखों को हँसते हुए सहन कर सकती है।

'वैदेही-वनवास' मे युग की भावनाएँ स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हुई

(४) विरहवर्णन—'प्रियप्रवास' का विरह-वर्णन मर्यादापूर्ण तथा विशुद्ध है। उसमें स्वाभाविकता है। श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा है कि वे राधा और अन्य गोपियो के विरह में दुखी होने पर भी, कर्तव्य के कारण व्रज जाना नहीं चाहते। उधर राधा को भी आत्म-गौरव है, स्वाभिमान है, वह भी स्वय द्वारिका नहीं जा रही। यद्यपि वह भी विरह से आतुर है तो भी 'मानिनी नायिका' है। इस प्रकार विरहाग्नि में तप्त होकर राधा और कृष्ण का चरित्र रूपी सुवर्ण 'कुन्दन' बन गया है, उज्ज्वल हो गया है। और वे दोनों तन-मन से जनसेवा के कार्य में तल्लीन हो गये है।

(५) भाषा-प्रयोग—'प्रियप्रवास' की भाषा खडीबोली है। उसमें सस्कृत के शब्दों की प्रचुरता पाई जाती है, फिर भी कोई दुरूहता नहीं आने पाई। साधारणतया इसकी भाषा पात्रों की स्थिति एव योग्यता के अनुसार ही है। इसीलिए तो वृद्ध आभीर आदि की भाषा अत्यन्त सरल है। नन्द, श्रीकृष्ण, राधा और उद्धव आदि की भाषा उसकी अपेक्षा कुछ कठिन है। प्राय हरिऔध जी की भाषा नितान्त शुद्ध और सस्कृत-गर्भित है। उन्होंने इस काव्य में सस्कृत के छदों में सस्कृत-पदावली का प्रयोग करना उपयुक्त समझा है जो किसी प्रकार भी अनुचित नहीं कहा जा सकता।

'वैदेही-वनवास' का भाव तथा कलापक्ष

निस्सदेह 'वैदेही-वनवास' का हरिऔध जी के काव्य-ग्रन्थो में विशेष महत्त्व है। इसमें हरिऔध जी ने वाल्मीकि-रामायण के सीता-निर्वासन के प्रसग को नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। वास्तव में वाल्मीकि-रामायण के सीता-निर्वासन-प्रसग को पढकर आधुनिक पाठक के मन में जो शकाएँ उत्पन्न होती हैं, 'वैदेही-वनवास' में उन सब शकाओं का समाधान पाया जाता है। और यह आधुनिक युग की प्रवृत्ति के सर्वथा अनुकूल होने से उचित ही है।

हरिऔध जी के राम वाल्मीकि के राम की तरह सीता को धोखे से वन में नहीं भेजते, अपितु वे सीता को वन में भेजने से पहले उनकी सम्मति लेते हैं, और यह भी समझते हैं कि दुष्ट पुरुषों की सम्मति में सीता का राम के साथ रहना अभीष्ट नहीं, क्योंकि वे जानते हैं कि सीता तो राम को दुष्ट एव आततायियो के नाश के लिए उभारती रहती हैं और राम भी इन लोक-प्रवृत्ति से अपरिचित नहीं हैं। वे यह सब जानते हुए भी प्रजा को दण्डित करने की अपेक्षा स्वय कष्ट-सहन करने में अधिक विश्वास रखते हैं। और साथ ही यह कल्पना नितान्त कायरतापूर्ण है कि राम ने एक धोबी की मिथ्या उक्ति को सुनकर सीता को वनवासिनी बनाने का दुस्साहस किया हो। वास्तव में तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक तथा पारिवारिक आदि अनेक उलझनो के कारण वे सीता को वन में भेजते हैं, ऐसा करने में सीता की भी पूर्ण सम्मति थी।

सीता ने ज्यो ही राम के मुंह से 'वनवास' की चर्चा सुनी, प्रथम तो वह विरह-वेदना की कल्पना से अत्यन्त व्यथित हो जाती हैं, परन्तु तुरन्त अपने को सँभालती हुई कर्तव्य-पथ की ओर अग्रसर हो जाती हैं और राम की सहधर्मिणी होने के नाते, राम के लोकव्रत में पूर्ण सहयोग देने का निश्चय कर लेती हैं तथा सहर्ष वन जाने के लिए तैयार हो जाती हैं। इस प्रकार हरिऔध जी ने सीता के चरित्र को प्रशस्त रूप में उपस्थित कर लोकसमाज की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

हरिऔध जी की सीता, वाल्मीकि एवं भवभूति की सीता के समान अबला नहीं है, जो चुपचाप अपने ऊपर आई हुई विपत्तियो को सहन कर ले। हरिऔध जी की सीता सतर्क है, कर्तव्यो के लिए अपने सुखों का बलिदान करना जानती है। वह आधुनिक कर्मठ नारी की तरह दुःखों को हँसते हुए सहन कर सकती है।

'वैदेही-वनवास' में युग की भावनाएँ स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हुई

हैं। इसमें गान्धीवाद से प्रभावित वैदिक आदर्श का दिव्य संदेश सर्वत्र मुखरित हो रहा है। ब्रिटिश साम्राज्य की दमन-नीति के प्रति स्पष्ट प्रतिक्रिया प्रकट हो रही है। दूसरों के अपराधों के लिए इच्छानुसार कष्ट सहने की भावना भी गान्धीवाद से ही सम्बन्ध रखती है।

'वैदेही-वनवास' की भाषा-शैली भी अपनी पृथक् विशेषता रखती है। इसमें कवि ने संस्कृत के छन्दों को छोड़कर हिन्दी के मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है, इसमें 'प्रियप्रवास' की तरह संस्कृतनिष्ठ पदावली का प्रयोग नहीं पाया जाता। खड़ीबोली के अधिक प्रचलित हो जाने के कारण इसमें उसी का नितान्त निखरा हुआ रूप पाया जाता है।

'वैदेही-वनवास' में प्राकृतिक चित्रण अत्यन्त प्रभावशाली है। 'प्रिय-प्रवास' में जहाँ विश्लिष्ट चित्र पाये जाते हैं, वहाँ 'वैदेही-वनवास' में संश्लिष्ट चित्रों की प्रचुरता देखी जाती है। कवि ने उनका इतना सजीव चित्रण किया है कि पाठक उन्हें अपने नेत्रों के सामने प्रत्यक्ष-सा अनुभव करने लगते हैं और उन्हीं में आनन्द-मग्न हो जाते हैं।

'वैदेही-वनवास' में अलंकारों का भी प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। परन्तु इन अलंकारों से काव्यश्री में कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आने पाई। वास्तव में हरिऔध जी अलंकारों के साथ भावों का सामंजस्य भी बड़ी निपुणता से करते हैं और भावों की प्रधानता पर विशेष ध्यान देते हैं। यही कारण है कि उनके काव्य का सहज सौन्दर्य कहीं भी श्रीहीन नहीं होने पाया है और किसी प्रकार की कृत्रिमता उनमें नहीं आने पाई है। सच तो यह है कि यदि अलंकार भावों के सहयोगी बनकर आयें तो वे भावश्री एवं काव्यश्री की वृद्धि ही करते हैं। इस तथ्य से हरि-औध जी परिचित थे इसीलिए उनके काव्य में सौन्दर्य-सौरभ निखरा हुआ पाया जाता है।

'वैदेही-वनवास' में करुणा की धारा प्रवाहित हो रही है। वास्तव

में करुण-रस में एक विशेष आनंद निहित रहता है जिसमें पाठक की चेतना का विलय होता है और वह अन्य लोक में आत्मविभोर हो जाता है। उस समय अपने और पराये में कुछ भी भेद नहीं रह जाता। स्वार्थ परमार्थ में परिवर्तित हो जाता है। पाठक दूसरे के दु:ख को अपना समझ कर सह लेता है। हरिऔध जी को इस दृष्टि से भी पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है।

विरह-वर्णन तथा उसका महत्त्व

हरिऔध जी का 'प्रियप्रवास' एक प्रकार का विरह-काव्य है। सर्वप्रथम उपाध्याय जी ने इसे 'व्रजाङ्गना-विलाप' नाम से ही पुकारा था। विरह की तीव्र अनुभूति की अभिव्यक्ति ही इस काव्य का चरम उद्देश्य है। प्रियप्रवास का विरह अपनी पृथक् विशेषता लिये हुए है। इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं—

प्राचीन कवियों ने राधा-कृष्ण को पति-पत्नी बनाकर उनका विरह-वर्णन किया है। ऐसी दशा में उनके विरह में उद्दाम श्रृङ्गार, ऐंद्रियता और कामुकता प्रधानरूप से लक्षित होती है। यही कारण है कि गोपियो को तथा राधिका को कृष्ण के वियोग का दु:ख असह्य प्रतीत होता है क्योंकि अब उन्हे श्रीकृष्ण-सम्पर्क से होने वाला अलौकिक आनन्द प्राप्त नहीं हो सकेगा केवल राधिका ही कृष्ण को पति-रूप में ग्रहण नहीं करती थी प्रत्युत समस्त गोपिकाएँ कृष्ण की भक्ति पति-रूप में ही किया करती थीं। प्राचीन आचार्यों का भी यही दृष्टिकोण है। इसी लिए वे सब-की-सब कृष्ण के वियोग में छटपटा रही हैं। कहीं-कहीं तो गोपियां कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को राधा से भी बढकर प्रमाणित करती हैं। प्राचीन भक्त-कवियो की दृष्टि में श्रीकृष्ण भी गोपिकाओं के विरह में व्याकुल अवश्य हैं, परन्तु जहां उन्हे राधा तथा गोपिकाओं का ध्यान है वहां साथ ही साथ व्रज का भी ध्यान है। एक स्थान पर श्रीकृष्ण उद्धव से कह रहे हैं—

ऊधो ! मोहि ब्रज बिसरत नाही ।
हंससुता की सुन्दर कगरी, अरु कुजन की छाँही ।।

परन्तु श्रीकृष्ण जी स्पष्ट रूप से यह सकेत नहीं कर सकते क्योंकि जब उन्हें ब्रज नहीं भूलता, कुजों की छाया नहीं भूलती, वह जमुना की कगरी नही भूलती जिसके लिए वे मन-ही-मन आहे भर रहे हैं, तो ब्रज में जाकर उन सब से मिल क्यो नहीं लेते ? गोपिकाओ का स्मरण कर मानसिक वेदना से अब तक व्यथित क्यो हो रहे हैं ? क्या वहाँ पहुँचने में कोई विशेष बाधा अथवा सकोच है ? सूरदास ने भागवत पुराण के आधार पर, सूर्यग्रहण के अवसर पर, राधा और कृष्ण का क्षणिक मिलाप कराया है । वे कहते हैं—

राधा माधव भेंट भई ।

प्राचीन भक्त-कवियो ने विरह का जो वर्णन किया है वह उस काल की परिस्थितियो के फलस्वरूप है परन्तु वे परिस्थितियाँ भी अस्पष्ट और अस्वाभाविक-सी हैं । जब परिस्थितियों में ही कोई विशेष कारण निर्दिष्ट नहीं तो फिर कवि ही क्या निर्देश करे ? कैसी विचित्र बात है कि जिन कामिनियों का कृष्ण ने पूर्णरूपेण रसोपभोग किया, उन सब को बिना किसी कारण के सहसा क्यों भुला दिया ? जहाँ कृष्ण की १६ हजार रानियाँ बताई जाती हैं, वहाँ इनकी ही उपेक्षा क्यों ? भला गोपियों ने ही स्वय जाकर कृष्ण जी से क्यो नहीं कह दिया कि हमारा सर्वस्व उपभोग कर तुम अब इस प्रकार उदासीन क्यों हो गये हो ? श्रीकृष्ण कोई विशेष दूर-प्रदेश में नहीं चले गये थे, वे तो गोकुल से केवल तीन कोस की दूरी पर, मथुरा में ही विद्यमान थे । गोपियाँ जो उलाहने अब उद्धव को दे रही हैं वे स्वय जाकर कृष्ण को क्यों नहीं देतीं ? जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की गोपियाँ उद्धव से कितने स्पष्ट शब्दों में अपनी दशा का वर्णन कर रही हैं—

प्रथम भुराइ चावनाव पै चढाड नीकै,
न्यारी करी कान्ह कुलकूल हितकारी तें।
प्रेमरत्नाकर की तरल तरग पारि,
पलटि पराने पुनि प्रन पतवारी तें॥

अर्थात् पहले तो कृष्ण ने हमें वहकाया, फिर प्रेम से चावरूपी नौका पर चढाया, फिर अपने कुलरूपी हितकारक तट से हमें दूर किया, फिर प्रेमरूपी सागर की चचल लहरों में डाल दिया और अव अपनी प्रतिज्ञारूपी पतवार को छोडकर भाग गये हैं !! भला कोई वताये कि हमारी क्या दुर्दशा होगी ? हमारी सम्मति में उद्धव से न कहकर यदि वे स्वयं यही वातें कृष्ण से जाकर कहतीं तो सभवत इसका सुन्दर परिणाम हो सकता था। परन्तु क्यो नहीं कहा, यह गोल-माल अव तक सहृदयो के मन को व्यथित कर रहा है।

प्राचीन भक्त-कवियों के विरह-वर्णन को लेकर आज वैज्ञानिको के हृदयो में अनेक प्रकार की ऐसी ही शकाएँ उत्पन्न हो रही हैं जिनका समाधान तत्कालीन साहित्य में नहीं पाया जाता। परन्तु हरिऔध जी के विरह की सवसे वडी विशेषता यही है कि उसे पढकर वर्तमान वैज्ञानिक समालोचको की सव शकाएँ स्वत निरस्त हो जाती हैं। कैसे ? सुनिए—सवसे प्रथम तो उपाध्याय जी की यही विशेषता है कि उन्होने राधा-कृष्ण के प्रेम को पराकाष्ठा पर पहुँचाते हुए भी पति-पत्नीरूप में प्रमाणित नहीं किया। उन्होने राधा को आजन्म कुमारी ही वना रहने दिया है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उनकी उत्कट अभिलाषा थी कि वे दोनो परस्पर प्रेमपाश में, पति-पत्नीरूप में वँघ जायें परन्तु उन्हे कभी ऐसा अवसर ही नहीं मिल सका। जव कभी ऐसे अवसर की संभावना हुई उससे पहले ही वे एक-दूसरे से सदा के लिए ऐसे विछुड जाते हैं कि फिर कभी मिलाप ही नहीं हो सका।

इसके अतिरिक्त शेष गोपिकाओं के साथ श्रीकृष्ण का विशेष प्रेमा-

कर्षण नहीं था। वह तो सामान्य प्रेम था जिसके कारण दूसरे सभी व्रजवासी श्रीकृष्ण के गुणों पर मुग्ध थे और उनके विरह में व्यथित थे। ठीक इसी प्रकार गोपिकाएँ भी विरह से विकल थीं। उनमें पति-पत्नी भाव का आकर्षण उपाध्यायजी की वैज्ञानिक व्याख्या में था ही नहीं। वहाँ ऐन्द्रियता या वासना का लेशमात्र भी नहीं था।

जब श्रीकृष्ण ने विरह-ज्वाला से सतप्त होकर उद्धव को मथुरा भेजा उस समय यह तथ्य भी प्रकट कर दिया गया है कि मैं राजनैतिक पचडों के कारण वहाँ नहीं पहुँच सका हूँ, उधर राधिका भी एक मानिनी नारी है, वह भी बिना बुलाये श्रीकृष्ण के पास नहीं जा सकती।

इस विरह में एक अनिर्वचनीय सात्त्विकता प्रतीत होती है। यहाँ 'तीन कोस की दूरी' का प्रश्न भी नहीं उठता। जब कर्तव्य-भावना जागरूक होती है और उसकी निष्ठा प्रतिक्षण उसके लिए उभारती रहती है तो 'एक घर की दूरी' पर के प्रियतमा के घर को भी छोडकर चुपचाप चला जाना पडता है। वास्तव में श्रीकृष्ण एक महान् लक्ष्य की पूर्ति में सलग्न थे इस कारण उनके लिए यह स्वाभाविक था कि वे अपने शैशव के प्रेमाकुर को अधिक विकसित न होने देते और उसकी उपेक्षा करते रहते।

प्रेम के पचडों में पडकर उनकी गतिविधि में बाधा पड जाती इसलिए उन्हें यही उचित प्रतीत हुआ कि वे इस प्रेम-प्रपच से पृथक् ही रहें और अपने कर्तव्य-पथ पर अग्रसर होकर सफलता प्राप्त करते जायँ, किन्तु ऐसा होने पर भी उनके हृदय-पटल पर राधिका की मूर्ति सदा अकित रही—राधिका उन्हें भूली नहीं।

हरिऔधजी ने उधर राधिका को भी एक गम्भीर एव अनुकरणीय हृदय दिया है जो स्वत अपने मन-मन्दिर में प्रेम की अग्नि जलाती

हुई कर्तव्य की वेदी पर न्योछावर हो जाती है। उसने अपने प्रियतम (कृष्ण) की इच्छा में ही अपनी सब कामनाएँ होम कर दीं और उसी के कर्तव्य में अपने जीवन की सत्ता समाप्त कर दी। ऐसी कर्तव्य-परायण नारियाँ संसार में सर्वथा दुर्लभ हैं। अपने जीवन की भेंट देकर भी राधिका ने अपने अक्षय प्रेम को साहित्य में सचमुच अमर बना लिया है। श्रीकृष्ण के नाम के साथ केवल 'राधा' का नाम ही लिया जाता है दूसरी कामिनियो का नहीं। राधा ने कृष्ण के अनुराग में एकात्मकता का प्रमाण दिया है और उस अनुराग को जीवन में तथा संसार के साहित्य में अमर कर दिया है।

इस प्रकार उपाध्यायजी के विरह-वर्णन में प्राचीन भक्त-कवियों के विरह की अपेक्षा एक सजीवता है, मौलिकता है। 'प्रियप्रवास' के विरहानल में तपकर राधा और कृष्ण का चरित्ररूपी सुवर्ण लसक कर कुन्दन बन गया है।

प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य से प्रमाणित होता है कि पार्वती के घोर तप ने 'शिव' के हृदय में, सीता के घोर संकटों की सहिष्णुता ने 'राम' के हृदय में और सावित्री के मानसिक कष्टो ने 'सत्यवान्' के हृदय में जो अमिट अस्तित्व छोड़ा है और जो अपने व्यक्तित्व की स्यायी छाप लगा दी है वह काल के कपाल पर अनन्त काल के लिए निहित है। इसी प्रकार राधा की तपस्या भी वही रंग ला रही है जिसके कारण आज सभी एक स्वर से 'राधाकृष्ण', 'राधारमण', 'राधाकान्त', 'राधेश्याम', 'राधिकाशरण', 'राधास्वामी' आदि शब्दो में उसी राधा का यशोगान कर रहे हैं जिसने अपने प्रियतम के लिए सर्वस्व स्वाहा कर दिया था। इसके लिए साहित्य का अन्तःसाक्ष्य सदा लोक-समाज को मुखरित करता रहेगा।

मैथिलीशरण गुप्त

परिचय

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म, सेठ रामचरण जी वैष्णव के यहाँ स० १९४३ में उत्तरप्रदेशीय चिरगाँव जिला झाँसी में हुआ। चूंकि गुप्तजी के पिता एक वैष्णव भक्त तथा कवितानुरागी भावुक व्यक्ति थे इसीलिए सांस्कृतिक निष्ठा तथा कवित्व-प्रतिभा ये दोनो विभूतियाँ अचल सम्पत्ति की भाँति गुप्तजी को उत्तराधिकार में प्राप्त हुईं।

कहा जाता है कि गुप्तजी की प्रारभिक शिक्षा घर पर ही मुशी अजमेरी द्वारा हुई थी, इसी कारण गुप्तजी के मन में कभी भी मुसलमानों के प्रति घृणा का भाव पैदा नहीं हुआ। गुप्तजी के साहित्यिक गुरु आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी थे। इनके गुरुत्व ने गुप्तजी की काव्य-प्रतिभा को विकसित किया। गुप्तजी ने सस्कृत और बँगला भाषाओं का भी गभीर अध्ययन किया था, इसी कारण इनकी भाषा में स्थायित्व और परिपक्वता परिलक्षित होती है। गुप्तजी ने हिन्दी-साहित्य की स्मरणीय सेवा की है। वे सन्तान और गृहस्थ के सम्बन्ध में सदा चिन्तित और व्यथित रहे, परन्तु ये चिन्ताएं गुप्तजी की गभीरताओं को न छीन सकीं।

गुप्तजी भाषा-चयन में अद्वितीय हैं, दृश्य-वर्णन में उनका शब्द-सौष्ठव उनकी विकासोन्मुखी प्रतिभा का परिचायक है। वे स्लेट पर लिखते हैं, गुनगुनाते रहते हैं, आलोचनाप्रिय हैं, साधारण वेष-भूषा के पुजारी हैं, स्वभाव से नम्र तथा स्वाभिमानी हैं, ग्राम्य-जीवन, जो भारतीयता का प्रतीक है, के पक्षपाती हैं।

गुप्तजी भारतीय सस्कृति के उपासक हैं। इसका प्रभाव उनकी

प्रारम्भिक रचनाओ में स्पष्टतया मिलता है। वे अतीत के परमभक्त हैं, कई आलोचकों का जो यह मत है कि वे हिन्दू-राष्ट्रीयता के पोपक हैं, केवल आंशिक रूप से ही सत्य कहा जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आपका सम्बन्ध वर्तमान राष्ट्रीयता से भी है। जहाँ आपने भारत-भारती, पचवटी, जयद्रथ-वध आदि हिन्दू-संस्कृतिप्रधान ग्रन्थ लिखे हैं वहाँ आपने 'कावा और कर्बला' जैसी पुस्तकें लिखकर हिन्दू-मुस्लिम समस्या को भी अछूता नहीं छोड़ा।

भारतीय गौरव को पुनः स्थायी बनाने की भावना ने आपको भारतीय संस्कृति का विवेचक और लेखक बना दिया। तत्कालीन वातावरण गृह-परिस्थितियाँ, पैतृक संस्कार तथा सामाजिक विधि-विधानो ने आपकी उपरोक्त भावना को विशेष रूप से घनीभूत कर दिया। यही कारण है कि गान्धीवादिता का प्रभाव आपकी कविताओ और प्रवन्ध-काव्यो पर स्पष्ट लक्षित होता है।

गुप्तजी का यह विचार कि विभिन्न पुष्पों के सम्पर्क से माला की सौन्दर्यवृद्धि ही तो होती है, उनकी वर्तमान हिन्दू-मुस्लिम राष्ट्रीयता का पोषक है।

गुप्तजी के बाह्य एवं आन्तरिक जीवन के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनका व्यक्तित्व जहाँ भारतीय संस्कृति एवं प्राचीन दर्शन-शास्त्रीयता से प्रभावित है वहाँ वर्तमान समस्याओं से भी ओतप्रोत है। उनकी जेल-यात्राएँ राष्ट्रीय भावनाओ की पोषक हैं। आपने अपनी रचनाओं में भूत, भविष्यत् और वर्तमान का समन्वय सम्यक् प्रकार से किया है।

गुप्तजी हिन्दी के राष्ट्रीय कवियो का प्रतिनिधित्व करते हैं। आपका अध्ययन, विवेचन और मनन अधिक विशद है परन्तु इसके लिए वे तत्कालीन परिस्थितियाँ भी सहायक सिद्ध हुई हैं जिनमें आपका जन्म

हुआ। परिस्थितियों ने ही आपको 'राष्ट्रीय कवि' और बाबू प्रेमचन्द को 'उपन्यास-कला-सम्राट्' बना दिया है। यद्यपि दोनों समकालीन हैं परन्तु परिस्थितियो में अन्तर होने से कोई कुछ और कोई कुछ बन गया है। वास्तव में परिस्थितियाँ वैसा बनने के लिए व्यक्ति को विवश कर देती हैं।

गुप्तजी के जन्म से एक वर्ष पूर्व 'कांग्रेस महासमिति' का निर्माण हो चुका था और इससे भी पहले देश में प्राचीन सस्कृति के एकमात्र उन्नायक स्वामी दयानन्द के सतत प्रयास से 'आर्यसमाज' का प्रभाव अभिव्याप्त था। देश की उस क्रान्ति में हिन्दुत्व और मृतप्राय सस्कृत साहित्य पुनर्जीवित हो रहा था। आर्यभाषा का प्रचार बढ रहा था और आर्य लोग देश को प्राचीन यज्ञों के धूम्र से एक बार पुन. पवित्र करने का स्तुत्य प्रयत्न कर रहे थे। चारों ओर वैदिक सस्कृति की पुकार हो रही थी। हिन्दू-सस्कृति और राष्ट्रीयता का निर्माण धर्म की सुदृढ़ नींव पर खडा किया जा रहा था। ऐसे वातावरण में भारत की गोदी में गुप्त-जैसा दूरदर्शी कलाकार अवतरित हुआ।

गुप्तजी के जन्म-काल के वातावरण में ब्रजभाषा हिन्दी-साहित्य को समृद्ध बना रही थी और भारतेन्दु-जैसे कलाकार एव कर्णधार अपने निरन्तर प्रयत्नों से हिन्दी साहित्य की गतिविधि में नव परिवर्तन कर रहे थे।

हिन्दी-साहित्य में धार्मिक और साहित्यिक अन्वेषण हो रहे थे, दोनों दृष्टियों से तत्कालीन साहित्य गौरवान्वित किया जा रहा था। यद्यपि पद्यों के लिए ब्रजभाषा स्वीकार की जा चुकी थी तथापि हिन्दी-गद्य के लिए खडीबोली को ही जोरों से खडा किया जा रहा था।

स्त्री-जाति के प्रति सवेदना की भावनाएँ देश में जाग्रत हो रही थीं। भारत-भूमि का प्रत्येक भाग स्वजाति, स्वभाषा तथा स्वदेश की उन्नति की पुकारों से प्रतिध्वनित हो रहा था। तात्पर्य यह है कि देश प्राचीन

गौरव की गाथाएँ सुनकर नवीन जीवन प्राप्त करने के लिए तरंगित हो रहा था। एक नूतन क्रान्ति अपना प्रभाव जमा रही थी। उस क्रान्ति के प्रभाव से गुप्तजी भी अछूते न रह सके। परिणामस्वरूप उन्होने भारतीय गौरव से हिन्दी-साहित्य को गौरवान्वित कर दिया। इस काल का मुख्य प्रभाव यह हुआ कि इसने मैथिलीशरण गुप्त-जैसा समर्थ राष्ट्रीय कवि देश को प्रदान किया जो सच्चे अर्थों में राष्ट्र की विभूति है।

गुप्त जी और खड़ीबोली

इसमे कोई सदेह नहीं कि खड़ीबोली के विकास में गुप्तजी को कोई विशेष कठिनाई नहीं आई परन्तु एक नये परिवर्तन के लिए उन्हें घोर परिश्रम करना पड़ा। खडीबोली के समय ने गुप्त जी को भारतेन्दु-युग से पृथक् कर द्विवेदी-युग में खडा कर दिया है।

भारतेन्दु ने गद्य के लिए तो खड़ीबोली स्वीकार कर ली थी, परन्तु पद्य की भाषा ब्रजभाषा ही रही थी। कुछ समय के पश्चात् ज्योंही आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन का प्रबन्ध हाथ में लिया त्यो ही गद्य-पद्य दोनों के लिए खडीबोली का एक सबल आन्दोलन आरम्भ हुआ। इसका प्रबल विरोध भी हुआ, यहां तक कि आलोचकों ने कह दिया कि जिस भाषा में भगवान् ने मचल मचल कर अपनी लीलाओं का अभिनय किया हो, भला उसके माधुर्य की तुलना कौन कर सकता है ? परन्तु फिर भी युग-परिवर्तन के झंझावात में बेचारी कोमलाङ्गी ब्रज-भाषा की मधुर पदावली सहसा विलीन हो गई अर्थात् जब युग में ही परिवर्तन आ गया तब भाषा में भी परिवर्तन का आना स्वाभाविक था।

वास्तविकता यह है कि खड़ीबोली का चारों ओर स्वागत अवश्य हुआ, साहित्य की नूतन सृष्टि भी श्रीधर पाठक और अयोध्यासिंह उपाध्याय

ने कर डाली, फिर भी ब्रजभाषा का माधुर्य-मोह सहसा न छूट सका। श्रीधर पाठक 'एकान्तवासी योगी' में ब्रजभाषा की पुट न छोड सके। और प्रियप्रवास जैसे महाकाव्य में भी ब्रजभाषा की उपासना से हरिऔधजी मुक्त न हो सके।

द्विवेदीजी ने ब्रजभाषा में लिखे शृङ्गार-रस की आड लेकर खडीबोली की स्थापना करना प्रारम्भ किया और सफल भी हुए।

गुप्तजी ने अपनी रचनाएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित करनी आरभ कर दी थीं, द्विवेदीजी ने उनका सशोधन किया और छपवाया। स्वय भी कविताएँ लिखीं, अन्य कवियों से भी लिखवाई। इस प्रकार एक महान् क्रान्तिकारी आन्दोलन खडीबोली को प्रतिष्ठित करने के लिए किया गया और इस दिशा में इन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। गुप्तजी की 'भारत-भारती' ने खडीबोली के प्रसार में विशेष सहायता पहुँचाई। इसके 'हरिगीतिका' छन्द विशेष लोकप्रिय बन गये। इस प्रकार जनसाधारण की रुचि भी इधर बढ़ने लगी।

द्विवेदीजी का सहयोग पाकर गुप्तजी ने जहाँ अनेक ग्रन्थो की सुन्दर रचना की है वहाँ आपने खडीबोली का शृङ्गार भी किया है। आप अपने समय में अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक विकासोन्मुख रहे हैं।

खड़ीबोली—इतिवृत्तात्मकता में गुप्तजी ने सर्वप्रथम रस-सचार का कार्य किया है अर्थात् इस खडीबोली को काव्य-भाषा बनाने में आपका ही परिश्रम सराहनीय एव स्तुत्य है। आपका साहित्य इस तत्त्व का सजीव और प्रत्यक्ष प्रमाण है।

गुप्तजी के कथानकों का अतीत इतिहास से सम्बन्ध

यह निर्विवाद स्वीकार किया जाता है कि गुप्त जी ने अपने प्रबन्ध-खड-काव्य के कथानक अतीत इतिहास से लिये हैं। परन्तु ऐसा करना नितान्त स्वाभाविक था क्योंकि गुप्त जी का जन्म ही ऐसे वातावरण में

हुआ था। जब भारतीय संस्कृति और भारतीयता की देश-भर में पुकार हो रही थी, तब सभी ऐसा करने में गौरव अनुभव कर रहे थे। इसके अतिरिक्त सिद्धान्त भी यह है कि वर्तमान को सदा अपने अतीत से ही प्रेरणा मिलती है, अतीत ही पुरातन वैभव, वीरता, साहस, उदारता और कर्मण्यता की याद दिलाता है और राष्ट्र के हृदय में इन भावनाओ को जगाता है, जैसाकि गुप्त जी कहते हैं—

वर्तमान यह आयोजन है, जिस भावी जीवन का ,
कुछ अतीत संकेत मिले तो अधिक काम इस जन का।

इसके अतिरिक्त गुप्तजी अपने पूर्ववर्ती कवियो की प्रणाली से अतीत की गाथाएँ लेकर जनता को जगा रहे थे। आपने 'रग में भग' और 'जयद्रथवध' आदि लिखकर ईर्ष्या-द्वेष (फूट) का संकेत किया और नारी-चरित्र का महत्त्व भी बताया। इस प्रकार अपने पूर्वजो के चरित्र का आपने यशोगान किया और वर्तमान को अधिक सबल बनाने का प्रयत्न किया। 'पचवटी' की रचना से हमें यह आश्वासन मिलता है कि कवि जहाँ अतीत के कथानक लेकर रचना करता है, वहाँ वर्तमान की आवश्यक समस्याओ से भी अनभिज्ञ नहीं रहता। 'पचवटी' मे कवि का हृदय सुन्दर भावनाओ में अभिषिक्त हो रहा है और वह आधुनिक समस्याओ पर भी विचार कर रहा है। 'पचवटी' गृहस्थ-जीवन की प्रतिच्छवि है, झाकी है जिसने पर्याप्त रूप में वर्तमान समस्या को सुलझाने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। इसमें कवि को सफलता भी मिली है।

इस प्रकार गुप्त जी अतीत से कथानको को चुनने में सिद्धहस्त हैं। इस युग से वे अपरिचित नहीं, वे आधुनिक युग की सकल भावनाओ को पहचानते हैं और जहाँ आवश्यकता अनुभव करते हैं वहाँ उनका सुन्दर एव उपयुक्त समावेश भी करते हैं। उनका उद्देश्य यही रहता है कि वर्तमान को अतीत से जोडकर भविष्य के लिए एक नया मार्ग प्रदर्शित किया जाय।

भाषा और भाव

गुप्तजी का भाषा पर गभीर अधिकार है जिसके द्वारा वे प्रवन्ध-काव्यों में सफलता प्राप्त करते, अनेक वर्णन-शैलियो को अपनाते, दृश्यों में एव प्रकृति-वर्णनों में एक प्रकार का विचित्र आकर्षण उत्पन्न करते और गिने-चुने शब्दो में प्रचुर भाव-समूह को बांध देते हैं।

उनके पास शब्द-भडार है। उन्होंने तत्सम शब्दों का भी भरसक प्रयोग किया है। वे तद्भव शब्दों को भी यथास्थान विभूषित करने में चूके नहीं हैं। देश में प्रचलित शब्दों का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग करने में सकोच नहीं किया। अपनी इच्छानुसार लोकोक्तियों और मुहावरो में यत्किंचित् परिवर्तन भी कर लिया है और उनका प्रचुर प्रयोग भी किया है।

गुप्तजी ने द्विवेदीजी-जैसे गुरु को पाकर खडीबोली को सप्राण कर दिया है। अपने भाषा-कोष से साहित्य में नित्य नवीन सप्रभ रत्नों का विकास किया है। साथ ही खडीबोली को विभिन्न शैलियाँ भी प्रदान की हैं।

काव्य-शैलियाँ

गुप्तजी की काव्य-शैलियों पर गम्भीर विचार करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन्होंने प्रवन्ध-युक्त शैली ही नहीं, 'गीतिकाव्य' की शैली भी अपनाई है। 'साकेत' और 'यशोधरा' ये दोनो प्रवन्ध-काव्य की शैली पर लिखे गये है, और 'भारत-भारती' में आपकी 'मुक्तकमयी शैली' स्पष्ट परिलक्षित हो रही है, गीति-काव्य' बाद में अपनाया गया है।

गुप्तजी के प्रवन्ध काव्यों में 'प्रसाद' जी के गीतों के समान सौन्दर्य एव रसास्वाद पाया जाता है। आपकी रचनाओं में शैलियों का मिश्रण कुछ

अद्भुत ढंग से पाया जाता है। शैलियो के आधार पर आपके काव्यों को छः भागो में विभक्त किया जा सकता है—

१. प्रबन्धकाव्य की शैली—इसमें साकेत, पंचवटी, जयद्रथवध आदि हैं।

२. विवरणशैली—इसमें 'भारत-भारती' आदि हैं।

३. गीतिनाट्य-शैली—इसमें 'अनघ' आदि हैं।

४. गीति-शैली—इसमें 'झंकार' आदि हैं।

५. आत्मोद्धार शैली—इसमें 'द्वापर' आदि हैं।

६. मिश्रित शैली—इसमें नाटक, गीत, प्रबन्ध, गद्य, पद्य सभी का समावेश पाया जाता है, जैसे 'यशोधरा' आदि।

इस प्रकार हमें उनकी रचनाओं में शैलियो की विविधता दिखाई देती है। वास्तव में गुप्तजी ने आधुनिक युग के कवियो के लिए अनेक शैलियो का प्रशस्त मार्ग बना दिया है और साथ ही अपनी रचनाओं में उनका सफल निर्वाह करके उनकी वास्तविकता भी सिद्ध कर दी है। गुप्तजी की शैलियां, वर्तमान हिन्दी-साहित्य की पवित्र एवं निर्मल धाराएं हैं जिनके द्वारा हिन्दी-साहित्य युग-युगान्तरो तक पावन बना रहेगा।

रचनाएँ

यशोधरा—यह गुप्तजी की अमर कृति है। इसमें गौतम के गृह-त्याग से लेकर पुनरागमन तक का वर्णन है। इसके प्रत्येक पद में यशोधरा की अन्तर्वेदना निहित है। गुप्तजी ने नारी-जीवन के मूलभूत तत्वों का संकेत इस प्रकार किया है—

अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध, और आंखो में पानी॥

इसमें संदेह नहीं कि यशोधरा एक व्यथित वियोगिनी है, गंभीर

है, उसे केवल यही दु ख है कि उसके पतिदेव उसे बिना कुछ कहे ही चले गये। यदि वह अपने पति को स्वय भेज देती तो सभवतः इतनी दुखी न होती, कवि को चूंकि यशोधरा का चरित्र ही अभीष्ट था इसलिए उसने यशोधरा के अन्तराल से व्यथा की उत्ताल तरगें प्रवाहित की हैं। यशोधरा को 'उर्मिला' जैसा अभाव नहीं है, क्योंकि राहुल उसके विरही जीवन को व्यतीत कराने में बडा भारी सहायक है। हां! उर्मिला के वियोग की अवधि थी परन्तु यशोधरा का वियोग निरवधि है। फिर भी यशोधरा उर्मिला की तरह अश्रुमयी नहीं। सभव है कवि ने ही उसे उर्मिला की तरह चित्रित न किया हो।

यशोधरा मानिनी है। गौतम स्वय वापिस आ जाते हैं फिर भी यशोधरा स्वय मिलने नहीं जाती। गौतम ही उसके पास आते हैं। इसमें यशोधरा के नारीत्व की विजय समझनी चाहिए। मुक्ति के लिए जिस नारी का त्याग आवश्यक था उसी के लिए गौतम वापिस आये, यही तो नारीत्व का गौरव है, विजय है।

यशोधरा भारतीय नारी-जीवन की आदर्श प्रतिमा है। उसे नारीत्व की व्यापक चेतना की शक्ति प्राप्त है। बुद्ध का मुक्तिपथ, वैष्णवतत्त्व से मिल गया है। हिन्दी-साहित्य में यशोधरा मानिनी, अनुरागिणी एव जननी के रूपों में चिरस्मरणीय रहेगी।

द्वापर

'द्वापर' भी गुप्तजी का एक अपूर्व काव्य है। इसकी कला, कल्पना, शैली, उद्देश्य और सवाहकता सब कुछ अपूर्व ही हैं। इसमें श्रीकृष्ण का चरित श्रीमद्भागवत के आधार पर वर्णन किया गया है। इसमें पात्रों की विशेषता है—गुप्तजी ने उपेक्षित पात्रों को भी उत्थान की ओर ले जाने का प्रयत्न किया है। इसमें विधृता-जैसे अप्रसिद्ध पात्र भी हैं। 'द्वापर' काव्य के पुरुषों में वीरता एव स्त्रियों में करुणरस की प्रधानता पाई जाती है।

अब तक गुप्तजी ने अपने काव्यों में केवल विख्यात पात्रों को ही अपनी सहानुभूति प्रदान की थी, परन्तु इधर 'द्वापर' काव्य में तो विधृता-जैसे पात्र को भी अपनाकर एक महान् आदर्श की भावना उपस्थित की गई है। यहाँ विशेष का सामान्य से और महान् का लघीयान् से मेल कराया है। विधृता वियोगिनी नहीं; निरोहा, निराश्रिता और पीड़िता है। इसमें नारी का ओज है, नारीत्व है, युग की समस्या है। नारी को हम वासना की मूर्ति समझते हैं, मानव-समाज की यह भ्रान्ति किसी सीमा तक दूर की गई है। जहाँ वीरोचित भावनाएँ अपने रूप में अभिव्यक्त हों, वहाँ वासना की प्रतिच्छवि अपना प्रभाव प्रदर्शित नहीं कर सकती ; वहाँ तो कर्तव्योन्मुखी प्रतिभा का प्रसार आरम्भ हो जाता है।

इस काव्य में समस्याओं का समाधान किया गया है, इसमें क्रान्ति की प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति प्रत्येक वस्तु में होनी चाहिए। 'द्वापर' काव्य द्वारा हमें अग्रसर होने की प्रेरणा मिलती है। इसमें सर्वतोमुखी क्रान्ति की भावना पाई जाती है। यही इसका ध्येय और उच्चतम आदर्श है।

नहुष

'नहुष' काव्य में वृत्रासुर के वध के कारण, इन्द्र के जल-समाधि लेने पर नहुष को इन्द्र के सिंहासन पर बिठा दिया जाता है, परन्तु नहुष के निन्द्य व्यवहार उसे पतन की ओर ले जाते हैं। इस काव्य में जीवन के उत्थान और पतन के सुन्दर दृश्य अंकित किये गये हैं। मनुष्य अपने उत्थान का प्रयत्न करता है, परन्तु वह अपने अधम कर्मों द्वारा पतित हो जाता है और अनवद्य कर्मों के आचरण से वह उत्थान की ओर अग्रसर होता है। अनेक राजा-महाराजाओं ने ज्योतिष्टोमादि यज्ञों के कारण स्वर्ग की प्राप्ति की है। अनेक पुरुष साधारण कुलों में उत्पन्न होकर महान् ऋषि-मुनि-पद को प्राप्त कर गये हैं। अतीत भारत के इतिहास एवं साहित्य में वाल्मीकि, व्यास, जाबालि, सत्यकाम, ऋष्यशृङ्ग, वसिष्ठ, कणाद आदि के आख्यान इस

तथ्य को प्रमाणित कर रहे हैं। ऐसा ही नहुष में उत्थान की ओर जाकर पतन की ओर जाने का एक सजीव चित्र उपस्थित किया गया है। गुप्त जी नहुष का एक मानसिक चित्र खींचते हैं।

गिरना क्या उसका, उठा ही नही जो कभी ,
मैं ही तो उठा आप गिरता हूँ जो अभी।

गुप्तजी के दोनो काव्यों में कला का सुन्दर रूप पाया जाता है, साथ ही उदारता उसमें चार चाँद लगा रही है। 'द्वापर' में विधृता के प्रति और 'नहुष' में नहुष के प्रति अनुकरणीय उदारता का प्रदर्शन किया गया है। वास्तव में यह उदारता वैष्णव-धर्मानुराग की प्रतीक है। अत कला और उदारता के दृष्टिकोण से ये दोनों काव्य लोक-दृष्टि में सफल माने गये हैं और इसी कारण ये नवजीवनदाता हैं, क्योंकि सहानुभूति का सहारा भी पतितों के लिए नवजीवनदाता बन जाता है। 'डूबते को तिनके का सहारा' यह उक्ति भी इसी तथ्य की व्याख्या में सहायक सिद्ध हुई है। वास्तव में पीडित मानव-जीवन की समस्याओं का सुधार करके गुप्तजी हमें आशावादिता और आत्मविश्वास का सदेश देते हैं।

अनघ

परिस्थितियाँ काल-क्रमानुसार परिवर्तित होती रहती हैं और प्राय कवि भी परिस्थितियों के अनुसार अपने काव्य-जीवन को परिवर्तित करता रहता है। इसी नियम के अनुसार गुप्तजी ने भी समयानुकूल परिस्थितियों का सुन्दर चित्रण किया है। यही कारण है कि 'अनघ' में हम गांधीवाद का प्रभाव पाते हैं। इस नाटक का नायक 'मघ' है जो ग्रामोद्धार, अछूतोद्धार आदि गान्धीवाद के सिद्धान्तों का समर्थक है। इस की नायिका भी नायक के कर्मों का साभिमान अनुमोदन करती है, उन कार्यों को प्रशसा की दृष्टि से देखती है।

इसी प्रकार गुप्तजी ने 'त्रिपथगा' काव्य लिखा है जिसमें महाभारत-

कालीन घटनाओं के आधार पर तीन 'खण्ड-काव्य' संकलित हैं। इनमें मानवता की भूमि पर उच्च राष्ट्रीयता की प्रतिष्ठा की गई है।

गुप्तजी ने 'अनघ' में गान्धीवाद की सामयिक समस्याओ पर पूर्ण प्रकाश डाला है। साथ ही बुद्ध के सिद्धान्तो का गान्धी के सिद्धान्तों से संतुलन भी किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'साकेत' महाकाव्य के लिखने से पहले गुप्तजी की विचारधाराओ में स्थिरता नहीं थी। वे कभी तो हिन्दू-राष्ट्रीयता को अपनाते हैं और कभी हजारो वर्षों की पुरानी सास्कृतिक धारणाओ को नव्य रूप देकर समाज, जाति और राष्ट्र के सुधार करने पर अधिक बल देते हैं, और कभी गान्धीवाद के प्रवाह में बहते दिखाई देते हैं। कभी वे मुस्लिम-संस्कृति को उपादेय समझते हैं तो कभी वैदिक-कालीन संस्कृति-सभ्यता की उपासना करना ही अपना परम ध्येय समझते हैं। इस प्रकार स्थिररूपेण गुप्तजी स्वयं ही निश्चित पथ के अनुगामी नहीं बन सके। यही कारण है कि वे जनसाधारण के लिए कोई निश्चित सिद्धान्त प्रतिपादन नहीं कर सके, अनिश्चित मानस लेकर रह गये हैं।

साकेत

'साकेत' गुप्तजी के जीवन, कला, कल्पना एवं बौद्धिक प्रतिभा का प्रकाण्ड प्राङ्गण और विकास की विभूति है। वास्तव में आपका जो रूप 'पंचवटी' काव्य में विकसित हुआ है वही रूप इस महाकाव्य में पुष्पित एव पल्लवित होकर दिग्दिगन्तरो में सुरभित समीर से साहित्य-कानन को सुगन्धित कर रहा है। साथ ही गुप्तजी की विकासोन्मुखी प्रवृत्ति ने उनमें कई नव्य-भव्य विशेषताएँ पैदा कर दी हैं।

(१) अब गुप्तजी छोटी कथाओं को छोड़कर बड़ी-बड़ी कथाओं द्वारा अपनी प्रतिभा का परिचय देने लगे हैं।

(२) 'साकेत' लिखने के पश्चात् गुप्तजी राम के दृढ विश्वासी एवं अनुरागी भक्त बन गये हैं। वे कहते भी हैं—

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय, सहज सम्भाव्य है।

(३) अब गुप्तजी मनुष्यता के प्रबल समर्थक बन गये हैं। वे जीवन के उच्चादर्श पर खड़े होकर मानव को विश्वबंधुता की शिक्षा दे रहे हैं।

(४) 'साकेत' में गुप्तजी समन्वय की ओर आकर्षित हो रहे हैं। कथाओं में रामचरित भले ही गाया जा रहा हो परन्तु आप उनमें भी मानवता की प्रतिष्ठा कर रहे हैं।

(५) अब गुप्तजी नारी के प्रति अधिक श्रद्धावान् हैं और उन्हें दिव्यालोक से पूर्ण करना चाहते हैं। आपने उर्मिला, यशोधरा और विधृता के चरित्रों को एकदम स्वर्गीय बना दिया है जो पाठक के हृदय में एक अनुभूति के रूप में सदा स्मरणीय रहेंगे और साहित्य सदा उनकी दिव्यता से देदीप्यमान होता रहेगा।

(६) अब गुप्तजी की कल्पना और अनुभति एक विशद प्राङ्गण में प्रसार करना चाहती है, इतिवृत्तात्मकता की उपेक्षा करके वे घटनाओं के स्थान पर पात्रों को नव्य-भव्य भावनाओं से भावित करके हमारे सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। वे कला के पुजारी हैं, मानव जीवन की अनुभूति के भी परम उपासक बन गये हैं।

(७) गुप्तजी में भारतीयता का व्यापक रूप प्रतिष्ठित हो चुका है, जो सर्वसम्मत, ग्राह्य और अनुकरणीय है। अब उनके विचारों में संकीर्णता का सर्वथा अभाव पाया जाता है। औदार्य का स्रोत प्रस्फुटित होकर मानव-मात्र को पुनीत बना रहा है।

(८) गुप्तजी में अपेक्षाकृत बौद्धिक विकास के साथ-साथ सर्वसाधारण मानव के प्रति भी हृदय-संवेदना, मार्मिक अनुभूति, करुणापरता एवं मानवीय आभा का विकास अधिक उत्कृष्ट हो गया है। यह वह चित्रण है जिसके लिए किसी साक्ष्य की आवश्यकता नहीं, उनकी मानवता ही अमानवता का प्रत्याख्यान है।

हमें निस्संकोच कहना पड़ता है कि जिन विशेषताओं का संकेत 'पंचवटी' में सूत्ररूप में मिला है, वे विशेषताएँ उत्तरकालीन काव्यों में व्याख्या बन कर बिखर गई हैं मानो गंगोत्तरी की पुनीत धारा समतल भूमि में विशाल रूप धारण कर गई हो।

साथ ही गुप्तजी अपने नवीन काव्यों में मानवीयता के प्रश्न को अधिक सरलता से सुलझाने में सफल हो गये हैं—ऐसा प्रतीत होता है।

'साकेत' में भरत के चरित्र को गुप्तजी ने कितना हृदयग्राही बना दिया है। भरत पितृस्नेह और भ्रातृस्नेह के आदेश से समन्वित है। भरत अपने को तुच्छ, साधारण एवं कलंकी समझता है, संसार में अपने-आपको निरर्थक समझता है परन्तु माण्डवी उसके चरित्र में चार चांद लगाती हुई उसे सान्त्वना देती है—

मेरे नाथ ! जहाँ तुम होते, दासी वहीं सुखी होती,
किन्तु विश्व की भ्रातृ-भावना, यहाँ निराश्रित ही रोती।

इससे परिलक्षित होता है कि गुप्तजी ने दूसरों से उपेक्षित पात्रों को ही प्रकाश में लाने की चेष्टा की है। उन्होंने तुलसी के समान राम, सीता तथा अन्य पात्रों का चित्रण किया है। लक्ष्मण यद्यपि मूक है पर उसकी वीर-भावना 'साकेत' में भी गूंज रही है। गुप्तजी उर्मिला और कैकेयी-जैसे पात्रों को निष्कलंक बनाना चाहते हैं। यह सब उन्होंने अपनी कल्पना और सहानुभूति एवं मनोवैज्ञानिक प्रतिभा के सहारे किया है। इसमें संदेह नहीं कि 'साकेत' में गुप्तजी अपने उद्देश्य में, कला की दृष्टि से, चरित्रचित्रण के स्वाभाविक विकास से तथा कथानिर्वाह की पद्धति से, सभी रूपों से सफल सिद्ध हुए हैं। 'साकेत' इस वैज्ञानिक युग के लिए एक विभूति है और गुप्तजी की महान् देन है जो साहित्य में स्मरणीय ही नहीं, अपितु अक्षुण्ण बनी रहेगी।

'साकेत' गुप्तजी की अमर साधनाओं का सार और उनके मनोयोग

का निष्कर्ष और कला का चरम विकास है। गुप्तजी ने रामायण तथा रामचरितमानस की पुरातन कथा को लेकर एक ऐसा मनोज्ञ रूप दिया है, ऐसे नूतन वेश में अलकृत किया है कि वह हिन्दी-साहित्य का 'अक्षयवट' बन गया है, जैसे तुलसी ने राम को भक्ति का केन्द्र, भक्ति का गढ़ सिद्ध किया है। वह वाल्मीकि के राम के समान 'पुरुष' नहीं है, वह तो अशरण-शरण प्रभु है। 'साकेत' का राम भगवान् ही सही, पर हमसे वह भिन्न नहीं है। जैसा कि स्वय गुप्तजी कहते हैं—

राम राजा ही नही, पूर्ण अवतार पवित्र,
पर न हमसे भिन्न है, साकेत का गृहचित्र।

'साकेत' का राम इस ससार को स्वर्ग बनाने की चिन्ता में है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई आधुनिक महापुरुष राम के रूप में सदेश दे रहा हो। चूंकि गुप्तजी के राम वैज्ञानिक युग में अवतीर्ण हुए हैं तुलसी के भक्ति-युग में नहीं, यही कारण है कि राम में गुप्तजी ने आधुनिक भावनाओं को ओत-प्रोत कर दिया है। गुप्तजी के राम एक आदर्श वैष्णव व गृहस्थी बन गये हैं, जिनमें एक महापुरुष की निष्ठा पाई जाती है, जो भगवान् होते हुए भी हमारे महापुरुष हैं।

'साकेत' राम के गुणों का वर्णन करने के उद्देश्य से नहीं लिखा गया मालूम होता अपितु ऐसा जँचता है कि इसके द्वारा गुप्तजी ने ससार के समक्ष उर्मिला के चरित्र को रखना था और वे इसमें सफल भी हुए हैं। कुछ आलोचकों का मत है कि इसके नायक-नायिका लक्ष्मण-उर्मिला नहीं हो सकते क्योंकि राम और सीता इनका स्थान लेने पर उतारू प्रतीत होते हैं। यह मान्यता कदापि निर्मूल नहीं हैं परन्तु फिर भी कहना पड़ेगा कि गुप्त जी को उपेक्षित पात्रों के चरित्र-विकास में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है।

इसके अतिरिक्त कई आलोचकों की धारणा है कि उर्मिला को सामान्य स्त्रियों की भाँति अश्रु बहाना शोभा नहीं देता, परन्तु आज के युग में 'सामान्य' की ही प्रधानता है अत 'सामान्य' होते हुए भी

ऊर्मिला का व्यक्तित्व एवं चरित्र कई दृष्टियो से सर्वथा उत्कृष्ट है ।

'साकेत' की कैकेयी में भी बडी सहानुभूति है । वह चित्रकूट में राम के सामने खडी होकर अपना दोष स्वीकार करती है । ऐसा करने से वह जन-समाज के हृदय में पुन. श्रद्धेय बन जाती है और अपनी आत्मा को पवित्र कर लेती है । कैकेयी के ये शब्द सदा गूंजते रहेंगे—

युग-युग तक चलती रहे कठोर कहानी,
रघुकुल में थी एक अभागिन रानी ।
निज जन्म जन्म में सुने जीव यह मेरा,
धिक्कार उसे था महास्वार्थ ने घेरा ।

ये शब्द कैकेयी को पावन कर जाते हैं ।

सर्वाङ्गीण आलोचना और महत्त्व

हिन्दी-साहित्य में मैथिलीशरण गुप्त का महत्त्वपूर्ण स्थान है । आपका रहन-सहन सरल, सात्त्विक एवं सौम्य है । यद्यपि आप वैष्णव हैं तथापि आपकी पुनीत भावनाएँ सब धर्मों के प्रति परम उदार हैं । आप अत्यन्त सहिष्णु हैं । जो लोक-सम्मान इन्हें अब प्राप्त हुआ है, वह आधुनिक युग के किसी अन्य कवि को प्राप्त नहीं है । लोकप्रियता ही इनकी काव्य-कला की कसौटी मानी जाती है । समस्त राष्ट्र और समाज को इनकी कविता द्वारा जागृति एव प्रेरणा मिली है । इनकी भाषा अत्यन्त परिमार्जित, व्याकरण के नियमों द्वारा परिशुद्ध खडीबोली है । इन्होने जो कुछ लिखा है वह राष्ट्र एवं समाज की अमूल्य निधि है । 'भारत-भारती' इनकी सर्वलोकप्रिय रचना रही है । इसमें भारत के भूत और वर्तमान का सजीव चित्र अंकित हुआ है । 'जयद्रथवध' महाभारत के आधार पर देशभक्ति के भावों से समन्वित आख्यान-काव्य है । 'अनघ' में बौद्ध जातक-कथा के सहारे गान्धीवाद का चलता-फिरता चित्र खींचा गया है । इसमें अत्याचारों के प्रति भी अहिंसात्मक विद्रोह प्रस्तुत किया गया है ।

'त्रिपथगा' में पाण्डवो के तीन मार्मिक चित्र अकित किये गये हैं। 'गुरुकुल, में सिख-गुरुओं का वर्णन है। 'पचवटी' रामचरित-सम्बन्धी महाकाव्य है। 'नहुष' में शुभ कर्मो द्वारा उत्थान और पाप-कर्मों से पतन एव पुनरुत्थान के लिए दृढ़ विचारों की कथा वर्णित है। 'कुणाल-गीत' में अशोक के पुत्र कुणाल की दु ख सहने की क्षमता एव त्यागवृत्ति का चित्र अकित किया गया है। 'कावा और कर्वला' में हुसेन और उसके परिवार की दु खपूर्ण कहानी लिखकर मुस्लिम-सस्कृति का विकास प्रदर्शित किया गया है। 'झकार' में रहस्यवादी कविताएँ हैं। 'अर्जन और विसर्जन' में ईसाई सस्कृति का प्रतिरूप पाया जाता है। वगला से अनूदित 'मेघनादवध' में मेघनाद का महत्त्व प्रकट किया गया है। तिलोत्तमा', 'चन्द्रहास' और 'अनघ' इनके नाटक हैं। कई छोटी-छोटी रचनाओ के अतिरिक्त आपकी विशेष प्रसिद्ध रचनाएँ साकेत, द्वापर और यशोधरा हैं जिनमें क्रमश. राम, कृष्ण और बुद्ध इन तीन भारत की विभूतियों के उत्कर्षक वर्णन किये गये हैं।

इसके अतिरिक्त 'रग में भग', 'शकुन्तला', 'किसान', 'पत्रावली', 'वैतालिक', 'स्वदेशसगीत', 'हिन्दू', 'विश्ववेदना', 'शान्ति', 'गुरु तेगवहादुर', 'सैरन्ध्री', 'वनवैभव', सिद्धराज', 'विकटभट', 'मगल घट' आदि मौलिक और 'स्वप्नवासवदत्तम्', 'उमरखय्याम', 'पलासी का युद्ध', 'विरहिणी व्रजागना' और 'वीरागना' आदि अनूदित रचनाएँ हैं।

'साकेत' काव्य का नाम अयोध्या के पुराने नाम पर रक्खा हुआ है। द्विवेदी जी ने एक वार काव्य की उपेक्षिता नारियों तथा दलितवर्ग की ओर साहित्यिकों का ध्यान आकृष्ट किया था, परन्तु इनसे भी पहले रवीन्द्रनाथ ठाकुर 'उर्मिला' के प्रति अपनी सहानुभूति का प्रदर्शन कर चुके थे, जिसका फल यह हुआ कि इनसे प्रेरणा प्राप्त कर गुप्तजी ने भी 'साकेत' की स्मरणीय रचना कर दी।

ज्यों ही यह काव्य प्रकाशित हुआ, इसकी अनेक आलोचनाएँ और

प्रत्यालोचनाएँ छपीं। चूंकि यह काव्य विरहिणी 'उर्मिला' की मनोवृत्तियों का विशद विवेचन करने के उद्देश्य से ही लिखा गया था इसलिए इसमें उसके विरह का व्यापक वर्णन पाया जाता है। परन्तु 'विरह-वर्णन' की अतिशयिता ने ही इसकी उत्कृष्टता में न्यूनता ला दी है।

इस काव्य में गुप्तजी राम को चित्रकूट पर छोड कर भरत को साकेत में वापस ले आते हैं और भरत वहीं बैठकर सिसकियां भरने लगते हैं। गुप्तजी प्रायः इस तथ्य को भूल जाते हैं कि उर्मिला सहर्ष अपने पति को वनों में भेजने वाली एक सुधीरा नारी है, प्रोषितपतिका नायिका नहीं। लक्ष्मण भी सदा के लिए उससे पृथक् नहीं हुए, एक निश्चित अवधि के बीतते ही वे उसे मिल जायेंगे, ऐसी दशा में चाहिए तो यह था कि शोक से व्यथित कौशल्या आदि सासों को उर्मिला धैर्य बँधाती। वह स्वय ही शोक-सन्तप्त हो करुण क्रन्दन कर रही है और इस स्थिति से गुप्तजी ने उसे जरा-सा भी ऊपर नहीं उठाया।

'यशोधरा' की रचना में नारी के उत्कृष्ट और आदर्श चरित्र को अत्यन्त विशुद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है, किन्तु उर्मिला और यशोधरा की परिस्थितियों में बडा भारी अन्तर है। उर्मिला केवल पत्नी ही है जिसके दु ख में सान्त्वना देने वाला अन्य कोई नहीं, न तो पति ही है और न अब श्वसुर ही। बेचारी सास अपने ही दु.ख से दुखिनी हो रही है, ऐसी दशा में उर्मिला का अधिक दुखी होना अस्वाभाविक नहीं है। इसके विपरीत यशोधरा पत्नी भी है और माता भी है। उसकी आंखो में जहां आंसू हैं वहां आंचल में दूध भी है। प्रिय राहुल की अठखेलियो में अपने शोक के आवेग को वह रोक भी सकती है। सास-ससुर का उसे बडा भारी सहारा है; किन्तु उसे विशेष दु ख केवल इस बात का ही है कि उसके पतिदेव सिद्धि के लिए गये पर उससे कुछ भी कहकर नहीं गये। चोरी-चोरी चले जाना मानो वह अपना घोर अपमान समझती है, क्योंकि बताकर न जाने का कारण केवल यही हो सकता है कि वह उनके मार्ग

में कहीं बाधा न डाल दे परन्तु वह मानिनी समझती है कि हम वे अबला हैं जो अपने पतियों को भयकर युद्धस्थल में सहर्ष भेजने के लिए उत्सुक रहती हैं, उनका शृङ्गार करती हैं, उल्लास-भरे मादक भावों में उनकी ओर निहारती हैं और विजय की कामना करती हुई तिलक लगा कर सहर्ष विदा कर देती हैं, उन्होने मुझे 'कायर' समझा, इसीलिए मुझे बताना भी उन्होंने उचित न समझा—यही बडा आघात है। और फिर लौटने का भी तो कोई निश्चय नहीं है। इस कसौटी पर परखने से प्रतीत होता है कि उर्मिला की अपेक्षा यशोधरा का चरित्र अधिक उत्कृष्ट एव समुज्ज्वल है।

'साकेत' उत्कृष्ट काव्य है परन्तु प्रबंध-कथा की दृष्टि से शिथिल है। 'यशोधरा' का वात्सल्य-वर्णन स्वाभाविक, सरस एव हृदयग्राही है। 'द्वापर' में श्रीकृष्ण के चरित्र को एकदम नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया है। कहा जाता है कि कृष्ण ने इन्द्र-पूजा का विरोध तथा गोवर्धन-पूजा का आरम्भ कर दिया, क्योकि कृष्ण न हिंसात्मक यज्ञों का स्वय विरोध किया है और उसकी जगह दूध-दही आदि से सम्पन्न होने वाली पूजा का प्रचार किया है। इसमें कृष्ण, यशोदा, बलराम, नारद, कस, वसुदेव आदि पात्रों की मनोदशाओं का विश्लेषण नवीन विचार-पद्धति के आधार पर किया गया है। 'बलराम' रूढ़ि-परम्पराओं के घोर विरोधी हैं, उग्र विचारक, प्रगतिवादी और क्रांतिकारी हैं।

गुप्तजी ने राष्ट्र की सभी समस्याओं के साथ अपना स्वर मिलाने की चेष्टा की है और राष्ट्र की सम्पूर्ण भावनाओ का प्रतिनिधित्व करने का यत्न किया है।

गुप्तजी भी मध्यकालीन रामभक्त गोस्वामीजी की भाँति किसी वाद-विवाद में न पडकर सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। गुप्तजी के काव्यो में सुख-दु ख या भावनाओं की अपेक्षा भारत की आत्मा ही

प्रमुख रूप से प्रतिभासित हो रही है। उनके भरत को राज्यलक्ष्मी के समुद्र पार चले जाने की चिन्ता है। सीता और राम भी बाहर कुटियाओं में आनन्द मना रहे हैं।

तुम अर्धनग्न क्यों रहो, अशेष समय में,
आओ हम कातें, बुनें, गान की लय में।

इत्यादि पद में भी गांधीवाद की अपेक्षा राष्ट्रीय भावनाएँ उद्बुद्ध हो रही हैं।

द्वापर का वलराम—

न्याय-धर्म के लिए लड़ो तुम ऋत-हित समझो बूझो,
अनयराज निर्दय समाज से, निर्भय होकर जूझो।
राजा स्वयं नियोज्य तुम्हारा यदि तुम अटल प्रजा हो,
धात्री नहीं, किन्तु वलदात्री, वस अन्यथा अजा हो।

यह पुकारता हुआ भारत की आतमा को जगा रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि रवीन्द्रनाथ विश्व-कवि हैं तो गुप्तजी राष्ट्रीय कवि।

हिन्दी-जगत् ने इनकी 'हीरकजयन्ती' पर 'मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ' भेंट किया है।

वास्तव में गुप्तजी राष्ट्र के प्राण हैं। उनकी 'भारत-भारती' ने भव्य भारत के अतीत का यशोगान किया है, नवयुवकों की रग-रग में भारतीयता का रक्त-संचार किया है, नारी-जीवन को इस नारकीय पाप-पंकिल वातावरण से मुक्त कर स्वर्गोपम वनाने का उदात्त प्रयत्न किया है एवं साहित्य-कानन को विविध भावनाओं के सुमनोहर मृदुल प्रसूनों से पुष्पित एवं सुरभित किया है। हिन्दी-भाषा को स्वतन्त्र कर 'राष्ट्रभाषा' पद से विभूषित किया है। इन सब भावनाओं की स्मृति बनाये रखने के लिए साहित्यसेवी गुप्तजी को युगयुगान्तरों तक स्मरण करते रहेंगे।

जयशंकर प्रसाद

परिचय

आपका जन्म स० १६४६ में काशी के एक प्रसिद्ध एव समृद्ध उदार परिवार में हुआ था। आपके कुल में परम्परा से कवियों का आदर होता आया था। आपके दादा भी कवियों, गुणियों, कलाकारों तथा गायकों का अत्यन्त सम्मान करते थे। आपके घर पर प्रातःकाल से ही विद्यार्थियों एव दीन-हीन भिक्षुओं की भीड़ लगी रहती थी। यहाँ तक कहा जाता है कि जब कभी ये बाहर शौच आदि के लिए जाते थे तो घर को बिना लोटा तथा वस्त्र ही लौटते थे अर्थात् सब कुछ याचकों को मार्ग में दे आया करते थे।

आप एक व्यवहार-कुशल व्यक्ति थे। व्यायाम आदि दैनिक कार्यों में भी आपकी विशेष रुचि थी। ऐसे वातावरण में जन्म लेकर प्रसादजी भी उदार, सदाचारी एव परम कारुणिक बन गये। आपने केवल ११ वर्ष की आयु में अर्थात् स० १६५७ में अपनी माता के साथ धाराक्षेत्र, ओंकारेश्वर, पुष्कर,- उज्जैन, जयपुर, ब्रज और अयोध्या आदि स्थानों की यात्रा की।

धाराक्षेत्र की यात्रा में, सघन वनों से आवृत्त अमरकण्टक की शैल-श्रेणियों में बहती नर्मदा नदी की पवित्र एव शीतल धाराओं में, जब इनकी नौका आन्दोलित हो रही थी और चारों ओर चन्द्रिका का अपार वैभव बिखर रहा था उस समय इनके मन में क्षणिक कल्पना का अनुभव हुआ था।

इसी प्रकार आपने महोदधि, भुवनेश्वर तथा जगन्नाथपुरी की यात्रा की। वहाँ के पर्वतों एव समुद्रीय उत्ताल तरगों की विशालता

ने आपकी भावुकता को अधिक उत्तेजित कर दिया, मानो इनकी कल्पना के पंख उन्मुक्त हो गये। इनके हृदय-पटल पर अमरकण्टक की यात्रा का प्रभाव सदा के लिए अंकित हो गया।

इनके यहाँ वेनी, शिवदा आदि अनेक कवियों का अखाड़ा आधी-आधी रात तक लगा रहता, कहीं ठण्डाई पीसी जाती तो कहीं रसगुल्लों और दूध-मलाइयों की बहार लगी होती। कहीं दण्ड-बैठक और कुश्तियों का बाजार गर्म रहता तो कहीं पण्डितों की ज्ञानचर्चा होती रहती। ऐसे जमघट में प्रसाद जी भी अपनी तुकबन्दियाँ करते रहते। इन्होंने १५ वर्ष की अवस्था से ही कुछ-कुछ लिखना आरम्भ कर दिया। उन्हीं दिनों माता की आकस्मिक मृत्यु ने इनके हृदय पर गहरा आघात पहुँचाया और इनकी भावुकता अनेक रूपों में फूट निकली।

सं० १९६४ में 'भारतेन्दु' पत्रिका में, इनकी पहली कविता तथा 'ग्राम' नामक कहानी प्रकाशित हुई, तत्पश्चात् इन्होंने नियमित रूप से लिखना आरम्भ कर दिया।

पहले ये व्रजभाषा में लिखते थे, परन्तु कुछ दिनों के बाद खड़ी-बोली में भिन्न-तुकान्त रचना करने लगे। फिर क्या था, विद्वानों एवं सहृदय बन्धुओं ने इनकी ओर उपेक्षा से देखा और घृणा से मुंह फेर लिया। इतना ही नहीं, एक महान् आन्दोलन इनके विरुद्ध खड़ा हो गया कि जिस कविता को रीतिकालीन रसिक कवियों ने व्रजभाषा की रसीली-मदिरा पिला-पिलाकर मदमाती बना दिया था, उसी को कल के छोकरे 'प्रसाद' ने अनधिकार चेष्टा करके 'खड़ीबोली' का विष पिलाकर मानो मृतप्राय बना दिया है। पर इस रहस्य को कोई नहीं जानता था कि मृतप्राय नहीं अपितु ऐसा मादक विष पिलाकर मानो 'नीलकण्ठ' बना दिया है, जिससे हिन्दी-साहित्य अमर पद को प्राप्त होगा।

संस्कृत के एक श्लोक के अर्थ में कहा गया है—'गुणियों के गुण ही पूजा के स्थान होते हैं, उनकी आयु, गोत्र और वर्ण आदि नहीं।'

प्रसादरूपी चिनगारी प्रतिदिन विरोधियों के घास-फूस, झाड़-झखाड़ आदि में पड़कर भी बुझी नहीं, प्रत्युत होली बनकर धधक उठी जिसने साहित्य की सभी धाराओं को प्रभावित किया। आज वे विरोधी स्वयं प्रसादजी की शरण में आकर उनका प्रसाद मांग रहे हैं। किसी ने सच ही कहा है कि 'जादू वह जो सिर चढ़ बोले।'

प्रतिभा तथा व्यक्तित्व

आज से २६ वर्ष पहले उनके 'प्रेम-पथिक' ने साहित्य के सूने पथ पर खड़े होकर घोषित किया था—

इस पथ का उद्देश्य नही है श्रान्त भवन में टिक रहना,
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर, जिसके आगे राह नही।

वास्तव में जिसके आगे राह नहीं, प्रसादजी उसी अनन्त की ओर बढ़ते चले गये और उसी में विलीन हो गये। वे एक क्षण के लिए भी लोगों की बातें सुनने के लिए नहीं रुके और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपनी धुन में ही लगे रहे; संसार देखता रह गया।

किसी विद्वान् हिन्दी-कवि ने कहा था कि प्रसाद 'हिन्दी के रवीन्द्रनाथ हैं।' उसका अभिप्राय यही था कि जिस प्रकार रवीन्द्रनाथ ने बंगला भाषा में कहानी, उपन्यास, नाटक आदि लिखे हैं, प्रसाद ने भी अपनी चर्तुमुखी प्रतिभा के सहारे हिन्दी-साहित्य में कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, आलोचना, गद्यगीत और महाकाव्य आदि सब कुछ लिख कर उसे समृद्ध किया है। इतनी प्रचुर सामग्री देना और भिन्न-भिन्न दिशाओं में लिखना कोई साधारण काम नहीं है। जब रवीन्द्रनाथ को 'गीताञ्जलि' पर महान् 'नोबेल-पुरस्कार' प्राप्त हुआ था उस समय प्रसाद हिन्दी-साहित्य में एक नवांकुर की भाँति अंकुरित हो रहे थे। वयोवृद्ध विश्वकवि रवीन्द्र की ख्याति प्राय विश्व-भर में फैल चुकी थी। यह केवल समय का प्रभाव था अन्यथा प्रसादजी की 'कामायनी' उस

पुरस्कार के सर्वथा योग्य है—ऐसा सर्वजनीन मत है। हाँ! रवीन्द्रनाथ की एक विशेषता हमें अवश्य स्वीकार करनी पड़ती है और वह यह कि उन्होंने कहानी तथा उपन्यासो मे कोमल-कान्त पदावली का अत्यन्त मधुर प्रयोग किया है, सभवतः इतनी ललित एव सार्थक भाषा कोई बगाली न लिख सका हो। प्रसादजी में सर्वत्र कवित्व ही स्फुटित हो रहा है। वे गद्य में भी कवित्व का पुट देकर उसे गद्यकाव्य बना डालते हैं। साधारण व्यक्तियो को सर्वत्र एक धारा का प्रयोग अखरेगा ही, परन्तु यह दुर्बलता अथवा दूषण प्रसाद का भूषण है। इसी कवित्व के उत्कर्ष पर प्रसाद सदा चमके हैं, सदा एकरस, कूटस्थ एव अविचल बने रहे हैं। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता कही जा सकती है और यही उनका स्थायी व्यक्तित्व है।

कहानियाँ

प्रसादजी ने मौलिक कहानियां भी लिखी हैं जो प्राय. 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित होती रहीं। 'छाया की गुलाम', 'मदन मृणालिनी' और 'तानसेन' आदि कहानियां अब भी पाठकों के मन को प्रभावित करती हैं, यही उनकी मौलिकता की परख है। 'विसाती', 'प्रणयचिह्न' और 'स्वर्ग के खडहर' इत्यादि कहानियां बौद्धिक हैं। प्रसादजी की पद्धति पर श्री विनोदशकर व्यास और वाचस्पति पाठक भी कहानियां लिख रहे हैं।

नाटक

प्रसादजी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ मौलिक नाटककार माने जाते हैं। इनके नाटकों की विशेषता अथवा श्रेष्ठता इसी से आंकी जा सकती है कि इनके नाटक भारत के विश्वविद्यालयों की सर्वोच्च एम० ए० श्रेणी तक पढाये जाते हैं। आपने जो नाटकों के विषय चुने हैं उनसे आपकी लोकप्रियता का प्रमाण मिलता है। बाबू द्विजेन्द्रलालराय ने अपने नाटकों की सामग्री मुस्लिम-युग के इतिहास से ली है जो हिन्दुओ के

पतन का काल था, परन्तु प्रसाद जी ने अपने नाटकों की सामग्री बौद्ध-कालीन इतिहास से ली है जो हिन्दुओ के उत्कर्ष का समय माना जाता है तथा जिसे स्वर्ण-युग कहा जाता है।

आपने ब्रह्मचारी दीनबन्धु से सस्कृत और उपनिषद् पढ़े थे। ब्रह्मचारी जी एक त्यागी, उदार, सरल एव सात्त्विक वृत्ति के व्यक्ति थे। आपकी सास्कृतिक एव दार्शनिक भावनाओं का प्रभाव प्रसाद जी के कोमल हृदय पर भी पड चुका था। चूँकि प्रसाद अपने पारिवारिक औदार्य एव सांस्कृतिक वातावरण में पले थे इसलिए बौद्धकालीन इतिहास की सामग्री ही इन्हें अधिक प्रभावित कर सकी। इसी सस्कृति को अपनाना प्रसाद जी की दूरदर्शिता कही जा सकती है और निष्ठा भी।

रचनाएँ

नाटक—सज्जन, विशाख, प्रायश्चित, राजश्री, अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, कामना और ध्रुवस्वामिनी।

काव्य—काननकुसुम, महाराणा का महत्त्व, करुणालय, प्रेम-पथिक, झरना, आँसू, लहर, चित्राधार और कामायनी।

उपन्यास—तितली, ककाल और इरावती (अधूरा उपन्यास) जो बाद में पूर्ण किया गया है।

प्रमुख नाटकों की आलोचना

विशाख—इस नाटक में एक स्त्री के दो प्रेमियों की सामान्य कथा है। ऐसी कथाएं अनेकों पुस्तकों में प्राय पाई जाती हैं। इसमें अनेक षड्यन्त्रों का वर्णन जासूसी उपन्यासों के ढग पर किया गया है। इस नाटक द्वारा प्रसाद जी पाठको को कोई नवीनता प्रदान नहीं कर सके और यह भी जानना कुछ कठिन है कि यह कथा नाट्य-विधि से क्यों लिखी गई?

इस नाटक में राजा और सामान्य नागरिक के बीच द्वन्द्व का उल्लेख है। जैसे राजा किसी नारी को अपने वश में करता हो, उसी प्रकार का एक सामान्य चित्र इसमें उपस्थित किया गया है। इसमें विशेष प्रतिभा का आकर्षण नहीं पाया जाता, इसलिए यही कहना पडता है कि यह प्रसाद की प्रारम्भिक रचना का प्रतीक है।

जनमेजय का नागयज्ञ—प्रसाद जी की यह रचना नाट्य-कला की दृष्टि से सर्वथा असफल एवं प्रभावशून्य है; क्योंकि इसमें महाभारत के बाद के आर्य और नाग-जाति के लोगो का संघर्ष वर्णित है। कथानक में औपन्यासिकता की गन्ध आती है। यदि वस्तुतः उपन्यास-रूप में ही यह कथानक लिखा जाता तो दोनों जातियो की विशेषताओं अथवा वैषम्यो का भी पूर्ण विवरण दिया जा सकता था जो नाटक में सर्वथा अरुचिकर और असम्भव है। इस कथानक में पात्रो की भरमार है, कृष्ण और अर्जुन को भी पूर्ववर्ती घटनाओं का आभास देने के लिए नत्थी कर दिया गया है। श्रीकृष्णजी अर्जुन के सामने आर्य-जीवन की व्याख्या कर रहे हैं। प्रकरण लम्बे हैं, इस पर तुर्रा यह कि इसमें भी दार्शनिकता भरी पडी है। कथानक अस्त-व्यस्त और शिथिल है।

अजातशत्रु—प्रसाद जी का यह सफल नाटक है। इसमें मगध, कोशल और कौशाम्बी, इन तीन स्थानो की कथाओं का मिश्रण है। तीनों राज्यो की परिस्थितियां आगे बढ रही हैं। इसमें तत्कालीन राजनीति का ही चित्रण नहीं प्रत्युत तत्कालीन दार्शनिकता का भी स्पष्ट प्रभाव पाया जाता है। गौतम बुद्ध उस समय के महान् पुरुष थे। नायक अजातशत्रु उनके व्यक्तित्व का अनुकरण नहीं कर पाया। हां! गौतम की शिष्या मल्लिका अवश्य उनके चरित्र से प्रभावित है। चूंकि नाटककार उस युग की समस्त स्थितियो को सम्मुख लाना चाहता है इसलिए जान-बूझ कर नायक को प्रमुखता नहीं दी गई है। नायक पर गौतम और मल्लिका—दोनो का प्रभाव है। पहले अजातशत्रु दोनो का विरोधी था परन्तु बाद

में उनके प्रभाव से प्रभावित हो गया। इसलिए गौतम और मल्लिका प्रमुख पात्रों के रूप में उपस्थित होते हैं, किन्तु यह वस्तु-विन्यास-सम्बन्धी एक त्रुटि है।

प्रसादजी ने इस नाटक में कुतूहलों की सृष्टि की है। दो-तीन दृश्यों में हास्य-रस की भी सुन्दर अवतारणा हुई है। यद्यपि मगध में पिता पुत्र का राजनीति-परिवर्तन-सबधी सघर्ष चल रहा है, तो भी पद्मावती को घसीट लिया गया है, जिसके कारण यह सघर्ष-सूत्र कौशाम्बी पहुँचता है। मागधी की कूट चालो के कारण वहाँ की परिस्थिति भी अस्त-व्यस्त हो रही थी। मागधी उदयन को पद्मावती के विरुद्ध भडका रही है। इसी प्रकार कोशल में विरुद्धक और प्रसेनजित् (पुत्र-पिता) परस्पर षड्यन्त्रों द्वारा परिस्थिति को भयकर बना रहे थे।

प्रसादजी के लिए यह अत्यन्त कठिन हो रहा है कि वे चारों ओर फैली हुई सघर्ष की परिस्थितियों को एक ही मूल केन्द्र में कसे समाप्त कर दें, क्योंकि सघर्षों के साथ-ही-साथ परिस्थितियाँ भी बढती जा रही हैं। यद्यपि प्रसादजी ने तीसरे अक में उन्हें समेटने का व्यर्थ प्रयास किया है तथापि समीचीन यही होता कि वे इस कथानक को चार अकों में ही समाप्त करते।

इस नाटक में प्रत्येक मुख्य पात्र का एक विरोधी पात्र है, जैसे गौतम का देवदत्त, बधुल का विरुद्धक, बिम्बसार तथा वासवी का छलना और अजातशत्रु। हाँ, मल्लिका का चरित्र ऐसा अद्भुत है कि उसका कोई विरोधी पात्र नहीं और यही नाटक की सभी घटनाओं के परिवर्तन का केन्द्र है। मुख्य पात्र के विरोधी होने की पद्धति का अर्थ कथानक में सघर्ष की वृद्धि करना है।

इस नाटक में महत्त्वाकाक्षा और अपरिपक्वता दोनों पाई जाती हैं। साथ ही सघर्ष अधिक है, सतुलन का प्राय वैषम्य विखरा होने से सतुलन

हो ही नहीं सकता। यही नाटक की अपरिपक्वता है। इसका समाधान भी ठीक-ठीक नहीं हो सकता।

नाटक में कई अनावश्यक दृश्य रख दिये गये हैं, विदूषक आदि के दृश्य अनावश्यक हैं सूच्यांशों को दृश्य रूप में रखने की त्रुटि भी रह गई है। अजातशत्रु को नायक तो बनाया गया है परन्तु नाटक में उसका निर्वाह भली प्रकार नहीं किया गया। अजातशत्रु का चरित्र-विकास गौतम और मल्लिका के समान नहीं हो पाया। हास्य रस की योजना भी प्रभावशालिनी नहीं है।

प्रसादजी से पहले नाटककार रसों पर विशेष ध्यान देते थे, चरित्र पर नहीं। परन्तु प्रसादजी स्वयं परिस्थितियों के प्रपंच में फँसकर घटनाओं की ओर विशेष ध्यान देते हैं, रस-विशेष पर नहीं। चूंकि रस-विशेष पर ध्यान नहीं दिया, इसलिए रस-भिन्नता आ गई है अर्थात् हास्य, शान्त और वीररस की आड़ में चरित्रचित्रण की स्वाभाविक प्रवृत्ति बढ़ गई है। सामान्य रूप से 'अजातशत्रु' नाटक अपेक्षाकृत प्रशंसनीय है।

स्कन्दगुप्त—प्रसादजी ने इस नाटक में राजनैतिक और ऐतिहासिक घटनाओं का समन्वय पारिवारिक और व्यक्तिगत जीवन-घटनाओं से करना चाहा है इसलिए कथानक में दोनों घटनाओं का संघात पाया जाता है। संभवत: प्रसादजी को यह अनुभव पहली ही बार हुआ होगा कि राजनैतिक अथवा ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर नाटक में मानवीय मनोभावना की स्वाभाविकता नहीं आ सकेगी इसलिए आपने पात्रों के सामाजिक जीवन के चित्रण के साथ उनकी व्यक्तिगत रुचि को भी प्रकट किया है।

इस नाटक का कथानक अस्त-व्यस्त है। आरम्भ के तीन और अन्तिम अंकों की धारा समन्वित नहीं हो सकी है।

इसके वस्तु-विन्यास की यह भी एक विशेषता है कि इसमें कार्य या व्यापार का तत्व वेग से बढ़ता जाता है। कथानक में चरित्रों का विन्यास

उचित हुआ है और घटनाओं की स्वाभाविक गति के अन्तर्गत हुआ है, केवल सवादों या पात्रों की भरती के लिए नहीं।

इस नाटक में दो विरोधी घटनाएँ है परन्तु ये घटनाएँ अजातशत्रु की तरह नहीं हैं। इसमे भटार्क, शर्वनाग और प्रपचबुद्धि ये तीन खल-चरित्र हैं, फिर भी इनके चरित्रों में मनोवैज्ञानिक अन्तर पाया जाता है।

इसमें काश्मीर से लका तक के पात्र हैं। कुछ पात्रों की व्यर्थ भरमार भी है, जैसे प्रख्यातकीर्ति का कथा से विशेष सम्बध नहीं है। इसी प्रकार मुद्गल और गोविन्ददास को भी यदि पृथक कर दिया जाय तो कथावस्तु मे किसी प्रकार की शिथिलता नहीं आती।

ब्राह्मणों और बौद्धों का झगडा भी कथा के लिए विशेष उपयोगी नहीं है। पहले तीन अकों में नाटकीय कथावस्तु का प्रवाह समीचीन रूप से बह रहा है, परन्तु चौथे-पाँचवें अकों में उसकी शिथिलता देखी जाती है, यहाँ तक कि कथा का उद्देश्य भी विलीन हो रहा है मानो नाटककार कथा का अवसान कर रहा हो। इसलिए इतिहास की सत्यता नाटकीय परिपाक का स्थान नहीं ले सकी है। कलापक्ष जितना प्रभावशाली होना चाहिए था उतना नहीं हो पाया, क्योंकि ऐतिहासिक सत्यता को प्रमुखता दी गई है।

'स्कन्दगुप्त' में चरित्रचित्रण का आधार-विरोध है और वह विरोध भी स्कन्दगुप्त तथा पुरगुप्त के चरित्रों की विषमता के कारण है। यह विरोध सजीव है। अनन्तदेवी का चरित्र भी एक विशेष चरित्र है। विजया और देवसेना का चरित्र भी विरोधात्मक है, फिर भी यह कह सकना अत्यन्त कठिन है कि इन दोनों में एक की अपेक्षा दूसरा अच्छा है, क्योंकि दोनों के चरित्रों का चित्रण स्वाभाविक प्रतीत होता है।

पाश्चात्य नाटकों में कथानक विरोध के आधार पर होता है। विरोध मध्य मे चरम सीमा तक पहुँच जाता है। अन्त में वह समाप्त हो जाता है। दु खान्त नाटक भी विरोध से ही आरम्भ होता है और अन्त

भी दु.ख में ही होता है। चरम सीमा तक पहुँचा हुआ विरोध समाप्ति का सूचक नहीं होता, दु.खान्त घटना की ओर मोड लेने का परिचायक होता है। यह केवल दु खान्त नाटक में ही सम्भव हो सकता है।

भारतीय नाटक चूंकि सुखान्त होते हैं इसलिए इनमें फल-प्राप्ति के लिए उद्योग होता है। उद्योग का विकास प्राप्त्याशा की ओर से फल की ओर होता है। सुखान्त नाटक की यही पद्धति होती है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक भी परिणाम में सुखान्त है परन्तु इसका वस्तुविन्यास दु खान्त नाटक की पद्धति पर है, निस्संदेह यह 'वस्तुविन्यास-सम्बन्धी त्रुटि ही कही जा सकती है।

चन्द्रगुप्त—चरित्रचित्रण एव नाटक-सम्बन्धी विशेषताओं के कारण 'स्कन्दगुप्त' नाटक अधिक उत्कृष्ट माना जा सकता है। उसमें व्यक्तियो का सघर्ष होने से उनका उत्थान-पतन का स्तर मापा जाता है। इसके विपरीत 'चन्द्रगुप्त' नाटक में चाणक्य के महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व के कारण विरोध-पक्ष निर्बल पड गया है। जब उत्थान-पतन होते रहते हैं तो नाटक की नाटकीयता भी चमक उठती है। चन्द्रगुप्त में नाटकीय सघर्ष बहुत कम है, महाकाव्य की-सी उदात्तता प्रतीत होती है। अलक्षेन्द्र की युद्धनीति और वीरता भी पूर्णरूपेण लक्षित नहीं हुई। चन्द्रगुप्त नाटक में कथानक की उलझनें नहीं हैं, ऐसी घटनाएँ भी नहीं हैं जो सभ्रान्त हों, सभी स्पष्ट हैं। स्थितियों में विषमता भी नहीं है। यह एक महाकाव्य के समान है। चन्द्रगुप्त में चरित्रो की विविधता नहीं है। स्कन्दगुप्त में दार्शनिकता-मिश्रित वीरत्व है जो नाटकीय है, परन्तु चन्द्रगुप्त में तो वीरत्व ही वीरत्व है। चन्द्रगुप्त की वस्तु स्कन्दगुप्त की अपेक्षा शिथिल है, उसमें 'काल-संकलन का अभाव' भी खटकता है परन्तु चन्द्रगुप्त का-सा प्रत्येक अक में नया वस्तुविन्यास 'स्कन्दगुप्त' में नहीं है।

चन्द्रगुप्त नाटक में नायिका का प्रश्न भी सुलझा हुआ नहीं है;

क्योंकि नायिका को नाटक में जो प्रमुखता मिलनी चाहिए, वह कार्नेलिया को नहीं मिली है, वह एक बार आरम्भ में आकर केवल अन्त में दर्शन देकर रह जाती है। नाटक में कल्याणी का नायिका बनने का उपक्रम विशेष पाया जाता है परन्तु वह भी अचानक आत्महत्या कर लेती है। यद्यपि उसकी आत्महत्या का कोई विशेष कारण प्रतीत नहीं होता फिर भी यही कहा जा सकता है कि नाटककार ने उसे असमय में ही इस लिए समाप्त कर दिया होगा कि कार्नेलिया ही नायिका बनी रह सके।

चन्द्रगुप्त में राक्षस का चरित्र भी मुद्राराक्षस के राक्षस-चरित्र के समान नहीं है और इस नाटक में 'प्रतिनायक' का प्रश्न, कि अलक्षेन्द्र, नन्द और राक्षस में से किसे प्रतिनायक बनाया जाय अथवा स्वीकार किया जाय, भी स्पष्ट नहीं है। अलक्षेन्द्र तीसरे ही अंक में लौट जाता है। नन्द भी केवल चौथे अंक में पाया जाता है। राक्षस का चरित्र प्रमुख विरोधी नहीं है अत इन तीनों में ही 'प्रतिनायक' की परिभाषा नहीं घटती, ऐसी दशा में प्रतिनायक किसे स्वीकार किया जाय। प्रतीत होता है कि नाटककार ने अलक्षेन्द्र के स्थानापन्न 'सेल्यूकस' द्वारा उसकी स्मृति को पुनर्जीवित रखने की चेष्टा की है, अत. यही प्रतिनायक कहा जा सकता है।

चन्द्रगुप्त नाटक चरित्रप्रधान नहीं है, काव्योपजीवी नाटक है। भाव-प्रवणता का पक्ष मुख्य है। इसमें वीररस का पूर्ण परिपाक है। आदि से अन्त तक इसका प्रवाह पाया जाता है। स्कन्दगुप्त में पराजय और करुणा पाई जाती है परन्तु विजया, देवसेना और जयमाला के आने से शृङ्गार जीवित हो गया है। चन्द्रगुप्त में अलका का सम्बन्ध नायक से नहीं, प्रतिनायक से है, इसका चरित्र भी वीर नारी के रूप में चित्रित हुआ है। सुवासिनी के द्वारा भी वीररस की सृष्टि हुई है परन्तु यह सब नाटक की मुख्य भूमि पर नहीं आया है। स्कन्दगुप्त में शृङ्गार, वीर, करुण रसो का प्रवाह है। नायिका की स्थिति का अव्यवस्थित होना किसी

अच्छे नाटक के लिए एक दोष माना जाता है। प्रासंगिक कथाएँ 'प्रकरी' और 'पताका' के अन्तर्गत आ सकती हैं, फिर भी मुख्य कथा का आदि से अन्त तक होना आवश्यक है। यदि मुख्यपात्र 'प्रकरी' और 'पताका' अंशों में लाकर वहीं समाप्त कर दिये जायँ तो यह नाट्यवस्तु की त्रुटि ही कही जायगी।

चूंकि प्रसादजी का उनके नाटकों के वस्तुविन्यास पर पूर्ण अनुशासन नहीं हो सका है इसलिए उनका कथानक पूर्णतया कलात्मक एवं निर्दोष नहीं बन सका है।

ध्रुवस्वामिनी—इसमें संदेह नहीं कि प्रसादजी की नाट्यकला का पूर्ण विकास स्कन्दगुप्त और चन्द्रगुप्त आदि नाटको में चरम सीमा पर पहुँच चुका है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में तो सामान्य विकास भी नहीं है। संवादो में अस्वाभाविकता है, चमत्कार, वाग्वैदग्ध्य और प्रश्नोत्तरो की न्यूनता है। यह यथार्थवादी लोगो की दृष्टि में दोष माना जाता है। इस नाटक में यथार्थवादी सवाद, रगमंच और प्रणाली अपनाई गई है। इसमें पश्चात्य रीति से चमत्कार प्रकट करने वाली रचना का आयोजन किया हुआ प्रतीत होता है।

आजकल कई नाटककार वर्नार्ड शॉ की शैली पर किसी-न-किसी समस्या को लेकर चलते हैं। परन्तु 'ध्रुवस्वामिनी' समस्या-नाटक की शैली से भी भिन्न है। हां ! इसमें एक समस्या का वर्णन तो किया है परन्तु फिर भी यह समस्या-नाटक नहीं है। वैसे नाटककार के लिए कलाकार, विचारक और दार्शनिक होना आवश्यक है। प्रसादजी कलाकार होते हुए भी विचारक कलाकार नहीं हैं, क्योंकि इसके लिए 'बौद्धिक होना अनिवार्य है। प्रतिनिधि लेखक स्वतन्त्र शैली पर चलता है। वही शैली उसकी प्रौढ होती जाती है जो उसकी 'प्रतिनिधि रचना' कहलाती है। यह सत्य है कि यह उनकी अन्तिम रचना है फिर भी श्रेष्ठतम नहीं है।

प्रमुख काव्य-रचनाओं की आलोचना

काननकुसुम—यह एक पौराणिक-कथा-काव्य है। इसमें कवि प्रकृति-प्रेम पर अपनी आत्मा समर्पित करता है। करुणा एव वेदना का एक स्रोत-सा उमड रहा है, प्रकृति एव विनय-सबधी कविताएँ अधिक हैं। यह काव्य मानो भिन्न-भिन्न पुष्पो से विभूषित हो रहा है। भाषा सरल है, छन्दों की मन्दगति है। इसमें छन्दों और भावो में गति का अभाव है। जैसे—

जब प्रलय का हो समय, ज्वालामुखी मुख खोल दे।
सागर उमडता आ रहा हो, शक्ति साहस बोल दे॥

प्राय ऐसी ही अधिक रचनाएँ हैं, जिन्हे पद्य कहते हैं या तुकबन्दी। भाव-भाषा की भी शिथिलता है, कहीं प्रसाद-गुण से पूर्ण पदावली पाई जाती है, जैसे—

नवनील पयोधर नभ में काले छाये।
भर भरकर शीतल जल मतवाले धाये॥
लहराती ललिता लता सुवाल लजीली।
लहि सग तरुन के सुन्दर बना सजीली॥
बुलबुल कोयल हैं मिलकर शोर मचाते।
बरसाती नाले उछल-उछल वल खाते॥

इस रचना में कहीं-कहीं प्राचीनता का भी प्रभाय पाया जाता है और कहीं-कहीं कविता अलकारो के भार से दबी हुई-सी प्रतीत होती है—

हैं पलक परदे खिचे, वरुणी मधुर आधार से।
अश्रुमुक्ता की लगी, झालर खुले दृग-द्वार से॥
चित्त-मदिर मे अमल आलोक कैसा हो रहा।
पुतलियाँ प्रहरी बनी, जो सौम्य हैं आकार से॥

ऐसा प्रतीत होता है कि भावों की अभिव्यक्ति के लिए कवि की इच्छा अलकारों का आश्रय ले रही है और प्राचीन पद्धति के कारण भी कवि

अलंकारो के मोह में भूला हुआ-सा है, भावराशि की विकलता उसमे दिखाई नहीं देती।

करुणालय—इसकी रचना कवि ने 'काननकुसुम' के वाद की है। सन् १९१३ में 'इन्दु' पत्रिका मे इसका प्रकाशन हुआ, वाद में यह पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई। यह एक 'गीतिनाट्य' है, कोई-कोई इसे 'भावनाट्य' भी कहते हैं। वास्तव में यह भी एक 'अतुकान्त काव्य' है। इसमें भाषा और भाव सुन्दर एवं व्यवस्थित हैं। समाज-तत्त्व की एक धुंधली-सी छाया भी पाई जाती है। इसमें धर्म के नाम पर होने वाले पाशविक अत्याचारो की कटु आलोचना की गई है। काव्य-कला तथा भाषा का विकास सुन्दर है। कवि भाव, भाषा, छन्द और अलंकारों के बल पर उछल रहा है, उसकी कोई स्थिर पद्धति नहीं है। यद्यपि कवि की प्रवृत्ति नवीनता की ओर जाना चाहती है, फिर भी कभी-कभी प्राचीनता की ओर झुकाव दिखाई देता है। कभी अर्वाचीनता की ओर और कभी प्राचीनता की ओर कवि झांकने लगता है। प्रवृत्ति अस्थिर है, जैसे—

नौके ! धीरे और जरा धीरे चलो।
आह ! तुम्हे क्या जल्दी है उस ओर की ॥
कही नही उत्पात प्रभंजन का यहाँ।
मलयानल अपने हाथो पर है धरे ॥
तुम्हे लिये जाता है अच्छी चाल से ;
प्रकृति सहचरी-सी कैसी है साथ में ॥
प्रेमसुधामय चन्द्र तुम्हारा दीप है।
नौके ! है अनुकूल पवन यह चल रहा,
और ठहरती हो, इठलाती हो चलो ॥

महाराणा का महत्त्व—'करुणालय' काव्य की तरह यह भी अतुकान्त है। काव्यकला की दृष्टि से दोनों काव्य एक-से ही हैं। थोड़ा-सा यही अन्तर प्रतीत होता है कि इसमें सात्त्विकता का स्वर और

ऐतिहासिक प्रेरणा पाई जाती है। उपमाएँ भी परिमार्जित हैं। जैसे—

पश्चिम निधि में दिनकर होते अस्त थे,
विपुल शैलमाला अर्बुदगिरि को घनी।
शान्त हो रही थी, जीवन के शेष में,
कर्मयोगरत मानव को जैसी सदा।
मिलती है शुभ-शान्ति भली कैसी छटा॥

आगे कवि ने रमणीरूप के अनुपम चित्र खींचे हैं जिसका स्पष्ट आभास दिखाई दे रहा है। महाराणा प्रताप के सैनिक जब अकबर के सेनापति अब्दुर्रहीम खानखाना की पत्नी को बन्दी करके ले आते हैं, उस समय महाराणा शत्रु की पत्नी को बड़े आदर के साथ वापिस भेज देते हैं क्योंकि वे ऐसे नीच कर्मों को हिन्दू-सभ्यता का अपमान समझते हैं। इस पर खानखाना अपनी पत्नी से कह रहे हैं—

सुन्दर मुख की होती है सर्वत्र ही
विजय उसे· · · ·
प्रिये! तुम्हारे इस अनुपम सौंदर्य से
वशीभूत होकर वह कानन-केसरी
दाँत लगा न सका, देखा गाधार का
सुन्दर दाख, कहा नवाब ने प्रेम से॥

उस समय उसकी पत्नी ने कुछ प्रणय-कोप से कहा, देखिए—

कँपी सुराही कर की, छलकी वारुणी,
देख ललाई स्वच्छ मधूक कपोल में।
खिसक गई डर से जरतारी ओढ़नी।
चकाचौंध-सी लगी विमल आलोक को
पुच्छमर्दिता वेणी-सी थर्रा उठी,
आभूषण भी झन-झन कर बस रह गये
सुमनकुंज में पंचम स्वर से तीव्र हो।
बोल उठी वीणा 'चुप भी रहिये जरा'॥

प्रेमपथिक—कवि ने इस काव्य की रचना सन् १९१५ में 'महाराणा का महत्त्व' के एक वर्ष के पश्चात् की। 'प्रेम-पथिक' में कवि के उच्च-कोटि के भावो का विकास पाया जाता है। भावो की उपेक्षा भी यदि की जाय तो भी महाराणा का महत्त्व से इसकी रचना कहीं उत्कृष्ट है। इसके उपमा आदि अलंकारो में भी सात्त्विकता की पुट पाई जाती है, जैसे—

दयास्रोत-सी जिसे घेरकर, बहती थी छोटी सरिता।
सच्चा मित्र कहाँ मिलता है, दुखी हृदय की छाया-सा।
ताराओ की माला, कबरी में लटकाये, चन्द्रमुखी।
रजनी अपने शान्तिराज्य-आसन पर आकर बैठ गई॥

इस काव्य में एक नूतन सदेश है, वियोग है, व्यथा है, कुछ मोह से मुक्त होने की प्रवृत्ति भी है, जहां स्वार्थ और कामनाओं को छोड़-कर आत्मोत्सर्ग की भावना काम कर रही है। इस काव्य की प्रवृत्ति उसी महत्त्व को प्रेरणा दे रही है जहाँ 'प्रेम' ही सर्वोत्तम विभूति माना जाता है, प्रेम की कसोटी ही उत्सर्ग कही जाती है। काव्य में उत्सर्ग, प्रेम तथा आशा का यह सुन्दर मिश्रण सम्भवत. पहली बार ही पाया गया है। जैसे कहा गया है—

इस पथ का उद्देश्य नही है, श्रान्त भवन में टिक रहना।
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर, जिसके आगे राह नही॥

झरना—'प्रेम-पथिक' के बाद 'झरना' काव्य की रचना हुई। इसमें प्रसाद की काव्यकला का सुन्दर एव प्राञ्जल रूप पाया जाता है। भावों में भी स्थिरता अनुभव की जाती है। ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि की आत्मा 'झरझर' ध्वनि से प्रवाहित हो उठी हो। शब्द-योजना स्फुट है, व्यजक है। कल्पना-माधुर्य का भी सुन्दर विकास हो गया है। इस काव्य में अव्यवस्थित, विषाद, रूप, किरण और बिखरा हुआ प्रेम आदि सुन्दर कविताएँ हैं। इनमें यौवन और वासनाओं का उद्दाम रूप है, जिन्हें दबाकर

कवि ऊपर उठना चाहता है परन्तु अशक्त हो जाता है। तब कहता है—

करता हूँ जब कभी प्रार्थना, कर संकलित विचार।
तभी वासना के नूपुर की हो जाती झंकार॥

इसमें मानवीय भावनाओं का चित्रण हुआ है, इसीसे 'छायावाद' का आरम्भ भी हुआ है। इसमें भाषा का आडम्बर नहीं अपितु भावों की पूर्णता है। इसमें अभिव्यक्ति की सुन्दर छटा है। सूक्ष्म भावनाओं के विविध रूप—आशा, निराशा, हर्ष, शोक, आसक्ति और विरक्ति के स्वरूप मानो कवि के भविष्य को उज्ज्वल करने वाले प्रतीक हैं। कवि की कला प्रशस्त पथ पर अग्रसर हो रही है। 'झरना' में यौवन का स्वर है। 'किरण' अलंकारमयी रचना है। नववधू के समान उसमें सभी रंग पाये जाते हैं, उपमाएँ परिष्कृत हैं। देखिए—

किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज, रंगी हो तुम किसके अनुराग ?
धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश, मधुर मुरली-सी फिर भी मौन॥
किसी अज्ञात विश्व की विकल, वेदना दूती-सी तुम कौन ?
स्वर्ण के सूत्र सदृश तुम कौन, मिलाती हो उसमें भू-लोक।
जोड़ती हो कैसा सम्बन्ध, बना दोगी क्या विरज विशोक॥
सुदिनमणि वलयविभूषित उषा-सुन्दरी के कर का संकेत।
कर रही हो तुम किसको मधुर, किसे दिखलाती प्रेमनिकेत॥
चपल ! ठहरो कुछ लो विश्राम, चल चुकी हो पथशून्य अनन्त।
सुमन-मन्दिर के खोलो द्वार, जगे फिर सोया वहाँ वसन्त॥

धरा पर झुकी मौन प्रार्थना, स्वर्ण के सूत्र तथा दिनमणिवलय विभूषित उषा-सुन्दरी के कर का संकेत करने वाली किरण कितनी मधुर है !

आँसू—यह एक सुन्दर विरह-काव्य है। कवि अनुभूतिमय बना हुआ है। नवीन चिन्तन है, कवि के प्रेमी मन को जो उत्पीड़न मिला,

वही झरने के समान वहकर, आंसुओ के रूप में अभिव्यक्त हो गया है। अत बिना प्रयास के ही यह महाकाव्य बन गया, यहां तक कि इसके छन्दो का नाम ही 'आंसू' रख दिया गया है।

यह एक शुद्ध मानसिक प्रेम की भावनाओ मे समन्वित काव्य है। इसमें आध्यात्मिकता की छाप नहीं, फिर भी कई आलोचक इनमें 'रहस्य-वाद' का सकेत अनुभव कर रहे हैं—यह समीचीन नहीं है। कवि अपने प्रेम को निम्न शब्दो में व्यक्त करता है—

शशिमुख पर घूंघट डाले, अंचल में दीप छिपाये,
जीवन की गोधूली में, कौतूहल-से तुम आये।

उसके मानस-नभ में स्मृतियां नक्षत्रों की भांति जटित हैं। वह अपने आंसुओ से विश्व को सरस बनाना चाहता है। इसमें भौतिक प्रेम, आशा-निराशा का सुन्दर चित्रण पाया जाता है। 'आंसू' में सांसारिकता है, प्रेम का अजस्र प्रवाह है, निस्सदेह प्रसादजी मानवीय भावनाओ के सुन्दर चित्रकार हैं। उनके भाव-चित्रण में अश्लीलता का नाम तक नहीं है। 'आंसू' काव्य के सम्बन्ध में एक आलोचक का मत है—"वे मानवीय विरह-मिलन के इगितो पर, विराट् प्रकृति को भी साज सजाकर नाच नचा सकते हैं।" मनुष्य-प्रकृति पर विजय पा सकता है, इसमे मानव-जीवन के प्रकर्ष का सगीत है। 'आंसू' काव्य में भाषा का माधुर्य, भावो की मृदुलता तथा सुन्दर उपमाएँ इठला रही हैं।

भाषा की मृदुलता, जैसे—

छिल-छिल कर छाले फोडे, मल-मल कर मृदुल-चरण मे,
घुल-घुल कर वह रह जाते, आंसू करुणा के कण मे।

उपमा की कल्पना, जैसे—

मादकता से आये थे, संज्ञा ने चले गये वे,
हम व्याकुल खड़े बिलखते, थे उतरे हुए नशे मे।

कवि ऊपर उठना चाहता है परन्तु अशक्त हो जाता है। तब कहता है—

करता हूँ जब कभी प्रार्थना, कर सकलित विचार।
तभी वासना के नूपुर की हो जाती झंकार॥

इसमें मानवीय भावनाओं का चित्रण हुआ है, इसीसे 'छायावाद' का आरम्भ भी हुआ है। इसमें भाषा का आडम्बर नहीं अपितु भावों की पूर्णता है। इसमें अभिव्यक्ति की सुन्दर छटा है। सूक्ष्म भावनाओं के विविध रूप—आशा, निराशा, हर्ष, शोक, आसक्ति और विरक्ति के स्वरूप मानो कवि के भविष्य को उज्ज्वल करने वाले प्रतीक हैं। कवि की कला प्रशस्त पथ पर अग्रसर हो रही है। 'झरना' में यौवन का स्वर है। 'किरण' अलकारमयी रचना है। नववधू के समान उसमें सभी रग पाये जाते हैं, उपमाएँ परिष्कृत हैं। देखिए—

किरण ! तुम क्यो बिखरी हो आज, रगी हो तुम किसके अनुराग ?
धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश, मधुर मुरली-सी फिर भी मौन॥
किसी अज्ञात विश्व की विकल, वेदना दूती-सी तुम कौन ?
स्वर्ण के सूत्र सदृश तुम कौन, मिलाती हो उसमें भू-लोक।
जोडती हो कैसा सम्बन्ध, बना दोगी क्या विरज विशोक॥
सुदिनमणि वलयविभूषित उषा-सुन्दरी के कर का सकेत।
कर रही हो तुम किसको मधुर, किसे दिखलाती प्रेमनिकेत॥
चपल ! ठहरो कुछ लो विश्राम, चल चुकी हो पथशून्य अनन्त।
सुमन-मन्दिर के खोलो द्वार, जगे फिर सोया वहाँ वसन्त॥

धरा पर झुकी मौन प्रार्थना, स्वर्ण के सूत्र तथा दिनमणिवलय विभूषित उषा-सुन्दरी के कर का सकेत करने वाली किरण कितनी मधुर है !

आँसू—यह एक सुन्दर विरह-काव्य है। कवि अनुभूतिमय बना हुआ है। नवीन चिन्तन है, कवि के प्रेमी मन को जो उत्पीडन मिला,

'ह　　ाव्य में इस प्रकार कवि का जीवन लहरा भी रहा है और उन्मादपूर्ण भी हो रहा है। इसे एक प्रकार से कवि की स्फुट पद्य-रचनाओं का संग्रह कहना चाहिए। परन्तु है यह विशेष भाव एवं दिव्य उन्माद-पूर्ण कला का चित्रण।

चित्राधार

प्रसादजी की २० वर्ष की आयु तक की रचनाओं का यह संग्रह है। इस संग्रह का केवल इतना ही महत्त्व है कि यह हमारे सामने उनके प्रारंभिक जीवन को प्रस्तुत करता है। उनकी किशोरावस्था की कविताओं में भी कितनी तीव्रानुभूति है, यह देखकर विस्मित होना पड़ता है। यह ब्रज तथा खड़ीबोली दोनों भाषाओं मे लिखा गया है। इसमें ५ खंड हैं। पहले खंड में इतिवृत्तात्मक कथाएँ हैं, दूसरे में एकांकी ढंग की रचनाएँ और तीसरे में ब्रह्मर्षि, पंचायत और दो पौराणिक कथाएँ हैं। चौथे में 'पराग' आलम्बन-पद्धति पर लिखा हुआ काव्य-कला का उत्कृष्ट प्रतीक है। पांचवें में 'मकरन्दबिन्दु' कविता-पदों का संग्रह है।

'चित्राधार' के पराग-खण्ड की रचनाएँ (कविताएँ) प्रायः प्रकृति-प्रेम से पूर्ण हैं। फिर भी वर्ड्सवर्थ की तरह प्रसाद जी का प्रकृति से तादात्म्य नहीं है। न ही उन्हें वर्ड्सवर्थ के समान पुष्पों से अनुराग है और न ही पर्वत, घाटी एवं झील आदि से आत्मीयता है और प्रत्येक पक्षी से वैसा कारुणिक स्नेह भी नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि प्रसादजी का प्रेम रमणीयता से है, प्रकृति से नहीं।

किशोरावस्था की रचनाएँ होने के कारण इनमें अव्यवस्थित और अपूर्ण मान्यताएँ उपलब्ध होती हैं। ब्रज-भाषा की पद्धति से ये प्रभावित हैं, परन्तु जहाँ इनमें पुरानी परम्परा का अन्धकार है वहाँ सूर्योदय से पूर्व उषा के प्रकाश का भी आभास है। आप 'नीरव प्रेम' कविता में लिखते हैं—

विरह का तत्वज्ञान, जैसे—

छलना थी, तब भी मेरा, उसमें विश्वास घना था,
उस माया की छाया में, कुछ सच्चा स्वयं बना था।

लहर—'लहर' में आशा है। प्रेम का बदला न मिलने से वह 'आँसू' में अधीर था, 'लहर' में भावुक और कोमल हो गया है। इसमें अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी दोनों प्रकार की रचनाएँ हैं। इसमें कवि आत्म-चिंतनशील और युग-विद्रोही भी प्रतीत होता है। इसके गीतों में प्राचीनता की ध्वनि, आत्मसंगीत का संकेत और प्रेमालम्बन की विशदता आदि सब कुछ है। कवि सुख-शान्ति के सोपान पर अग्रसर है, उसमें वेदना नहीं है। वह शान्त है और अज्ञात की ओर झुक रहा है—

मेरी आँखों की पुतली में, तू बनकर प्राण समा जा रे!
जिससे कण-कण में स्पंदन हो, मन में मलयानिल चन्दन हो!
करुणा का नव अभिनन्दन हो, वह जीवन-गीत सुना जा रे!

'लहर' में जैसा संगीत तथा कल्पना का मिश्रण है वैसा अन्यत्र नहीं पाया जाता। 'बीती विभावरी जाग री, पनघट पै ऊषा नागरी' इत्यादि में कैसा मनोरम प्रकृति का चित्र है। साथ ही कलेजे में कसक पैदा करने वाले यौवन का रूप तो देखिए—

आह रे, वह अधीर यौवन।
अधर में वह अधरों की प्यास।
नयन में दर्शन का विश्वास।
धमनियों में आलिंगनमयी,
वेदना लिये व्यथाएँ नई।
टूटते जिससे सब बन्धन।
सरस सीकर के जीवन-कन।
बिखर भर देते अखिल भुवन,
वही पागल अधीर यौवन॥

आरंभ करता है। यज्ञ द्वारा देव-सस्कृति पुन समृद्ध होती है। मनु यज्ञ का शेप अन्न दूर रख देते हैं, इस विचार से कि सम्भव है कोई प्राणी उनकी तरह जल-प्लावन से वच रहा हो। इस अन्न को कामगोत्रोत्पन्ना श्रद्धा ने देखा और समझ लिया कि कोई व्यक्ति जीवित है। दोनों का परिचय हो जाता है। श्रद्धा के बाद 'काम' का उदय होता है। मनु में वासना जाग उठती है, तब 'काम' भविष्यवाणी द्वारा श्रद्धा को अपनी पुत्री सिद्ध करता है। मनु के मन में वासना का वेग उमड़ता है। अब उन्हे श्रद्धा के वत्स से भी ईर्ष्या होने लगती है। वे श्रद्धा को अपनाने के लिए व्याकुल हो उठते हैं तभी 'लज्जा' का आवरण आ जाता है। कवि-कला की चरम सीमा सफल होती है। वह नारी को खींच लाता है। मनु यज्ञ में पशु-हिंसा करते हैं परन्तु श्रद्धा को यह नहीं भाता। अपनी दुर्वलता के कारण श्रद्धा आत्मसमर्पण कर देती है। वह पुष्पवती हो जाती है। मनु शिकार में व्यस्त रहते हैं और श्रद्धा भावी सन्तान के ध्यान में मग्न रहती है। फिर किसी कारण मनमुटाव हो जाने से मनु श्रद्धा को त्याग देते हैं और सारस्वत देश में इडा (वुद्धि) के पास आ जाते हैं। वहाँ मनु राज्यतन्त्र चलाते हैं फिर इड़ा पर अधिकार चाहते हैं। एक भयकर विरोध उठ खड़ा होता है। स्वप्न में श्रद्धा मनु तथा इड़ा के संघर्ष को देखती है। श्रद्धा आती है और मनु को मूर्च्छित पाती है। ज्यो ही मनु को होश आती है वे विरक्त हो जाते हैं। निर्वेद के कारण वे भाग निकलते हैं। श्रद्धा मानव (मनुपुत्र) को इडा के पास छोड़ मनु की खोज में निकलती है और उसे एक झाडी में छिपा पाती है। मनु को यहीं पर विराट् रूप शिव के दर्शन होते हैं। आगे वढने पर मनु को इच्छा, क्रिया और ज्ञान का त्रिलोक दिखाई देता है। कर्म-लोक श्यामल है, इच्छा का लोकराग अरुण है। श्रद्धा मनु को इस त्रिलोक का रहस्य समझाती है। तव मनु आनन्द लोक में पहुँचते हैं। यहाँ इडा और मानव से मेल हो जाता है। यहाँ जड चेतन का कोई सघर्ष नहीं, सर्वत्र आनन्द है।

प्रथम भाषण ज्यों अधरान में,
रहता है तउ गूंजत प्रान में।
कछु कहीं नहि पै कहि जात हो,
कछु लहीं नहि पै लहि जात हो॥

इसमें कवि मूक कलेजे की प्रतिध्वनि या विपञ्ची के क्रन्दन में एक फूल-जैसे कोमल प्राण भी सुनने की चेष्टा करता है, न तो इसमें कोई दार्शनिकता है और न हो छायावाद। प्रथम भाषण जैसे अधर तक आकर कहते-कहते अल्प हो जाता है। शब्दो में कम्पन, सक्रियता हृदय के मधुभार से दबकर ऊपर से निष्क्रिय एव नीरव परन्तु भीतर से अत्यन्त प्रबल तथा शब्दमय हो उठते है। शब्द अधरों तक आकर रुक जाते हैं किन्तु प्राणों में गुँथी हुई भावराशि प्राणों में ही गूँजती रहती है।

कामायनी

'कामायनी' की रचना हिन्दी-साहित्य मे एक नवीन घटना कही जाती है। इससे पूर्व सभी महाकाव्यों में अतीत को पुकार थी, नवीन कल्पनाओं में भी पुराने तत्त्वों और सदेशों की भरमार थी, परन्तु कवि ने 'कामायनी' लिख कर विश्व-साहित्य को एक अनुपम रत्न भेंट किया है। कामायनी का प्रेम अनेक वेदनाओं के मार्ग में भटकता हुआ 'सत्य शिव सुन्दर' के राजमार्ग पर चलने वाला तथा मानव को 'सत्य शिव' के दर्शन कराने वाला महाकाव्य है। इसकी कथा चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इडा, स्वप्न, सघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्य और आनन्द इन १५ सर्गो में विभक्त है। इसकी सक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

हिमालय के उत्तुग शिखर पर मनु एक शिला पर बैठे हुए हैं। उनकी आँखें सजल हैं। उन्हें देवसृष्टि के नाश की चिन्ता है। कवि ने इसमें इसका ही सुन्दर वर्णन किया है। चिन्ता के पश्चात् मनु के मन में आशा जागती है, उत्साह ममता का अनुभव करता है। एक गुफा बनाकर यज्ञ

करना ही कामायनी का मुख्य ध्येय है। सुख-दुखमयी सृष्टि में समभाव से व्यवहार करना ही शैवतत्त्व का मूल ध्येय है। अनियन्त्रित बुद्धि संघर्ष पैदा करती है और श्रद्धा मुक्ति का मार्ग बताती है। इसका नायक मनु कर्मवीर है और वह कर्म द्वारा ही उन्नत हो रहा है। नारी ही मुक्ति की प्रदर्शिका है, यह बात प्रसादजी श्रद्धा के चरित्र द्वारा प्रकट करते हैं। इस प्रकार इसमें वस्तु और कला दोनो का सुन्दर समावेश पाया जाता है।

'कामायनी' में मानव-जाति का सुन्दर विकास तथा आध्यात्मिक भावना का सुन्दर समन्वय है। मनोवृत्तियों की सुन्दर व्याख्या है और है मनोविज्ञान का सुन्दर चित्रण। इसमें चार पात्र मनु, श्रद्धा, इडा और मानव—संघर्षपूर्ण जीवन से आनन्द की ओर बढ रहे हैं। मनु को पहले श्रद्धा और पीछे इडा (बुद्धि) से समन्वित किया है, बाद में श्रद्धा (हृदय) पक्ष को ही मुक्ति का साधन बताया गया है। श्रद्धा ने कहा है—'सिर चढ़ी रही पाया न हृदय'। इस पद्यखंड की आचार्य शुक्ल जी ने आलोचना की है, परन्तु समरसता के प्रचारक प्रसाद जी द्वारा श्रद्धा का मानव को इड़ा के पास छोड़ जाना दोष-निवृत्ति के लिए पर्याप्त है। कवि ने श्रद्धा से तकली कतवाकर वैज्ञानिक आविष्कारों का दुरुपयोग प्रकट किया है।

उपन्यासों की आलोचना

कंकाल—यह प्रसादजी का एक सामाजिक उपन्यास है। इसका समाज आधुनिक नागरिक तथा मध्यश्रेणी का है। इसमें साधु, सन्त, भिखारी तथा ईसाई, पादरी आदि सभी हैं। सारा वातावरण घरेलू-सा प्रतीत हो रहा है। 'कंकाल' एक व्यंग्यपूर्ण उपन्यास है। यह वर्तमान समाज के आवरण एवं इसके सभ्यतारूपी कवच को भेदकर भीषण प्रहार करता है और बलात् हमारी चेतना को जगा देता है। प्रेमचन्द मीठी चुटकियाँ लेते हैं परन्तु प्रसाद जी व्यंग्य-बाण चलाने में नहीं चूकते।

इस प्रकार प्रसाद जी ने 'कामायनी' काव्य लिखकर साहित्य को अद्भुत रत्न दिया है। इसके द्वारा मानव को भारतीय संस्कृति के मूल-तत्त्व-सिद्धान्तों का परिचय दिया है और 'सत्य शिव सुन्दर' तक पहुँचने का सन्मार्ग प्रदर्शित किया है। पशु-हत्या के सम्बन्ध में श्रद्धा का बुरा मानना भी गाँधीवाद का संकेत समझना चाहिए।

कामायनी का प्रकृति-वर्णन बडे अनूठे ढग का है। वन, पर्वत, सध्या, प्रभात और रात्रि का ऐसा आकर्षक चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। यह अन्तर्वृत्ति-प्रधान काव्य होते हुए भी बाह्य वृतियों का दर्शक है। मानव-जीवन की आसक्ति और विरक्ति से पूर्ण चित्र अन्य महाकाव्यों में नहीं मिल सकते। कामायनी की धारणा उच्च स्तर पर है। कथा का ढग भी पेचीदा है। इसमें के श्रद्धा के स्वरूप को यदि व्यक्ति समझ लें तो कामायनी सरल हो सकती है। जीवन में बुद्धि और हृदय का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कवि यदि श्रद्धा-जैसे पात्र का निर्माण न करता तो यह काव्य केवल दार्शनिक रह जाता, रससिद्ध एव प्रेमरस-प्लावित काव्य न बन पाता। कवि ने अपने पूर्ववर्ती काव्यों के सार का तथा जीवन में अनुभूत सघर्षों का कलात्मक वर्णन किया है। यही कला-पक्ष की साधना कवि को छायावादी होने के साथ-ही-साथ कहीं-कहीं पर रहस्यवादी बना गई है।

प्रसादजी मानव-जीवन के योग्य व्याख्याता हैं। कामायनी छायावाद के सहारे की गई एक व्याख्या-मात्र है। यह महाकाव्य 'सत्य शिव सुन्दर' के समान युगों तक अमर रहेगा।

कवि ने इसमें मानव-जीवन को अमरता और सघर्ष-पथ से ले जाते हुए 'सत्यं शिवं सुन्दर' के दर्शन कराये हैं और विलासिताप्रिय देव-सस्कृति के स्थान पर कल्याणकारी मानव-सस्कृति की स्थापना की है। यह कथा ऐतिहासिक होते हुए भी मानवता का पुरातन द्वन्द्व उपस्थित करती है। दार्शनिक तत्त्व के आधार पर शैवतत्त्व की सुन्दर स्थापना

कठघरे में बद करके बौना बना दिया है। ससार में वही पाप कहलाता है जो समाज के भय से छिपकर किया जाय। इस आधार पर समाज ही उनका प्रेरक है और वही उत्तरदायी भी। ककाल के लेखक के मत में यह सब सभव है। इसलिए (१) लोकशिक्षण और (२) लोकसेवा, दो व्यवस्थाएँ बताई हैं। दार्शनिक 'मिल' ने भी 'लिबर्टी' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि शिक्षा के लिए विशेष उद्योग करना चाहिए। उनके मत में जो समाज बच्चे पैदा करने का आदेश देता है और उनकी शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था नहीं करता वही उसके दुष्परिणामों का भी उत्तरदायी है। मगलदेव ने प्रायश्चित्त रूप में असन्य गूजरो के लडकों को शिक्षित करने के लिए एक पाठशाला स्थापित की है। उसके लिए स्वय ईंट-गारा जोड़ा है और अब भिक्षा माँग-माँगकर उसे चला रहा है। इसी प्रकार शिक्षा-प्रसार में सहयोग दिया जाय तो समाज शिक्षित हो सकता है। भारत-सघ द्वारा लोकसेवा की प्रेरणा मिलती है परन्तु इस क्षेत्र में भी पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की प्रमुखता पाई जाती है। ककाल का आदर्श 'व्यक्तिवाद' है। वह व्यक्ति की मुक्ति के लिए पुकार रहा है। इस उपन्यास का नायक 'विजय' है परन्तु उपन्यास के अन्त में विजय की हड्डियों का ककाल देखकर हम द्रवित हो जाते हैं। समाज के कठोर हाथों से विजय का विकास कुचला जा चुका है, दबा-सा है। उसकी मृत्यु में भी एक कारुणिक संतोष का उन्मेष है।

आदर्श की दृष्टि से कंकाल के समाज-विद्रोही व्यक्तिवाद के विषय में बहुत-कुछ कहा जा सकता है। इस विषय में योरुपीय दार्शनिक हर्बर्ट स्पेन्सर, मिल, सिजविक और अनेक फ्रांसीसी एवं जर्मन एनार्किस्ट आदि यदि एक ओर हैं तो दूसरी ओर ओपेन, हक्सले, हीगेल, डार्विन और मार्क्स जैसे समाजवादी भी हैं। ककाल के विषय में यह कहने में कोई आपत्ति नहीं कि 'सैद्धान्तिक ऊहापोह' उपन्यास का मुख्य विषय नहीं, मुख्य विषय समाज के विभिन्न अंगो का चित्रण है, इसलिए यह

'ककाल' में न तो शुद्ध प्रेम है और न ही वैवाहिक पवित्रता। धार्मिक विशप 'घटा' के पीछे पागल हो रहे हैं। ककाल के देव निरजन कुम्भ मेले के साधु-शिरोमणि हैं। स्वय ब्रह्मानन्द रस लेते और भक्तों को पान कराते हैं परन्तु अपनी वाल-सहचरी किशोरी—श्रीचन्द की पत्नी—की पुत्र-कामना को स्वय ही पूर्ण कर लेते हैं। सेवासमिति का उत्साही और आदर्शवादी छात्र मगलदेव वेश्यागार से एक युवती की रक्षा करता है। महीनो उसका सरक्षक रहता है और अन्त में उसे गर्भवती एव निराश्रित छोडकर चम्पत हो जाता है। ऐसे अनेक चरित्र हैं जिनकी कल्पना में व्यग्य और विडम्बना भरी पडी है।

'ककाल' के लेखक का उद्देश्य वर्तमान, अनियन्त्रित एव पाप-पकिल में पडे हुए समाज के प्रति एक प्रबल आन्दोलन करना है, घोर क्रान्ति खडी करनी है। वास्तव में जो ऊँच-नीच अथवा बडा-छोटा है, वह सभी चरित्रहीन है, इसमें सबकी खिल्ली उडाई गई है, सबके कच्चे चिट्ठे खोलकर रख दिये गये हैं। कहीं शाही घरानो की महिलाएं गूजरों के घरो में शोभायमान हैं तो कहीं सभ्य एव धार्मिक पादरी लोग दीन-हीन कन्या के प्रेमपाश में पडे हुए हैं।

प्रसादजी के विचार में 'ऐकान्तिक आध्यात्मिक साधना' ककाल को इस दयनीय दशा में अनावश्यक है, क्योंकि समाज का वास्तविक सुधार ही उनके आध्यात्मिक जीवन को शान्ति दे सकता है। जब उसी में अश्लील एव दुश्चरित्र भावना भरी हुई है तो हमारी ऐकान्तिक आध्यात्मिक साधना का क्या लाभ हो सकता है?

श्री कालिदास कपूर को यह भ्रान्ति हुई है कि 'ककाल' समाज में अश्लीलता फैलाता है, परन्तु इसका यही कारण हो सकता है कि वे गम्भीर जल में तैरने के अभ्यासी नहीं हैं, उन्हें छिछली धारा में ही तैरने का अवकाश मिला है। 'ककाल' समाज के विरुद्ध विद्रोह करता है और व्यक्ति के लिए पूरे अधिकार चाहता है, जिसने व्यक्ति को समाज के

दार्शनिकता का पुट भी आ गया है। इसलिए कई विद्वानों की सम्मति के अनुसार इनके नाटकों में क्लिष्टता आ गई है। वास्तविकता तो यह है कि प्रसादजी ने भाषा का प्राञ्जल रूप इसलिए रखा है कि उनके नाटक साहित्यिक हैं और यदि जनता तथा पात्र भी अधिक शिक्षित हो सकें तो ये नाटक भी रंगमंचीय हो सकेंगे और अभिनीत भी किये जा सकेंगे। उनका उद्देश्य तो साहित्यिकता की रक्षा करना है। प्रसादजी स्वयं लिखते हैं—"मेरे नाटक दुअन्नी-चवन्नी की टिकट लेकर तमाशा देखने वाले, खोमचे-फरोशों के मनोरंजन की वस्तु नहीं हैं, यह तो एक साहित्य है जो अजर-अमर रहेगा। और जब पृथ्वी विशाल है तो इनका भी कभी-न-कभी सम्मान होगा।" यही उदात्त गर्वोक्ति महाकवि भवभूति ने भी अपने 'उत्तररामचरित' नाटक के सम्बन्ध में की थी।

रहा उपन्यासों के सम्बन्ध में। प्रसादजी के तितली और कंकाल में सामाजिक समस्याओं को मूलरूप दार्शनिक पद्धति पर अंकित किया गया है। सामाजिक समस्याओं का वर्णन तो बाबू प्रेमचन्द ने भी किया है परन्तु उन्होंने समस्याओं का बाह्यरूप-वर्णन करके सामाजिक हृदयों को बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है। प्रसादजी ने उन्हीं समस्याओं के आन्तरिक रूप का वर्णन किया है, मानो जनता से प्रश्न कर रहे हों कि तुम्हारे पास इनका क्या उत्तर है? इस प्रकार इनकी शैली दार्शनिक हो गई है। प्रेमचन्दजी प्रत्यक्षदर्शी हैं, यथार्थवादी हैं, आदर्शवादी हैं, परन्तु प्रसादजी परोक्षदर्शी। वे यथार्थवाद और आदर्शवाद के अन्तस्तल को दार्शनिकता से टटोलते हैं। इसलिए भाषा और भाव में सूक्ष्म विवेचन होने के कारण कुछ क्लिष्टता-सी अनुभव की जा सकती है। प्रेमचन्दजी की भाषा सदा पात्रानुकूल रहती है। यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। परन्तु प्रसादजी की भाषा सदा एक-सी रहती है। यह बात नाट्य कला की दृष्टि से अवश्य खटकती है परन्तु उनका कवित्व तथा दार्शनिक पृष्ठभूमि सीधी-सादी भाषा में सिसकियां भरने लगते हैं। चूंकि

कहना अनुचित नहीं होगा कि समाज की विवशताओ और अवरोधों से क्षुब्ध होकर ककाल की विचारधारा वनी है।

विहगम दृष्टि और महत्त्व

यदि हम गभीरता से मनन करेंगे तो प्रसादजी के 'विशाख' से लेकर 'अजातशत्रु' तक के नाटकों में क्रमिक उत्कर्ष की छटा दीख पडेगी और 'जनमेजय का नागयज्ञ' कई दृष्टियों से अजातशत्रु से भी उत्कृष्टतर प्रतीत होगा। इनमें केवल हिन्दू-सस्कृति के गुण-दोषों का ही विश्लेषण नहीं है, प्रत्युत क्षुद्र और महान् एव उदार और नीच के प्रति होने वाले सघर्षो का सजीव वर्णन है, जिसमें सत्य की विजय का महत्त्व वर्णित है। स्कन्दगुप्त तथा चन्द्रगुप्त में अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं परन्तु कई विशेषताओ के कारण स्कन्दगुप्त का आदर्श भारतीय जनता को अपनी ओर अधिक आकृष्ट कर रहा है। स्कन्दगुप्त अपनी सौतेली माता अनन्तदेवी, सौतेले भाई पुरगुप्त, सेनापति भटार्क और शर्वनाग इन सबके कुटिल षड्यन्त्रों को जानकर भी केवल क्षमा ही नहीं कर देता, शर्वनाग को एक प्रदेश का गवर्नर भी वना देता है, भटार्क को महावलाधिकृत पद से विभूषित करता है और विजया और देवसेना आदि के स्नेह को भी केवल देशभक्ति के रग में तुच्छ समझता है। यह एक आदर्श है जो भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा।

यह भी कहा जाता है कि जब सारनाथ का सग्रहालय (म्यूजियम) बन रहा था तब सिहाली-भिक्षु प्रजासारथि से प्रसादजी की बातें हुआ करती थीं। इन बातों से भी प्रसादजी के हृदय-पटल पर बौद्ध-सस्कृति के प्रति विशेष अनुरक्ति हो गई थी। प्रसादजी की स्वाभाविक अभिरुचि भारतीय सस्कृति के प्रति तो थी ही। इस प्रकार इनके नाटकों में त्याग, उदारता और उच्चकोटि के आदर्शों का समन्वय हो गया है।

नाटकों की भाषा सस्कृतमय है और कवित्व के साथ जहाँ-तहाँ

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

परिचय

'निराला' जी का जन्म सं० १६५५ में बंगाल प्रान्त के महिषादल राज्य से १०० गज दूर, राजवाडी के एक कोने में वारकनुमा झोपड़ी में हुआ। आपकी माता का देहान्त उसी समय हो गया और आपको दूसरी झोपडी में श्वास लेने का अवसर प्राप्त हुआ। वहां से भी आप एक तीसरी झोंपड़ी में ले जाकर पाले-पोसे गये। वैसे आपके पूर्वजों का स्थान गढाकोल जिला उन्नाव (उत्तरप्रदेश) में है, परन्तु आपका जन्म बंगाल की, नहीं नहीं, भारत राष्ट्र की एकमात्र प्रतीक 'झोपडी' में हुआ जो आज भारतराष्ट्र के साहित्यिक गौरव का भी प्रतीक बन गई है। यद्यपि आज वहां तीनों झोंपडियां नहीं हैं तथापि बंगाल प्रान्त की सरकार से प्रार्थना की गई है कि वह वहां 'ज्ञानमन्दिर' की स्थापना करे। महिषादल में आपके पिताजी किसी प्रतिष्ठित राज्यपद पर नियुक्त थे।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा बंगला माध्यम से 'महिषादल-राज्य-हाई-स्कूल' में हुई जो एक बड़ी नहर के तट पर विद्यमान है। कौन जानता था कि यहां का एक सुन्दर किशोर बालक राष्ट्रभाषा के माध्यम से जनता का प्रतिनिधित्व करता हुआ किसी दिन सांस्कृतिक सूर्य के जागरण का अग्रिम प्रहरी बन जायगा।

इसी स्कूल के एक 'टिनशेड' में, जहां कभी एक नाट्यशाला थी, हमारा नायक नाटक खेला करता था। स्कूल छोड़ने के पश्चात् ये 'स्टोर-विभाग' में एक साधारण क्लर्क बन गये। वहीं एक राजमन्दिर है जहां निरालाजी बैठे अपनी रातें व्यतीत किया करते थे। इसी मन्दिर ने हमारे महाकवि में धार्मिक संस्कारों का बीजारोपण किया। ऐसा कहा

प्रसादजी अपने कवित्व तथा दार्शनिक आलोक की अवहेलना करना नहीं चाहते इसलिए उन्हे विवश होकर संस्कृतमय गद्य का ही प्रयोग करना पड़ा होगा।

सत्य तो यह है कि वर्तमान काल में गंभीरता का अभाव है। जो अधिक गला फाड़कर भाषण दे, उसी की प्रशंसा होती है, बाजार में जो जोर-जोर से चिल्लाये उसी का सौदा जल्दी बिकता है, अच्छा माल निकम्मे माल की ढेरी में ढक जाता है। समाज की समस्याएँ तो वही हैं जिन पर कंकाल और तितली में गम्भीरतापूर्वक प्रकाश डाला गया है केवल इतनी ही कमी प्रतीत होती है कि दुकान में माल तो बढ़िया है परन्तु लोगों को रिझाने तथा प्रभावित करने वाली सजावट नहीं है।

गम्भीर व्यक्तित्व अथवा गम्भीर भावों की अभिव्यंजना के लिए गम्भीर भाषा का परिच्छद आवश्यक है, यह सोचकर ही प्रसादजी ने उपर्युक्त स्तर को निभाया है। उन्होंने यह भी सोचा होगा कि जो रत्नाकर से रत्न लेने के इच्छुक होंगे वे सभी गोताखोर (मरजीवा) ही होंगे, उन्हें क्या पता था कि गोताखोरों का अब एक दल ऐसा बनता जा रहा है जो पानी में न जाकर किनारे की धूलि में ही लोटकर 'रत्न' पाना चाहता है, चाहे उन्हें वहाँ सिवाय 'शुक्तियो' के कुछ भी न मिले। यह अलग बात है कि वे उन शुक्तियों को ही 'रत्न' समझकर कृतकृत्य हो जायें।

एक बार एक महिला अपने भाई के साथ निरालाजी से मिलने गई। निरालाजी ने उस स्त्री को तख्त पर बैठने को कहा, पर वह श्रद्धावश तख्त पर न बैठकर एक साधारण स्थान पर खड़ी रह गई। निरालाजी बोले—"हम तो स्त्रियों को उच्च और प्रथम स्थान देते हैं कि आप तख्त पर बैठें वरना हम भी—" यह कहते-कहते एक पायदान पर बैठ गये। फिर तो लज्जित होकर वह स्त्री तख्त पर बैठ गई और शेष लोग भी सब वहीं बैठ गये। इस प्रकार निरालाजी का सामान्य जीवन सबके लिए आकर्षक तथा अनुकरणीय है।

आपके जीवन में स्पष्टवादिता के भी उदाहरण मिलते हैं। कहा जाता है कि एक बार प्रभातशास्त्री ने कहा कि 'आधुनिक कवि' के लिए आप भी अपनी कविताओं का सकलन कर दीजिए तो झट उन्होंने उत्तर दिया—"हमें रुपयों की तो आवश्यकता नहीं है परन्तु हमारी १०००) रुपये फीस है, लाकर दे दो, हम तुरन्त कटिंग करके दे देंगे, ऐसे बिना फीस हम नहीं देंगे।" शास्त्रीजी मुंह देखते रह गये। इसी प्रकार की एक और घटना है, एक बार सरकार ने रुग्णावस्था के कारण निरालाजी को १००) रुपये प्रतिमास सहायतारूप में देना स्वीकार किया। १००) मासिक सुनते ही आप बिगड़ गये और बोले—"एक करोड़ रुपया प्रतिमास यानी १२ करोड़ रुपया प्रतिवर्ष भी सरकार हमें नहीं दे सकी, एक हजार रुपये भी प्रतिमास नहीं दिया, दिया तो क्या? १००) प्रति-मास और वह भी एक साल के लिए !!! यह तो हमारे तम्बाकू-भर के लिए ही होगा, उनसे आखिर कहने कौन गया था कि दो।" इस प्रकार निरालाजी का जीवन भी नितान्त निराला ही है।

रचनाएँ

महाराज शिवाजी का पत्र, गोस्वामी तुलसीदास, राम की शक्ति-साधना आदि रचनाओं में प्राचीन सस्कृति के प्रति प्रेम-भाव प्रकट हुए हैं। भिक्षुक, विधवा, तोड़ती पत्थर आदि रचनाओं में प्रगतिवाद का रूप प्रकट

जाता है कि जब एक डेपूटेशन श्री पुरुषोत्तमदासजी हलवासिया की अध्यक्षता में श्री महादेवी वर्मा से मिला और उनसे प्रार्थना की कि हम 'निराला-अभिनन्दन-ग्रन्थ' तथा उनकी एक फिल्म तैयार करने की इच्छा से कुछ धन इकट्ठा करना चाहते हैं और इसके लिए आपसे कलकत्ते जाने की प्रार्थना करते हैं तो महादेवी ने उत्तर दिया था कि यह तो कलकत्ता जाने-भर की बात है, यदि कोई मुझसे कहे कि नरक जाकर निरालाजी के लिए रुपया लाना है तो मैं वहाँ भी जाऊँगी। निरालाजी के प्रति महिलाओं की एकमात्र प्रतिनिधि, सर्वश्रेष्ठ कवयित्री महादेवी वर्मा के यह शब्द कितने सार्थक एवं आस्थापूर्ण हैं।

'निराला-अभिनन्दन-ग्रन्थ' में ३४ लेख हैं, जिनमें निरालाजी के सम्पर्क में आये हुए व्यक्तियों ने उनके स्वभाव, पाण्डित्य तथा व्यवहार-कुशलता का परिचय कराया है। इन लेखों के द्वारा निरालाजी का जीवन चित्र की भाँति पाठक के स्मृति-पटल पर अंकित हो जाता है। एक बार शिमला के कवि-सम्मेलन में निरालाजी ने अपनी 'जुही की कली' के सम्बन्ध में बड़े गर्व से कहा था कि हिन्दी-साहित्य में तो क्या, विश्व-साहित्य में भी इस कोटि की कविता मुझे कोई दिखा दे तो मैं जानूं, यह मैं चुनौती देता हूं। इसका कारण केवल यही है कि निरालाजी हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी तथा बंगला आदि भाषाओं का प्रकाण्ड पण्डित ही नहीं अपितु अनेक विषयों में बहुज्ञताप्राप्त व्यक्ति हैं। उनका जीवन साधारण परन्तु व्यक्तित्व असाधारण है।

एक बार स्वर्गीय भारतकोकिला सरोजिनी नायडू ने निरालाजी को देखकर कहा था—"मुझे ये यूनानी दार्शनिक-से लगते हैं, यदि वे राजनीति में प्रवेश करते तो चुम्बक की भाँति जनता को खींच लिया करते और आज के जगद्विख्यात नेताओं से भी अधिक प्रख्यात होते।" इसी प्रकार एक अमेरिकन पत्रकार महिला ने उन्हे देखकर कहा था कि निराला 'अपोलो' का पुत्र अथवा साक्षात् 'सीजर' का अवतार है।

निरालाजी ने 'तुलसीदास' नामक खण्ड-काव्य की रचना की है, जो भक्ति-पूर्ण है। इसमें आर्य-संस्कृति का यशोगान है। आपने अंकित किया है कि किस प्रकार आर्य-सस्कृति का सूर्य मुगल-दलरूपी मेघमाला में आच्छन्न हो रहा है। वाद में अकवर की शासन-प्रणाली रूपी अज्ञान एव अन्धकार से पूर्ण शीतल तथा सुखद रात्रि का चित्रण है। इसके पश्चात् निरालाजी ने गोस्वामीजी की पवित्र भूमि 'राजापुर' का वर्णन किया है, तथा उसकी रम्य झाकी चित्रवत् चित्रित की है। तदनन्तर विवाह आदि का भी वर्णन किया है।

विवाह के पश्चात् तुलसीदास एक वार चित्रकूट पर जाते हैं। वहाँ पर्वतीय सौन्दर्य को देखकर इनके मन में भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग तथा गृहस्थ के प्रति विरक्ति पैदा होने लगती है परन्तु थोड़ी देर वाद वही वासनात्मक ममत्व उभर आने से पुनः घर लौट जाते हैं।

एक वार पत्नी का भाई तुलसीदास की अनुपस्थिति में उसे मायके ले गया, क्योंकि गोस्वामीजी एक क्षण के लिए भी उसे अपने से पृथक् नहीं करना चाहते थे। फिर क्या था, पता चलने पर तुलसी पीछे-पीछे ससुराल जा पहुँचे। जव रात्रि का समय आया तो स्त्री ने अपमान-भरे शब्दो में तुलसी को फटकारा कि तुम विना बुलाये यहाँ क्यों आये हो? अस्थि-मांस-मज्जा से निर्मित शरीर में तुम्हारी इतनी आसक्ति है, यदि यही आसक्ति प्रभु-राम में होती तो तुम्हारा लोक-परलोक सफल हो जाता, तुम अजर-अमर हो जाते, मुक्त हो जाते। ये शब्द तुलसीदास को चुभ गये और उदासीन होकर वे वहाँ से चल निकले। इसका परिणाम यह हुआ कि तुलसी हिन्दी-साहित्य-गगन के उज्ज्वल नक्षत्र वन गये। उनका यशोगान 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ' सदा स्थायी रहेगा।

इस काव्य की भाषा अलंकृत एवं लाक्षणिकतापूर्ण है। आरम्भ से अन्त तक इसमें विशेष वक्रता तया सजीवता पाई जाती है। इसमें छाया-वाद तया रहस्यवाद की प्रतीक पद्धति का भी विशेष प्रयोग पाया जाता

हो रहा है। इन रचनाओं के अतिरिक्त आपकी कहानियाँ, उपन्यास और निबन्ध भी अत्यन्त लोकप्रिय हो चुके हैं। आपकी रचनाएँ इस प्रकार हैं-

उपन्यास—अप्सरा, निरुपमा, अलका, प्रभावती, उच्छृङ्खल, चोटी की पकड, काले कारनामे और चमेली आदि।

काव्यसग्रह—अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास, कुकुर-मुत्ता, बेला, अणिमा, अपरा और नये पत्ते आदि।

कहानी-सग्रह—लिली, सखी चतुरीचमार, सुकुल की बीवी आदि।

रेखाचित्र—कुल्लीभाट, बिल्लेसुर, बकरीहा आदि।

निबन्ध-सग्रह—प्रबन्धपद्य, प्रबन्ध-प्रतिमा, प्रबन्ध-परिचय, रवीन्द्र-कविता-कानन आदि।

जीवन-चरित्र—राणाप्रताप भीम, प्रह्लाद, ध्रुव, शकुन्तला आदि।

अनूदित ग्रन्थ—महाभारत, श्रीरामकृष्ण-रसनामृत (चार भाग), स्वामी विवेकानन्दजी के भाषण, देवी चौधरानी, आनन्दमठ, दुर्गेशनन्दिनी, युगलागुलीय, वात्स्यायन-कामसूत्र, तुलसी-रामायण की टीका, गोविन्द-दास पदावली (पद्य में) इत्यादि।

सम्पादित—समन्वय और मतवाला।

आलोचना

गोस्वामी तुलसीदास—निरालाजी हिन्दू-सस्कृति के परम भक्त हैं और तुलसीदास हिन्दू-संस्कृति के सरक्षकों में प्रमुख। गत एक हज़ार वर्षों के इतिहास में गोस्वामीजी जैसा आर्य सस्कृति का कोई सरक्षक नहीं हुआ। इसी कारण निरालाजी की तुलसीदास के प्रति अगाध श्रद्धा है। तुलसीदासजी प्राय चित्रकूट पर रहते थे इसलिए निरालाजी भी चित्रकूट में रमा करते हैं। तुलसीदास के प्रति गहन आस्था के फलस्वरूप ही

परिमल—यह निराला जी की कविताओ का एक सुन्दर संग्रह है। इसमें अध्यात्मवाद, प्रेम, प्रकृति-सौन्दर्य आदि विषयो पर प्रकाश डाला गया है। 'जुही की कली' में सुन्दर मानवीकरण है। 'बादल राग' में प्रकृति की छटा का सुन्दर कल्पनापूर्ण चित्रण किया गया है। 'भिक्षुक' और 'विधवा' शीर्षक कविताओं में करुणरस का प्रवाह है। 'परिमल' की कविताओं पर कवीन्द्र रवीन्द्र तथा स्वामी विवेकानन्द के विचारों की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इसमें निराला जी की विद्रोह-भावना भी काम कर रही है। 'यमुना' और 'पचवटी' प्रसग शीर्षक कविताओ में कवि का प्राचीन सस्कृति के प्रति अनुराग अभिव्यक्त है। इसी प्रकार 'शिवाजी का पत्र' नामक कविता में हिन्दुत्व की, 'दिल्ली और खडहर' में ऐतिहासिक विभूति की तथा 'जागो फिर एक बार' में राष्ट्रीय जागरण की स्पष्ट छाप प्रतीत होती है। इसमें निराला जी ने मुक्तक, तुकान्त और अतुकान्त तीनो प्रकार के गीतों को अपनाया है।

राम की शक्ति-पूजा—इसमें नाट्यतत्त्वों का समावेश किया गया है। कवि ने अनुभव, निराशा और पराजय को नाट्यरूप में यहाँ प्रस्तुत किया है। निराला जी के राम एक 'मानव' हैं। अधीर होने पर शक्ति की पूजा करते हैं। उनकी साधना से प्रसन्न होकर देवी प्रकट होती है और भविष्यवाणी करके लीन हो जाती है। रावण में तमोगुणी प्रवृत्तियाँ हैं। उन प्रवृत्तियो के नष्ट करने में राम को पहले सफलता प्राप्त नहीं होती, दुबारा प्रयास करने पर उन्हें सफलता मिलती है। यही इस रचना का उद्देश्य है। वर्णनशैली अत्यन्त सजीव है।

अणिमा—इसमें निरालाजी के गीतो का संग्रह है। कुछ गीतो में रहस्यात्मक भावना, कुछ में आन्तरिक वेदना तथा शेष में उत्साह-भावना का एक सुन्दर दिग्दर्शन उपलब्ध होता है। अधिकाश रचनाओ में आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल, प्रसाद तथा महादेवी वर्मा आदि कवियो तथा समालोचको के प्रति कवि ने अपनी विनम्र श्रद्धाजलि समर्पित की है।

है। इस काव्य में निरालाजी की भावनाएँ मूर्तरूप में विद्यमान प्रतीत होती हैं। निस्सदेह इसमें मानव हृदय के सूक्ष्म व्यापारों का गभीर विश्लेषण किया गया है। भाषा की अत्यधिक लाक्षणिकता एव अभिव्यजनात्मकता ने काव्य को असाधारण एव साहित्यरसिको के उपयोग की वस्तु बना दिया है। मुग़ल-शासन को 'चन्द्र' बताने में भी आशिक सत्यता प्रतीत होती है। 'तुलसीदास' छायावाद की प्रतीक-पद्धति पर लिखा हुआ एक अनूठा काव्य है। इसमें निराला की निराली प्रतिभा का विशेष चमत्कार मिलता है। कमनीय कल्पना-चातुर्य ने काव्य के कलेवर में चार चाँद लगा दिये हैं। इन सब बातो के आधार पर हम निरालाजी के 'तुलसीदास' का भी महत्त्वपूर्ण स्थान स्वीकार करते हैं। 'तुलसीदास' काव्य का नमूना पढिए—

सोचा कवि ने, मानस तरग, यह भारत सस्कृति पर सभग,
फैली जो लेती सग सग जनगण को,
इस अनिलवाह के पार, प्रस्तर किरणो का, वह ज्योतिर्मय घर
रविकुल-जीवन चुम्बन कर मानव धन जो,
है वही मुक्ति का सत्य रूप, यह कूप कूप भव अन्ध कूप,
वह रक यहाँ जो हुआ भूप, निश्चय रे!
चाहिए उसे और भी और, फिर साधारण को कहाँ ठौर,
जीवन के, जग के यही तौर जय के।

भाव यह है कि भारत को मुस्लिम-सस्कृति से आच्छन्न देखकर कवि सोचने लगा कि यह मुस्लिम सभ्यता भारत पर छाई जा रही है, प्रत्येक मनुष्य इससे प्रभावित हो रहा है, भारतीय सस्कृति का सूर्य ही—जो मुस्लिम-सभ्यतारूपी कुहरा (धुंध) से परे है—उदय होकर, समस्त देश को पराधीनता से मुक्त कर सकता है। यह मुस्लिम-सस्कृति जो सर्वत्र छा रही है भारत को अन्धकार से पूर्ण कुएँ में धकेल रही है। निर्धन विदेशी सभ्यता भी यहाँ सभ्य बन बैठी है, इस सभ्यता में सन्तोष नहीं, वासना है, यहाँ तो "और और" का दौर चल रहा है, कभी तृष्णा से उपराम है ही नहीं।

हिन्दी-साहित्य में निराला

निरालाजी की कविता प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्मित सीमाओं से सर्वथा मुक्त है। इसमें छन्दो बन्धन नहीं है। यह पूर्णतया स्वतन्त्र है और साहित्य-क्षेत्र में नवीन मार्ग की प्रदर्शिका बनकर कार्य कर रही है। इसमें जो अस्पष्टता सर्वसाधारण को दिखाई देती है वह वास्तव में अस्पष्टता नहीं, केवल उच्च मानसिक पृष्ठभूमि के भावों को न समझ सकने के कारण ही ऐसी प्रतीत होने लगती है। वास्तव में निरालाजी का गंभीर अध्ययन उनकी कविता में विकीर्ण हो रहा है। यदि कुछ अधकचरे साहित्यिक अपने अध्ययन की न्यूनता के कारण न समझ सकें तो इसमें निरालाजी का क्या दोष है? उन्हे समझने के लिए अपने गंभीर अध्ययन की भी तो आवश्यकता है!

इसके साथ ही यह समझने की भी पूरी आवश्यकता है कि निरालाजी के जीवन में विकास लाने वाली कौन-कौन-सी प्रवृत्तियां हैं। जब हम उनके जीवन की विकासक प्रवृत्तियों का एवं शैलियो का गम्भीर अध्ययन करेंगे तभी तो हम उनकी रचनाओं की प्रेरणाओ को स्पष्टतया समझ सकेंगे।

यह सत्य है कि निरालाजी की कविता में सरलता नहीं है परन्तु ऐसी क्लिष्टता भी नहीं है जो बुद्धिगम्य न हो। सच तो यह है कि निराला जी की कविता में एक अद्‌भुत विकास का क्रम है। उस क्रम के जान लेने पर व्यक्ति मुग्ध हो जाता है। सहृदय पाठक उनकी कविता में पद-पद पर नव्य सुषमा का दर्शन पाते हैं और कवि के विकास का एक रूप भी देखते हैं।

निरालाजी की कविता में जीवन-संघर्ष का स्पष्ट प्रतिबिम्ब है। उनकी कविता की उच्च पृष्ठभूमि उनकी मानसिक अनुभूतियो के कारण सर्वत्र जागृति देने वाली है। निरालाजी का कवित्व छायावादी कवियों

कुकुरमुत्ता—यह निरालाजी की व्यंग्यात्मक शैली की रचना है। निस्सन्देह अपनी कमनीय-कान्त तथा मोहक सुरभि के कारण गुलाब का पुष्प सर्वश्रेष्ठ माना जाता है परन्तु निरालाजी ने उसकी अपेक्षा कुकुरमुत्ता की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। इसमें सर्वत्र एक व्यंग्यात्मक विनोद की भावना विद्यमान है।

अनामिका—इसमें 'राम की शक्ति-पूजा', 'खुला आसमान' आदि सुन्दर रचनाओं का सकलन है। इसमें स्वच्छद छन्दों की ओर विशेष ध्यान दिया गया है।

गीतिका—इसमें भी 'परिमल' की तरह अनेक गीतों का सकलन किया गया है। इसमें सगीत के तत्त्वों का पूर्ण समावेश है। प्रत्येक गीत भाव तथा कला की दृष्टि से अपने-आप में अत्यन्त मनोहर और सुन्दर बन पड़ा है।

वेला—इसमें निराला जी ने हिन्दी में ग़ज़लें लिखने की एक अनूठी शैली का प्रचलन किया है। देखिए तो—

मंहगाई की बाढ बढ आई, गाँठ की छूटी गाढी कमाई,
भूखे नगे खडे शरमाये, न आये वीर जवाहरलाल।

सरोजस्मृति—यह एक शोक-गीत है। इसके द्वारा निरालाजी ने अपनी एकमात्र प्रिय पुत्री 'सरोज' के निधन पर अपनी आन्तरिक वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। यह पाठक के कोमल हृदय पर स्थायी प्रभाव डालती है। करुण-रस-स्यन्दिनी काव्य-धाराओं का स्राव झरने की भांति स्वभावतः झरता जा रहा है और ऐसी कोमल, मार्मिक, वेदनात्मक उद्भावनाओं के समय बरबस फूट पडता है। और जब ऐसी रचनाओं से स्वय कवि का अपना सम्बन्ध हो तो फिर क्या कहा जा सकता है? अर्थात् पाठक का हृदय भी द्रवित हो उठता है।

वेदान्त के दोनो धुरीण विद्वानों के सिद्धान्तो के प्रभाव से इनकी कविता अछूती न रह सकी। उसमें भारतीय दार्शनिकता और वेदान्तवाद का स्पष्ट चित्रण पाया जाता है।

निरालाजी की कविता में वेदान्त का पुट स्पष्ट है। वे रहस्यवाद के अन्तिम सोपान पर चढ रहे हैं। उन्हे 'प्रियमिलन' की चाह है, परन्तु कबीर या महादेवी की तरह 'नारी के रूप में' प्रिय से मिलने वाली भावना उनमें दिखाई नहीं देती। 'प्रसाद' की तरह निराला भी अपना पुरुषत्व नहीं खो सके। वे भारतीय पद्धति के क्रम को भग नहीं कर सके और न वे ऐसा चाहते हैं। उपनिषदो की पद्धति के अनुसार व आत्मचिन्तन करते हैं और उन्हीं भावो से अपनी कविता को विभूषित करने का प्रयत्न करते हैं। निरालाजी 'प्रिय' से मिलने को उत्सुक रहते हैं। वे ससार की अनित्यता तथा असारता से अनभिज्ञ नहीं हैं। वे गुन-गुनाते हैं—

देख चुका जो जो आये थे चले गये,
मेरे प्रिय सब बुरे गये, सब भले गये।

निरालाजी निराशावादी भी नहीं, क्षणभंगुरता के उपासक भी नहीं, वे चिरतन सत्य पर विश्वास करते हैं। उनका रहस्यवाद स्वय आभा-सित हो जाता है—

तुम तुग हिमालय शृग, और मैं चचलगति सुरसरिता।
तुम विमल-हृदय उच्छ्वास, और मैं कान्त कामिनी कविता।

परन्तु निरालाजी की धारणा अभी तक सदिग्ध और सम्भ्रान्त है। 'यह विश्व प्रभु का कारण है या प्रभु विश्व का कारण है, यह उसमें व्याप्त है या वह इसमें व्याप्त है' इस प्रकार की अत्यधिक दार्शनिकता के कारण उनकी यह भ्रान्ति नहीं मिट सकी। बिना मिटाये उन्हें शान्ति भी नहीं है—

का भी एक प्रकार से प्रतिनिधित्व करता ह और नूतन मार्ग का प्रदर्शक है ।

निराला के काव्य-विकास के प्रथम युग में रामकृष्ण परमहस तथा स्वामी विवेकानन्द जी के व्याख्यानों का वडा प्रभाव है । निराला जी के हृदय-पटल पर उनके सिद्धान्तो का गहरा प्रभाव पडा । उन्होंने 'समन्वय' नामक पत्र का भी सपादन किया था । 'मतवाला' के सम्पादन-काल में ही आप 'निराला' नाम से हिन्दी-साहित्य में प्रसिद्ध हो गये । इन कारणों से आपका अध्ययन अधिक विकसित हो गया । इतना ही नहीं बगला-भाषी होने के कारण बंगला भाषा का माधुर्य एव औदार्य भी इनकी कविता में स्रवित हो गया है । इनके जीवन में फक्कडपन भी है । २० वर्ष की आयु में ही इनकी पत्नी का देहान्त हो जाने से इनका जीवन एकान्तवासी हो गया है । पुत्री 'सरोज' की मृत्यु ने हिन्दी-साहित्य को 'सरोज-स्मृति'-जैसा अनुपम ग्रन्थ दिया है । निरालाजी का पुत्र संगीत-शिक्षा का विशेषज्ञ हो रहा है परन्तु निरालाजी उससे भी पृथक् ही रहते हैं ।

निरालाजी सीधे-साधे व्यक्ति हैं । उनमें आत्मगौरव भी कूट कूट कर भरा हुआ है । वे पूरे स्वाभिमानी हैं । उनका वाह्याभ्यन्तर विशाल है। निरालाजी कोरे कवि ही नहीं, कलाकार, पहलवान, चित्रकार और सहृदय मानव सभी कुछ हैं ।

निरालाजी का विकास-क्रम अन्य कवियों से सर्वथा भिन्न है । वे साहित्योपजीवी व्यक्ति हैं । उन्होंने जीवन में लिखने के अतिरिक्त दूसरा कार्य ही नहीं किया है । जिस समय दूसरे कवियों की वाणी मूक हो गई थी, निराला जी तब भी लिखते ही रहे । निरालाजी के अध्ययन और सघर्ष ने उनकी कविता को छायावादी बना दिया और दार्शनिकता ने छायावाद के साथ, रहस्यवाद का भी वीजारोपण कर दिया जो आजकल पुष्पित हो रहा है ।

निरालाजी को दार्शनिकता वरदान में मिली है । अपने अध्ययन तथा

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनो मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को, भूख मिटाने को ॥

इस प्रकार निरालाजी की कविता में करुणा की धारा निरन्तर वह रही है। 'परिमल' की कविताओ तथा 'वेला' संग्रह में उनकी करुणा के चित्र अत्यन्त दयनीय हैं। उन्होंने दाता-भाग्यविधाता के संकेतो से मानवता की करुणा को छूने का सफल प्रयास किया है।

कवि का प्रकृति-चित्रण भी एकदम निराला ही है। प्रात. जाने वाली एक सुन्दरी का अद्‌भुत चित्र देखिए—

(प्रिय) भामिनी जागी।
अलस पकज—दृग अरुण मुख।
तरुण अनुराग।
खुले केश अशेष शोभा भर रहे।
पृष्ठ ग्रीवा वाहु उर पर तर रहे ॥

इससे भी अधिक रमणीय चित्र प्राप्त हैं। जुही की कली, शेफालिका, सन्ध्या-सुन्दरी और शरद्पूर्णिमा की विदाई आदि कविताओ में प्रकृति का 'नारीरूप' चमक उठा है। कवि लिखता है—

विजन वन वल्लरी पर।
सोती थी सुहागभरी, स्नेह-स्वप्न-मग्न,
अमल कोमल तनु तरुणी जुही की कली।

प्रकृति के चित्रण में निरालाजी की यही विशेषता है कि वे सदा उसका रूपक में ही वर्णन करते हैं और उनका व्यक्तित्व सदा उसमें भाभासित रहता है। प्रत्येक कवि अपनी कविताओ में अतीत की दुहाई

तुम हो अखिल विश्व में,
या यह अखिल विश्व है तुम में ?
अथवा अखिल विश्व तुम एक,
यद्यपि देख रहा हूँ तुम में भेद अनेक ।

इसमें ऐसा प्रतीत होता है कि निरालाजी का दार्शनिक चिन्तन गभीर होने पर भी कुछ रुका हुआ-सा है । इसका यह तात्पर्य नहीं कि निरालाजी रहस्यवाद के तत्त्व को नहीं जान सके, बलिक इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि वे जानते हुए भी संदिग्ध हो रहे हैं, भेद नहीं मिटा सके। निरालाजी की दार्शनिकता अन्य कवियों से भिन्न है । उनकी शैली भी भिन्न है । उनकी दार्शनिकता में चिन्तन तथा भावनाएँ दोनो हैं और दोनों में सरसता, स्पष्टता तथा प्रौढता है ।

निरालाजी की कविता में भारतीय हृदय की करुणा भी व्याप्त है। स्वामी विवेकानन्द का वेदान्त का विवेचन राष्ट्रीयता की पुट में हुआ था । उसी प्रकार का प्रभाव निरालाजी ने भी लिया है और इसी कारण उनकी कविता में करुणा ध्वनित हो उठी। 'विधवा' कविता करुणा की सजीव प्रतिमा है । इसमें निराला जी ने वह कारुणिक चित्र अंकित किया है, जो दूसरे कवि नहीं कर पाये । देखिए—

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी,
वह दीपशिखा-सी शान्त, भाव में लीन ।
वह क्रूर काल के ताण्डव की स्मृतिरेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन ।
दलित भारत की विधवा है ।

निरालाजी की 'भिक्षुक' कविता तो करुणा की साक्षात् प्रतिनिधि है, विश्व-साहित्य में अपूर्व चित्रण है, कवि के हृदय ने भिक्षुक का घोर अपमान नहीं सहा, वह तुरन्त कहने लगा—

सुमित्रानन्दन पन्त

परिचय

पन्त जी का जन्म सं० १९५८ में, अलमोड़ा जिला के कसौनी नामक ग्राम में श्री पं० गंगादत्त पन्त के यहाँ हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम की पाठशाला में हुई। फिर आप गवर्नमेंट हाई स्कूल, अलमोड़ा में प्रविष्ट हुए जहाँ से आपने मैट्रिक परीक्षा पास की। तत्पश्चात् आप सेन्ट्रल कालेज, प्रयाग में भर्ती हो गये परन्तु महात्मा गान्धी के असहयोग-आन्दोलन से प्रभावित होकर कालेज की पढाई छोड़ दी और हिन्दी-साहित्य की सेवा में लीन हो गये।

आपने केवल एफ. ए. परीक्षा पास की है, फिर घर पर ही अन्य साहित्यिकों की भाँति हिन्दी, संस्कृत, बँगला तथा अंग्रेजी का पर्याप्त अध्ययन करते रहे। दर्शन और उपनिषदों की भी शिक्षा आपने प्राप्त की। कवि के चित्ररेखाकार श्री दीनानाथ पंत का कहना है कि जब आप दशम श्रेणी में पढते थे तभी से आपने कविता करना प्रारम्भ कर दिया था। उस समय उनकी कविता के विषय 'तम्बाकू का धुआँ' और 'कागज कुसुम' आदि होते थे। यह सब रचनाएँ उस समय के हस्तलिखित सुधाकर, हिमालय, अलमोडा अखबार तथा मर्यादा आदि में देखी जा सकती। इनमें पन्त जी की भावो कला का संकेत पाया जाता है। खेद है कि वे रचनाएँ पन्तजी ने सब नष्ट कर दी हैं। पन्तजी ने 'हार' नामक एक उपन्यास भी लिखा था जिसकी पाडुलिपि नागरी-प्रचारिणी-सभा के पुस्तकालय में सुरक्षित रखी है।

देता है। निरालाजी का विश्वास है कि अतीत का गान करने से अतीत लौट आता है। परिमल में दी हुई 'आदान-प्रदान' नामक कविता इसी भाव को पुष्ट करती है। महाराज शिवाजी का पत्र, पञ्चवटी, यमुना, राम की शक्ति-पूजा आदि कविताएँ अतीत के गान की प्रतिनिधि कवितायें हैं। कवि ने इनमें अपना अतीत दुहराया है और बडी प्रबलता से वह उसकी पुनःस्थापना करना चाहता है। इतनी दृढ़ता के साथ किसी ने अपना अतीतगान किया हो, इसमें हमें संदेह है। दूसरी विशेषता निरालाजी के काव्य में विद्रोह की भावना है। वे पूंजीवाद के विकट विद्रोही हैं। वे मानवता को वेदना-संघर्ष में कराहता देखकर चीख उठते हैं और दैवी शक्ति पर विश्वास करते हुए उसका आह्वान करते हैं—

एक वार बस और नाच तू श्यामा !
सामान सभी तैयार।
कितने ही हैं असुर, चाहिएँ कितने तुझको हार
एक वार बस और नाच तू श्यामा !

पन्तजी प्रकृति के कवि हैं। प्राकृतिक रमणीयताओं से परिपूर्ण प्रदेश में जन्म लेने के कारण प्रकृति इनकी आत्मा और प्राणों में समा गई है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो प्रकृति के अणु-अणु का रहस्य आपके हृदय-पटल पर अङ्कित है। आप प्रकृति को सहचरी के रूप में देखते हैं और उससे वास्तविक आनन्द का अनुभव करते हैं। आपका प्रकृति के सम्बन्ध में यह दृष्टिकोण अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि वर्ड्सवर्थ से मिलता-जुलता है। उनकी तरह आपको भी प्रकृति का मधुर और कोमलपक्ष अपनी ओर आकृष्ट कर सका है। भाषा की कोमलता के लिए आप प्रसिद्ध हैं। आप का शब्द-चयन अनूठा होता है। नवीनतम रचनाओं में आपके काव्य की दिशा कुछ बदल गई है। अन्य कई कवियों की भांति आप भी मार्क्सवाद तथा साम्यवाद के प्रवाह में वह गये हैं।

रचनाएँ

वीणा, ग्रन्थि, उच्छ्वास, पल्लव, गुंजन, युगान्त, युगवाणी, पल्लविनी और स्वर्णकिरण आदि इनकी रचनाएं पर्याप्त प्रसिद्ध हैं। आजकल आप गान्धीवाद तथा प्रगतिवाद की रचनाओं में अग्रसर हो रहे हैं। 'युगान्त' और 'युगवाणी' में ऐसी ही रचनाएँ संगृहीत हैं। 'ग्राम्या' आपकी आधुनिकतम रचना है। इसमें ग्राम्यजीवन का सजीव एवं वास्तविक चित्रण किया गया है। इसमें कल्पनाओं की उड़ान तथा अभिव्यंजनात्मकता सर्वथा गौण हैं। ग्राम का प्रत्येक कार्य और व्यापार अपने प्राकृतिक रूप में प्रकट हुआ है। गांधीजी के देहान्त के पश्चात् उन्हें श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने के उद्देश्य से आपने और बच्चन ने 'खादी के फूल' नामक रचना प्रकाशित की थी। 'खादी के फूल' का निदर्शन देखिए—

प्रथम अहिंसक मानव वन के, आये हिंस्र धरा पर।
मनुज-बुद्धि को मनुज-हृदय के स्पर्शों ने संस्कृत कर।

पन्तजी 'सुन्दर' के कवि हैं। प्रारम्भ से ही आपकी रुचि नवीनता की ओर रही है, इसीलिए आपने 'गुसाईंदत्त' नाम को बदल कर अपना नाम 'सुमित्रानन्दन' रख लिया था। आप एक कल्पनापूर्ण कलाकार हैं। वैसे तो आपने हिन्दी के नाटक, उपन्यास, कहानी आदि गद्य-भाग का भी विकास किया है परन्तु आपकी लोकप्रियता पद्य-रचना से हुई है। आप की सर्वप्रथम विशेषता 'कोमलकान्त पदावली' है जिसके कारण आपकी खड़ीबोली भी ब्रजभाषा के समान ललित और मधुर बन गई है। आपने आवश्यकतानुसार बँगला तथा अंग्रेजी के छन्दों का हिन्दी में समावेश कर उसे सुन्दर रूप प्रदान किया है। अपनी निर्मल अनुभूति तथा कोमल प्रतिभा के बल पर आपने खड़ीबोली की अभिव्यंजना-शक्ति का यथेष्ट विकास किया है।

आपने जहाँ अंग्रेजी तथा बंगला की शब्दावली को लेकर हिन्दी-साहित्य का भण्डार भरा है वहाँ संस्कृत-भाषा के भी उपयुक्त शब्दों को अपने अभिव्यंजक पदों में मिला दिया है। कहीं-कहीं बँगला तथा अंग्रेजी भाषा के शब्दों का आपने छायानुवाद किया है। इससे भी आपका काव्य-सौष्ठव बढ़ा ही है। पन्तजी की प्रवृत्तियाँ वस्तुतः प्राकृतिक उपकरणों की सुषमा में लीन रहती हैं। यही कारण है कि आपने प्रकृति के अत्यन्त सजीव चित्र अंकित किये हैं जिन्हें पाठक पढ़ते ही मुग्ध हो जाता है। इस प्रकार पन्तजी ने छायावाद में एक नव्य चेतना का संचार किया है। आधुनिक युग के क्रान्तिकारी कवि 'प्रसाद' और 'निराला' हैं पर तीसरा स्थान पन्त जी का गिना जा रहा है। छायावादी तथा रहस्यवादी काव्य के ये तीनों ही स्तम्भ माने जाते हैं। प्रसादजी ने जिस काव्यधारा को जन्म दिया था, जिस शैली को अपनाया था, निराला और पन्त ने उसी पद्धति को समुन्नत किया है। प्रसाद तथा निराला की तरह पन्तजी ने भी भाषा, व्याकरण, छन्द एवं परम्परागत कवि-समय को स्वीकार नहीं किया है।

इन कविताओं में प्रेम का कैसा सजीव, चुलबुलाता चित्र इठला रहा है ! जुगनुओं के रेखाचित्र भी देखिए—

जगमग-जगमग हम जग का मग,
ज्योतित प्रतिपद करते जगमग।
चचल-चचल बुझ-बुझ जल-जल,
शिशु उर पल-पल हरते छल-छल।

जुगनुओं का कैसा जीवित-जाग्रत् चित्र प्रस्तुत किया है। इस प्रकार पूर्व युग की रचनाओं में कवि ने प्रेम के अत्यन्त मनोहर रूप को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है। 'युगान्त' में पन्त जी की प्रकृति ने करवट बदली। युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या में कवि छायावाद को छोड़कर मानव-भूमि पर आकर दीन, दुखी, दरिद्र, श्रमिक और कृषकवर्ग की ओर देखने लगा है। उसे पुरानी रूढ़िवादी और पूँजीपतियों की शोषण-नीति के प्रति एक रोष-सा आ रहा है—

गा कोकिल बरसा पावक-कण,
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन, ध्वंस-भ्रंश जग के जड़ बंधन।
पावक पग धर आये नूतन, हो पल्लवित नवल मानवपन।

इस प्रकार पन्तजी ने प्रगतिवाद के प्रति अपना प्रेम प्रकट किया है; किन्तु स्मरण रहे कि पन्तजी का प्रगतिवाद रूसी साम्यवाद से प्रभावित नहीं है। वह तो गांधीवाद पर ही आधारित है। जैसे गांधीजी नवीन और प्राचीन दोनों के समन्वय के पक्षपाती थे उसी प्रकार पन्तजी भी उसी समन्वय के आधार पर समाज का सुधार करना चाहते हैं।

पन्तजी की काव्यधारा दो स्फुट रूपों में तो है ही, उसके अवान्तर भेद भी पाये जाते हैं। आरम्भ में कवि प्रकृति का प्रेमी रहा है, फिर उसकी प्रतिभा प्रगति के पथ पर अग्रसर हुई है। इस सम्बन्ध में पन्तजी ने स्वयं लिखा है कि मेरा विचार है कि वीणा से ग्राम्या तक मेरी सभी

निवल प्रेम को भाव-गगन से निर्मम धरती पर धर।
जन - जीवन के वाहुपाश में बाँध गये तुम दृढतर।
द्वेप घृणा के कटु प्रहार सह करुणा दे प्रेमोत्तर।
मनुज ग्रह के गत विधान को बदल गये हिंसा हर।

(खादी के फूल)

पन्त की काव्य-धारा में परिवर्तन

पन्तजी की कविता में क्रमिक विकास तो है ही, साथ-साथ उसमें स्पष्ट परिवर्तन भी दिखाई देता है। हम पन्तजी की कविताओं को (१) छायावादी और (२) प्रगतिवादी इन दो रूपो में विभक्त कर सकते हैं। पन्तजी के पूर्व युग की रचनाएँ छायावादी है। उनमें सौन्दर्य की सरस धारा प्रवाहित हो रही है। कल्पना के साथ कला-पक्ष और भाव-पक्ष दोनो ही चरम सीमा तक पहुँचे हुए है। वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, गुजन और ज्योत्स्ना आदि रचनाएँ सब पूर्व युग की है। इस युग की कविता के प्रत्येक पद में मानो रस का सागर उमड रहा है। अलकारों की छटा भी निराली छलांगें भरती हुई मानो उत्तरोत्तर अग्रसर हो रही है।

शशि-किरणो में उतर-उतर कर,
भू पर काम-रूप नभचर।
चूम नवल कलियो का मृदु मुख,
सिखा रहे थे मुसकाना।

इस पद में प्रभात का कैसा मनोहारी वर्णन किया गया है—

हास-सरिता में सरोजो से खिले,
गाल के गहरे गढो को मधुप से।
चुम्बनो से हो नही जिसने भरा,
उस खिली चम्पाकली ने क्या किया।

इन कविताओं में प्रेम का कैसा सजीव, चुलबुलाता चित्र इठला रहा है ! जुगनुओं के रेखाचित्र भी देखिए—

जगमग-जगमग हम जग का मग,
ज्योतित प्रतिपद करते जगमग।
चचल-चचल बुझ-बुझ जल-जल,
शिशु उर पल-पल हरते छल-छल।

जुगनुओं का कैसा जीवित-जाग्रत् चित्र प्रस्तुत किया है। इस प्रकार पूर्व युग की रचनाओं में कवि ने प्रेम के अत्यन्त मनोहर रूप को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है। 'युगान्त' में पन्त जी की प्रकृति ने करवट बदली। युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या में कवि छायावाद को छोड़कर मानव-भूमि पर आकर दीन, दुखी, दरिद्र, श्रमिक और कृषकवर्ग की ओर देखने लगा है। उसे पुरानी रूढ़िवादी और पूंजीपतियों की शोषण-नीति के प्रति एक रोष-सा आ रहा है—

गा कोकिल बरसा पावक-करण,
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन, ध्वस-भ्र श जग के जड बधन।
पावक पग धर आये नूतन, हो पल्लवित नवल मानवपन।

इस प्रकार पन्तजी ने प्रगतिवाद के प्रति अपना प्रेम प्रकट किया है; किन्तु स्मरण रहे कि पन्तजी का प्रगतिवाद रूसी साम्यवाद से प्रभावित नहीं है। वह तो गाधीवाद पर ही आधारित है। जैसे गाधीजी नवीन और प्राचीन दोनों के समन्वय के पक्षपाती थे उसी प्रकार पन्तजी भी उसी समन्वय के आधार पर समाज का सुधार करना चाहते हैं।

पन्तजी की काव्यधारा दो स्फुट रूपों में तो है ही, उसके अवान्तर भेद भी पाये जाते हैं। आरम्भ में कवि प्रकृति का प्रेमी रहा है, फिर उसकी प्रतिभा प्रगति के पथ पर अग्रसर हुई है। इस सम्बन्ध में पन्तजी ने स्वयं लिखा है कि मेरा विचार है कि वीणा से ग्राम्या तक मेरी सभी

निवल प्रेम को भाव-गगन से निर्मम धरती पर घर।
जन - जीवन के बाहुपाश में बाँध गये तुम दृढतर।
द्वेप घृणा के कटु प्रहार सह करुणा दे प्रेमोत्तर।
मनुज श्रह के गत विधान को वदल गये हिंसा हर।
(खादी के फूल)

पन्त की काव्य-धारा में परिवर्तन

पन्तजी की कविता में क्रमिक विकास तो है ही, साथ-साथ उसमें स्पष्ट परिवर्तन भी दिखाई देता है। हम पन्तजी की कविताओं को (१) छायावादी और (२) प्रगतिवादी इन दो रूपों में विभक्त कर सकते हैं। पन्तजी के पूर्व युग की रचनाएँ छायावादी हैं। उनमें सौन्दर्य की सरस धारा प्रवाहित हो रही है। कल्पना के साथ कला-पक्ष और भाव-पक्ष दोनों ही चरम सीमा तक पहुँचे हुए हैं। वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, गुंजन और ज्योत्स्ना आदि रचनाएँ सब पूर्व युग की हैं। इस युग की कविता के प्रत्येक पद में मानो रस का सागर उमड रहा है। अलकारों की छटा भी निराली छलांगें भरती हुई मानो उत्तरोत्तर अग्रसर हो रही है।

शशि-किरणो में उतर-उतर कर,
भू पर काम-रूप नभचर।
चूम नवल कलियो का मृदु मुख,
सिखा रहे थे मुसकाना।

इस पद में प्रभात का कैसा मनोहारी वर्णन किया गया है—

हास-सरिता में सरोजो से खिले,
गाल के गहरे गढो को मधुप से।
चुम्बनो से हो नही जिसने भरा,
उस खिली चम्पाकली ने क्या किया।

इन कविताओ में प्रेम का कैसा सजीव, चुलबुलाता चित्र इठला रहा है ! जुगनुओं के रेखाचित्र भी देखिए—

जगमग-जगमग हम जग का मग,
ज्योतित प्रतिपद करते जगमग।
चचल-चचल बुझ-बुझ जल-जल,
शिशु उर पल-पल हरते छल-छल।

जुगनुओ का कैसा जीवित-जाग्रत् चित्र प्रस्तुत किया है। इस प्रकार पूर्व युग की रचनाओं में कवि ने प्रेम के अत्यन्त मनोहर रूप को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है। 'युगान्त' में पन्त जी की प्रकृति ने करवट बदली। युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या में कवि छायावाद को छोड़कर मानव-भूमि पर आकर दीन, दुखी, दरिद्र, श्रमिक और कृषकवर्ग की ओर देखने लगा है। उसे पुरानी रूढिवादी और पूंजीपतियो की शोषण-नीति के प्रति एक रोष-सा आ रहा है—

गा कोकिल वरसा पावक-कण,
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन, ध्वस-भ्र श जग के जड बधन।
पावक पग धर आये नूतन, हो पल्लवित नवल मानवपन।

इस प्रकार पन्तजी ने प्रगतिवाद के प्रति अपना प्रेम प्रकट किया है; किन्तु स्मरण रहे कि पन्तजी का प्रगतिवाद रूसी साम्यवाद से प्रभावित नहीं है। वह तो गाधीवाद पर ही आधारित है। जैसे गाधीजी नवीन और प्राचीन दोनों के समन्वय के पक्षपाती थे उसी प्रकार पन्तजी भी उसी समन्वय के आधार पर समाज का सुधार करना चाहते हैं।

पन्तजी की काव्यधारा दो स्फुट रूपों में तो है ही, उसके अवान्तर भेद भी पाये जाते हैं। आरम्भ में कवि प्रकृति का प्रेमी रहा है, फिर उसकी प्रतिभा प्रगति के पथ पर अग्रसर हुई है। इस सम्बन्ध में पन्तजी ने स्वयं लिखा है कि मेरा विचार है कि वीणा से ग्राम्या तक मेरी सभी

रचनाओं में प्राकृतिक सौंदर्य का प्रेमनाद किसी भी रूप में अवश्य विद्यमान है। पन्तजी ने प्रकृति के सुकुमार रूप को ही अपनाया है, भयकर रूप को नहीं। इसके साथ ही वे स्वामी रामतीर्थ और विवेकानन्द के विचारों से प्रभावित होकर दार्शनिकता की ओर भी बढ़ गये हैं और जीवन-मरण की समस्याओं में उलझ गये हैं—

खोलता उधर जन्म लोचन, मूंदती उधर मृत्यु क्षण क्षण।
वही मधु ऋतु की गुंजित डाल, झुकी थी जो यौवन के भार।
अकिंचनता में निज तत्काल, सिहर उठती है जीवन भार।

आदि कविता में मृत्यु के प्रति मृत्यु की विभीषिका का कैसा सुन्दर प्रदर्शन हुआ है, परन्तु आगे उसकी यह विरक्ति दूर हो गई है। बात तो यह है कि पितृ-वियोग के कारण पन्त में यह विरक्ति हुई थी, वह दूर हो गई और उसका स्थान सौन्दर्य ने ले लिया। इस युग का सौन्दर्य सूक्ष्म तथा आन्तरिक सौन्दर्य है। इसमें ऐन्द्रियता का नाम तक नहीं। इसके पश्चात् कवि प्रगतिवादी बनकर आया है। महायुद्ध की विभीषिकाओं से प्रभावित होकर ही इसने गांधीजी के समाजवाद को अपनाया है।

पन्तजी के काव्य में जितनी प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं वे सब 'आधुनिक कवि' द्वितीय भाग में लक्षित हैं। कवि ने उसमें स्वय लिखा है कि मेरी कल्पनाओं को जिन-जिन विचारधाराओं से प्रेरणा मिली है उन सबका समीकरण करने की मैंने चेष्टा की है।' इसमें सदेह नहीं कि युग-वाणी, ग्राम्या आदि काव्यो में कला का स्थान उपयोगिता ने ले लिया है। ये यथार्थवादी होने के कारण अभिधा के उपासक बन गये हैं। छायावाद की कल्पनाएँ एवं अभिव्यजनाएँ उत्तरकालीन रचनाओं में नहीं पाई जातीं। 'ग्राम-वनिया' शीर्षक कविता इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

रचनाओं का वर्गीकरण

आपकी रचनाएँ इस प्रकार विभक्त हैं—

गद्य—

(१) नाटक—ज्योत्स्ना, (२) उपन्यास—हार, (३) कहानी-संग्रह—पांच कहानियां।

पन्तजी की पद्यात्मक रचनाओ को तीन भागो में विभक्त कर सकते हैं—

(१) छायावादी सौंदर्ययुग—वीणा, पल्लव, ग्रन्थि आदि।

(२) प्रगतियुग—युगवाणी, ग्राम्या आदि।

(३) आध्यात्मिक युग—स्वर्णधूलि, स्वर्णकिरण, युगपथ और उत्तरा आदि।

जब हम पन्तजी के समस्त साहित्य की आलोचना करते हैं तब ऐसा प्रतीत होता है मानो उन्होंने अपने समय की प्रत्येक धारा को अपनाया है और उसका निर्वाह किया है। उनकी कुछ रचनाओ पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव है और कुछ पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विचारों तथा गांधीजी की विचारधाराओं का। शेष रचनाओं पर अरविन्द, गांधी तथा विवेकानन्द का सम्मिलित प्रभाव है। इनके काव्यों में पूर्व तथा पश्चिम की कलाओं का सुन्दर समन्वय पाया जाता है। समय की गति के साथ-साथ इनका पद-संचालन हुआ है और उसमें सौंदर्य, चित्रोपमता और संगीतात्मकता इन तीनों गुणों का समावेश पाया जाता है। इसमें संदेह नहीं कि पंतजी हिन्दी के उत्कृष्ट कलाकार हैं।

प्रमुख रचनाओं की आलोचना

वीणा—यह पंतजी की प्रारम्भिक रचनाओ का संग्रह है। इसमें कवि ने अपनी प्रकृति-सम्बन्धी प्रेमभरी भावनाओ की अभिव्यक्ति की है। शैशव की आदर्श भावनाओ का भी इसमें चित्रण है। साथ ही स्वामी विवेकानदजी की विचारधारानुसार देवी सरस्वती की माता के रूप में वदना की है।

मां, मेरे जीवन की हार।

तेरा उज्ज्वल हृदय हो अश्रुकणों का यह उपहार ॥

'वीणा' के सम्बन्ध में कवि के विचार इस प्रकार हैं—"वीणा मेरा दुधमुंहा प्रयास है। इस सग्रह में दो-एक को छोड, अधिकाश सब रचनाएं सन् १९१८–१९ की लिखी हुई हैं। उस कवि-जीवन के नवप्रभात में नवोढ़ा कविता की मधुर नूपुर-ध्वनि तथा अनिर्वचनीय सौंदर्य से एक साथ ही आकृष्ट हो, मेरा मन्द कवियश प्रार्थी, निर्बोध, लज्जाभीरु कवि वीणावादिनी के पास बैठ, स्वर-साधन करते समय, अपनी आकुल-उत्सुक-हृत्तन्त्री से, वार-वार चेष्टा करने पर भी, अत्यन्त असमर्थ अगुलियों के उल्टे-सीधे आघातों द्वारा, जैसी कुछ भी अस्फुट झकारें जागरित कर सका है, वे इस 'वीणा' के स्वरूप में आपके सम्मुख उपस्थित हैं।"

ऐसा प्रतीत होता है कि वालकवि उडने के लिए पख फडफडा रहा है। ये कविताएं गीताञ्जलि से प्राय. प्रभावित हैं और विश्वात्मा से ज्ञान, बल और भाव प्रदान करने की प्रार्थना कर रही हैं—

मेरे चचल मानस पर,
पादपद्म विकसा सुन्दर।
वजा मधुर वीणा निज मात,
एक गान कर मम अन्तर ॥

कवि आत्मोत्सर्ग की कामना करता हुआ सुन्दर भाव में अनुनय-विनय कर रहा है—

तुहिनविन्दु बनकर सुन्दर,
कुमुद किरण से सहज उतर।
मां, तेरे प्रिय पद-पद्मो में,
अर्पण जीवन को कर दूं ॥

और अन्त में कवि ने स्वप्न-नीड से बाहर आकर 'विहग वन के राजकुमार' आदि अस्फुट गीत गाये हैं। वे सुन्दर हैं, अत्यन्त भोले हैं—

है स्वप्न नीड मेरा भी, जग-उपवन में,
मै खग-सा फिरता, नीरवभाव गगन में ।
उड मृदुल कल्पना-पखो से, निर्जन में,
चुगता हूँ गाने विखरे तृन में, कन में ।।

ग्रन्थि—इसमें पन्तजी ने युवक-हृदय की प्रेममयी भावनाग्रो का चित्रण किया है। इसमें विरह-वेदना की अभिव्यक्ति अत्यन्त सजीव हुई है। इसका भावपक्ष अत्यन्त पूर्ण एवं मार्मिक है। एक युवक की नौका नदी में डूब जाती है, वह अचेत हो जाता है, चेतना आने पर वह अपने-आपको एक सुन्दरी के पास पाता है, दोनो प्रणयपाश में बँध जाते हैं, परन्तु युवती का विवाह किसी दूसरे व्यक्ति से हो जाता है। युवक विरही बनकर घूमता है, उन्मत्त हो जाता है, पन्तजी ने उसकी व्यथाओं का मार्मिक वर्णन किया है। 'ग्रन्थि' पर संस्कृत-शैली का प्रभाव पाया जाता है, जैसा—

तरणि के साथ ही तरल तरंग से,
तरणी डूबी थी, हमारी ताल में।

इस पद में 'तरणि-तरणी' में छेकानुप्रास, यमक एवं संसृष्टि अलंकार झंकृत हो रहे हैं और दोनों पंक्तियो में स्पष्ट 'वृत्त्यनुप्रास' की गूंज सुनाई पड रही है। यह एक सुन्दर रचना है।

ऐसा भी कहा जाता है कि पन्तजी ने इसमें प्रेम-कहानी लिखी हैं और प्रतीत भी होता हैं कि पन्तजी की उच्छ्वास, आँसू और ग्रन्थि ये तीन कविताएँ किसी विशेष प्रेरणा के भार से दवकर लिखी गई हैं और इनमें अपने जीवन-सम्बन्धी कुछ रहस्य निहित हैं।

'ग्रन्थि' में विप्रलम्भ शृंगार है। इसकी कथा प्रथम पुरुष में आत्म-कथा के रूप में चलती है मानो नायक आपबीती सुना रहा है।

कृतज्ञ नायक का अनुनय—

प्रेम-कण्टक से अचानक विद्ध हो,
जो सुमन-तरु से विलग है हो चुका।
निज दया से द्रवित उर में स्थान दे,
क्या न सरस विकास दोगी तुम उसे ?

फिर कुछ अधीर-सा होकर कह रहा है—

कौन मादक कर मुझे है छू रहा,
प्रिय तुम्हारी मूकता की आड में।

प्रेमभरी उक्ति—

यह अनोखी रीति है क्या प्रेम की,
जो अपागों से अधिक है दीखती।
दूर होकर और बढता है, तथा
वारि पीकर पूछता है घर सदा।

इसके बाद नायिका बड़े साहस के साथ कुछ कहना चाहती है, परन्तु 'नाथ' शब्द के अतिरिक्त कुछ कह नहीं सकी, लज्जा की लाली उसके मुंह को चुप करा देती है। कवि कल्पना करता है कि नायिका की चुप्पी का कारण यही हो सकता है कि—

देख रति ने मोतियो की लूट यह,
मृदुल गालो पर सुमुखि के लाज से।
लाख सी दी त्वरित लगवा, बन्द कर,
अधर विद्रुम द्वार अपने कोप के।

कितनी अनूठी एव मार्मिक उक्ति है, उत्प्रेक्षा है, कल्पना है। नायक को विरह की वेदना अनुभव करा रही है—

प्रेम-वञ्चित को तथा कगाल को,
है कहाँ आश्रय विरह की वह्नि में।

'ग्रन्थि' एक गीति-काव्य है। इसे खण्डकाव्य कहना अनुपयुक्त है।

पल्लव---यह पन्तजी की महत्त्वपूर्ण रचना है। 'परिवर्तन' नामक कविता को छोड़कर सभी कविताओं में प्रकृति के सौन्दर्य का सुन्दर चित्रण है। इसमें उग्र तथा करुण दोनो रूपों का वर्णन मिलता है। इसकी कविताएँ रमणीय तथा प्रभावोत्पादक हैं। इसमें प्रकृति का मानवीकरण आलम्बन के रूप में किया गया है। सर्वप्रथम 'छायावाद' का स्वरूप इसी ग्रन्थ में पाया जाता है अतः ऐतिहासिक दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है। भाव और शैली की दृष्टि से कवि ने इसमें नूतन परिवर्तन किया है।

'पल्लव' का काव्य-सौष्ठव अस्त-व्यस्त है। कवि ने प्राकृतिक पदार्थों का अत्यन्त सजीव वर्णन किया है। देखिए, वर्षा का कितना मोहक चित्र है—

गिरि का गौरव गाकर झरझर, मद मे नस-नस उत्तेजित कर।
मोती की लड़ियो-से सुन्दर, झरते हैं झागो-से निर्झर॥
गिरिवर के डर से उठ-उठ कर, उच्चाकाक्षाओ के तरुवर।
झाँक रहे नीरव नभ पर, अनिमेष अटल कुछ चिन्तापर॥

पन्तजी ने प्राकृतिक पदार्थों के वर्णन में किसी अन्य शक्ति का प्रतिबिम्ब भी देखा है, इस प्रकार इनमें 'रहस्य-भावना' का समावेश भी पाया जाता है। देखिए—

न जाने नक्षत्रो से कौन,
निमन्त्रण देता मुझको मौन ?

'पल्लव' में यौवन के गीत हैं, इसलिए इनमें भावोन्माद भी अधिक है। इसमें पन्तजी की उद्गीतियाँ भी अधिक हैं। कला-प्रेमियों को यही रचना सर्वोत्कृष्ट जँचती होगी। इसके विषय में स्वयं कवि कह रहा है—

न पत्रो का मर्मर सगीत,
न पुष्पो का रस-राग पराग।

एक अस्फुट अस्पष्ट अगीत।
सुप्ति की ये स्वप्निल मुस्कान।
सरल शिशुओ के शुचि अनुराग।
वन्य विहगो के कलकल गान॥

कवि अपने उच्छ्वास को बादल बनने की प्रेरणा दे रहा है—

बरस धरा में, बरस सरित गिरि सर सागर में।
हर मेरा सन्ताप, पाप जग का क्षणभर में॥

'बालापन' कविता भी अत्यन्त सुन्दर है। उसमें अबोध भावुकता भरी हुई है। किसी नवयुवती का अपने वृद्ध प्रपितामह से उलझने का चचल चित्र कितना अपूर्व बन पडा है। इसके चित्र रंगीन हैं, हृदय पर स्थायी प्रभाव डालते हैं—

इस अभिमानी अचल में फिर,
अकित कर दो, विधि! अकलक।
मेरा छीना बालापन फिर,
करुण लगा दो मेरे अक॥

गुंजन—पन्तजी की यह रचना पहली रचनाओं से सर्वथा भिन्न है। उनमें प्रकृति को और 'गुजन' में 'मानव' को महत्त्व दिया गया है, क्योंकि पन्तजी को पल्लव तथा गुजन की रचना के मध्यकाल में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पडा। इसका उनके विचारों पर अत्यन्त प्रभाव पडा। इसमें पन्तजी ने सुख तथा दुःख दोनों के मध्य समत्व की स्थापना की है। वे कहते हैं—

मैं नही चाहता चिर सुख, मैं नही चाहता चिर-दुख।
जग-पीडित है अति दुख से, जग-पीडित रे अति सुख से।
मानव-जग में बंट जावे, दुख सुख से औ' सुख दुख से॥

धीरे-धीरे कवि दुःख को भुलाकर सुख की सृष्टि करता है। गुजन

की 'भावी पत्नी के प्रति' शीर्षक कविता में प्रेम-भावनाओ की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। इसमें उन्होने अपने दार्शनिक विचारो का सुन्दर वर्णन किया है। मुक्ति के सम्बन्ध में पन्त जी का विचार है कि जीवात्मा ईश्वर में लीन नहीं होता, वह बन्धन में बँध जाता है। सच्ची मुक्ति तो मानव के अपने कर्तव्य-पथ पर डट जाने का नाम है, जो दूसरो के लिए मर-मिटता है, दूसरे के कष्टों को दूर करते समय वह अपनेपन को सर्वथा भूल जाता है। कुछ गीतों में कवि ने अपनी प्रेयसी के सौन्दर्य का आकर्षक वर्णन किया है। सृष्टि का प्रत्येक तत्त्व उसकी झलक देखने के लिए आतुर हो रहा है—

कब से विलोकती तुम को,
ऊषा आ वातायन से।
सध्या उदास फिर आती,
सूने नभ के आँगन से।

उषा का वातायन से झाँकना प्रौढ़ एव सजीव कल्पना है। 'आँख' और 'मुसकान' ये दो कविताएँ हैं। 'आँख' कविता में सूक्ष्मदर्शिता भी है और निर्जीवता भी। हाँ, दूसरा गीत—

तुम्हारी आँखो का आकाश,
सरल आँखो का नीलाकाश।

अत्यन्त भावपूर्ण एवं रम्य है। प्रेयसी की आँखों का सरल नीलाकाश में कवि का मन 'खग' हो गया है। पुरानी उक्ति नये रूप में दोहरा दी गई है। कवि चिन्तित है—

तुम्हारे नयनो का आकाश।
सजल, श्यामल, अकूल आकाश।

युगान्त—इसमें चिन्तन के भावों की प्रधानता है; 'सत्य शिवं सुन्दरं' का पूर्ण समावेश है। यद्यपि इसमें कवि ने छायावाद के तत्त्वों को ग्रहण

किया है तथापि प्रगतिवादी विचारधारा के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं। चूंकि उस समय छायावाद का अन्त हो रहा था इसलिए इसका नाम 'युगान्त' रखा गया। जब युगान्त की रचना आरम्भ हुई थी तब महात्मा गांधी के राष्ट्रीय आन्दोलन से भारत की जनता का ध्यान मानवता की ओर आकृष्ट हो चुका था। पन्तजी ने इसलिए उन भावनाओं को भी ग्रहण किया है, साथ ही महात्मा जी के प्रति अपनी श्रद्धेय भावनाओं की अभिव्यक्ति भी की है—

जड़वाद जर्जरित जग में, अवतरित हुए आत्मा महान्।
यन्त्राभिभूत जग में करने, मानव जीवन का परित्राण॥

'मानव' कविता में मानवपूजा और 'बापू के प्रति' में आध्यात्मिकता का स्रोत उमड़ रहा है। बापू में कवि ने अपने आदर्शों को पा लिया है। वे मानवता के उद्धार के लिए आये हैं इसलिए कविता में उसका चिन्तन अनुभूतिपूर्ण हो गया है। अंग्रेजी ओड (Ode) की शैली पर होने के कारण सम्बोधन की प्रधानता पाई जाती है। पन्तजी ने उनके चयन एवं निर्माण में अपूर्व कौशल एवं भावुकता का परिचय दिया है—

सुखभोग खोजने आते सब,
आये तुम करने सत्य खोज।
जग की मिट्टी के पुतले जन,
तुम आत्मा के, मन के मनोज।

अल्मोड़े के बसन्त का सजीव वर्णन पढ़ते ही बनता है—

लो चित्रशलभ-सी, पंख खोल,
उड़ने को है कुसुमित घाटी।
यह है अल्मोड़े का बसन्त,
खिल पड़ी निखिल पर्वत घाटी।

युगवाणी—इसमें पन्तजी की सन् १९३६ से १९४१ तक की रचनाएँ संकलित हैं। उस समय तक प्रगतिवाद का उद्भव हो चुका था, गांधीवाद का प्रभाव भी जीवित था, इसीलिए इसमें दोनो का उन्मुक्त गान पाया जाता है—

मनुष्यत्व का तत्त्व सिखाता, निश्चय हमको गान्धीवाद,
सामूहिक जीवन-विकास की, साम्य-योजना है अविवाद।

गांधीवाद का उद्देश्य भी प्रगतिवाद की भांति शोषण का अन्त करना है। दोनो वादो के साधनो में पर्याप्त अन्तर है। जनता दोनो वादों के प्रति समान रूप से आकृष्ट थी इसीलिए पन्तजी ने भी साम्यवाद के साथ गांधीवाद को ग्रहण किया है। फिर भी इनकी वृत्तियां प्रगतिवादी विचारों से प्रभावित रही है। पूंजीपतियों की शोषण-वृत्ति का ओजस्वी शब्दों में वर्णन किया गया है—

वे नृशस हैं, वे जन के श्रम-बल से पोषित।
दुहरे धनी, जोक जग के, भू जिनसे शोषित।
सुरागना, सपदा, सुराओ मे ससेवित।
नर-पशु वे भूभार मनुजता जिनसे लज्जित।

इसी प्रकार नारी की महिमा का भी कवि ने उन्मुक्त गान किया है। अनेक गीतो में उन्होंने नवमानवता की महत्ता का वर्णन किया है। पन्तजी ने साम्यवाद तथा गांधीवाद का यशोगान करते हुए, समाज के कुत्सित अगों की भी विगर्हणा की है, कुछ कविताओ में प्रकृति का नगण्य चित्रण भी किया है। वह युग स्वर्णयुग होगा जब—

श्रेणिवर्ग में मानव नही विभाजित।
धन-बल से हो जहाँ जनश्रम शोषण।
पूरित भव जीवन के निखिल प्रयोजन।

समस्त देश ने मध्यकालीन संस्कृति के बंधन में पड़ कर अनेक दु:ख

सहे, अब उसे पुरानी रूढ़ियो से मुक्त होकर नवीन आदर्शों का निर्वाण करना होगा—

मुखियो के, कुलपति, सामन्त महन्तो के वैभव क्षण।
विला गये बहु राजतन्त्र, सागर में ज्यो बुदबुदकण॥

युगवाणी समस्त जीर्ण-पुरातन को नव्य भव्य बनाने का सदेश देती है।

ग्राम्या—प्रगतिवाद की दृष्टि से यह काव्य सग्रह पन्तजी की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें ग्राम्य-जीवन का वास्तविक चित्र खींचा गया है। इसमें हार्दिक अनुभूति की अपेक्षा बौद्धिक अनुभूति ही प्रबल है। पन्तजी ने इसमें ग्राम्य-जीवन के सुन्दर और असुन्दर अनेक चित्र खींचे हैं। ग्रामवधू, ग्रामनारी, धोबी, चमार और कहार आदि के चित्र अत्यन्त रमणीय हैं। कवि ने जिन विचारों को युगवाणी में सैद्धान्तिक रूप दिया है उन्हीं को 'ग्राम्या' में व्यावहारिक दृष्टि से चित्रित किया है। भावपक्ष एव कलापक्ष दोनों सबल हैं। भाषा में ध्वन्यात्मकता का सुन्दर समावेश है—

लो, छन छन छन छन,
छन छन छन छन।
ठुमुक गुजरिया हरती मन॥

इस प्रकार पन्तजी ने 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में प्रगतिवादी विचार-धारा पर बल दिया है, पर प्रगतिवाद उनको पूर्णरूपेण अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सका। क्योंकि कुछ समय के पश्चात् 'उत्तरा' काव्य की रचना करके वे आध्यात्मिक जगत् की ओर उन्मुख हो गये—

हैं मासपेशियो में, उसके दृढ कोमलता,
सयोग अवयवो में अश्लथ उसके उरोज।
कृत्रिम रति की है नही, हृदय में आकुलता,
उद्दीप्त न करता उसे भाव-कल्पित मनोज।

छायावादी पन्त में भाव-कल्पित मनोज की उपासना थी। आज प्रौढता की ओर बढ़ते हुए उनके काव्य में किस प्रकार रंगीन कल्पना-चुम्बित भावुकता के स्थान पर एक स्वस्थ पौरुषमय भावुकता का समावेश हो रहा है, उसे देखिए—

ज्ञान नही है, तर्क नही है, कला न भावविवेचन ,
जन हैं, जग है क्षुधा, काम, इच्छाएं जीवन-साधन ।
रूढि-रीतियो के प्रचलित पथ, जाति-पांति के बन्धन ,
नियत कर्म है, नियत कर्मफल, जीवन-चक्र सनातन ।

अब भी यही धारणा है—

मनुष्यत्व के मूलतत्त्व, ग्रामो में ही अन्तर्हित ।
उपादान भावी सस्कृति के, भरे यहाँ हैं अविकृत ।।

बापू !

बापू ! तुम पर आज लगे जग के लोचन ।
तुम खोल नही जाओगे, मानव के बन्धन ?

स्वर्णकिरण—इस काव्य-संग्रह में पन्तजी ने प्रकृति और जीवन के प्रति अपनी आध्यात्मिक भावना को अभिव्यक्त किया है। कुछ कविताओं में वेद और उपनिषदो की भावनाओ का समावेश है तो कुछ एक में वेद-मन्त्रों का भावात्मक छायानुवाद। कुछ कविताओ में ऐतिहासिक घटनाओ के आध्यात्मिक रूप का भी निर्देश किया गया है। उदाहरण के रूप में 'अशोकवन' शीर्षक कविता में सीता को भूचेतना, राम को स्वर्ग-चेतना तथा रावण को अवचेतना का प्रतीक माना गया है। कुछ कविताएँ अवचेतन और उपचेतन की उलटवांसियों के रूप में प्राप्त होती हैं। 'स्वर्णकिरण' की कविताओं में चेतनवाद के साथ-साथ मातृवाद का भी संपुट है। 'सर्वोदय' शीर्षक कविता में नवचेतनात्मक मानववाद का रूप प्रदर्शित किया गया है। देखिए—

भूरचना का भूतिपादयुग हुआ विश्व-इतिहास में उदित।
सहिष्णुता-सद्भाव शान्ति के हो गत संस्कृत धर्म-समन्वित ॥
वृथा पूर्व पश्चिम का दिग्भ्रम मानवता को करे न खण्डित।
बहिर्नयन विज्ञान हो महत् अन्तर्दृष्टि ज्ञान से योजित ॥

स्वर्णधूलि—इस काव्य-संग्रह में कविताएँ और गीत हैं। अधिक कविताओं में सामाजिक भावना को पुष्ट किया गया है। कुछ कविताओं में उच्च विचारों को व्यक्त किया है। 'पतिता' शीर्षक कविता में नारी की आत्मिक पवित्रता को ही उसकी शारीरिक पवित्रता का मूल माना है। इसकी काव्यशोभा अत्यन्त परिष्कृत रूप में प्रस्तुत हुई है।

उत्तरा—इस काव्य-संग्रह में कुछ कविताएँ तो 'स्वर्णधूलि' के समान ही हैं, और कुछेक में 'स्वर्णकिरण' के समान प्रकृति और जीवन के प्रति आध्यात्मिक आकर्षण का समावेश हुआ है। कुछेक कविताओं का सम्बन्ध पृथ्वी और युग-जीवन से है। कुछ प्रकृति से सम्बन्धित हैं और कुछ मे विरह-भावना भरी हुई है। कुछ में प्रार्थना के गीत हैं, जिनमें आध्यात्मिक भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

सर्वाङ्गीण आलोचना तथा महत्त्व

छायावाद का जन्म और पन्तजी का कार्य—भारतेन्दु-काल मे सुधारात्मक दृष्टिकोण हिन्दी-काव्य में आया और वह भारतेन्दुजी के साथ ही समाप्त हो गया। फिर द्विवेदी-युग में रीतिकालीन शृङ्गारिक कविता का तीव्र विरोध हुआ और नैतिकता की स्थापना की गई। सभी कवियों को नैतिक दृष्टिकोण बनाना पडा, नैतिकता की सीमा में बंधकर लिखने को विवश होना पडा। कुछ कवियों ने नैतिकता का वाह्य विरोध तो न किया परन्तु अपने 'प्रेमभाव' का त्याग कर सकना भी उनके लिए कठिन हो गया। बस, इसी उद्देश्य से उन्होंने नवीन भाषा,

भाव और शैली को लेकर एकान्त में प्रकृति से सम्बन्ध स्थापित कर अपनी भावनाएं व्यक्त कीं। पहले तो इस नवीनता का घोर विरोध हुआ, परन्तु प्रसाद, निराला, पन्त तथा महादेवी वर्मा जैसे महाकवियो के व्यक्तित्व के आगे वे न ठहर सके। इनकी कविताओं में 'पुराने मिलन' की तड़प न देखकर केवल 'छाया' देखने मात्र से इन कविताओं का नाम 'छायावाद' पड़ गया।

यद्यपि छायावाद का प्रारम्भ तो प्रसादजी के 'झरना' काव्य से ही हो चुका था, तथापि इन कवियों की नवीन शैली, कल्पना तथा भावनाओं ने उसे अधिक ग्राह्य बना दिया। पन्तजी ने प्रकृति के अंचल में बैठकर अनुपम प्रगति पैदा कर दी। उनके लिए प्रकृति मानो एक खुला 'ग्रन्थ' बन गई और उन्होने उसे छायावाद की पुट देकर अधिक चमत्कारी बना दिया।

पन्तजी का प्रकृति-प्रेम तथा प्रकृति-चित्रण

पन्तजी का जन्म अलमोड़ा जिला के कूर्माञ्चल प्रदेश में हुआ, जो प्रकृति का अत्यन्त रमणीय प्रांगण है। मातृ-वियोग से पन्तजी एकान्तवासी तथा प्रकृति-विनोदी बन गये; प्रकृति की सुषमाओं के दृश्य देखते-देखते उन्हीं के बन गये। वीणा, ग्राम्या, पल्लव—ये तीनो रचनाएं 'प्रकृति-प्रेम' को ही घोषित कर रही हैं। पन्तजी ने स्वयं लिखा है, "मेरी कविता को प्रकृति से ही प्रेरणा मिली है, उन रमणीय पर्वतमालाओं ने मेरी कविता में चिन्तन की गति भर दी है।" पन्तजी प्रकृति के सौंदर्य पर न्योछावर हैं, अत्यन्त मुग्ध हैं। वे कहते हैं—

छोड द्रुमो की मृदु छाया,
तोड प्रकृति से भी माया।
वाले ! तेरे वाल-जाल में,
कैसे उलझा दूं लोचन।

कवि को प्रकृति में अज्ञात आकर्षण है। यद्यपि पन्तजी पर अंग्रेजी के शैले, वर्ड्सवर्थ आदि कवियों का प्रभाव पडा है, फिर भी उनसे प्रेरणा ही ली है, अपनी शैली का परित्याग नहीं किया है।

प्रकृति ने पन्त को विश्व और जीवन के प्रति एक गम्भीर भावना देकर 'चिन्तक' बना दिया है। वह प्रकृति के द्वारा अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। स्वय कवि कह रहा है—"मैं रहस्यवादी नहीं, अपितु एक सच्चा प्रकृति-प्रेमी कवि हूँ।" कवि की धारणा है कि उसे तीव्रता भी प्रकृति से ही मिली है, जिसके द्वारा प्रकृति-चित्रण में उसे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है—

पावस ऋतु थी—पर्वत-प्रदेश,
पल-पल परिवर्तित प्रकृति-वेश।
मेखलाकार पर्वत अपार,
अपने सहस्र दृग-सुमन फाड।
अवलोक रहा है बार-बार,
नीचे जल में निज महाकार।

कवि प्रकृति के माध्यम से अपनी भावनाएं प्रकट करता है, इसलिए उसकी प्रकृति के साथ घनिष्ठ मैत्री है। वह कहता है—

तडित-सा सुमुखी, तुम्हारा ध्यान,
प्रभा के पलक मार उर चीर।
गूढ गर्जन कर जब गम्भीर,
मुझे करता है अधिक अधीर।

कवि ने प्रकृति को नारी के रूप में देखा है परन्तु वह प्रकृति के आगे नारी को अपना नहीं सके। कहीं-कहीं कवि की रचना नितान्त अलकार-शून्य है। देखिए—

वासो का झुरमुट,
सध्या का झुटपुट।
हैं चहक रही चिडियाँ,
टी-वी-टी टुट टुट।

पन्तजी ने प्रकृति को कोमल, स्निग्ध भावना के अतिरिक्त दूसरे रूप देखा तक नहीं। प्रकृति-प्रेम उनके आत्म-जगत् की वस्तु वन गया है नसे वे छोड नहीं सकते। वाद में कवि कृषक तथा मजदूरो का प्रतिनधित्व करने लगा है, तव भी उसकी प्रेयसी प्रकृति मनोहर छटा वरसा ही है। 'कवि प्रकृति में, प्रकृति कवि में' ओतप्रोत हो गये हैं।

दार्शनिक अनुभूतियाँ

पहले हम कह चुके हैं कि पन्तजी पर स्वामी रामतीर्थ और विवेकानन्द के भारतीय दार्शनिक विचारों का भी प्रभाव पडा है, इसलिए उन्होंने जगत् को नित्यानित्य और सारासार रूप में देखा। फिर उनमें, विश्व में व्याप्त एक महाशक्ति के दर्शन की लालसा पैदा हुई। वे लिखते हैं—

एक ही तो असीम उल्लास,
विश्व में पाता विविधाभास।
तरल जलनिधि में हरित विलास,
शान्त अम्वर में नील विकास।

कवि की कल्पनाएं वेदनापूर्ण थीं, उनमें अनुभूति थी। इसी ने कवि को प्रकृति के प्रति चिन्तनशील वना दिया था। प्रकृति की व्यापक शक्ति पन्तजी को अपनी ओर आकर्षित करती है तो वे वोल उठते हैं—

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब ससार,
चकित रहता शिशु-सा नादान।

कवि को प्रकृति में अज्ञात आकर्षण है। यद्यपि पन्तजी पर अंग्रेजी के शैले, वर्ड्सवर्थ आदि कवियों का प्रभाव पड़ा है, फिर भी उनसे प्रेरणा ही ली है, अपनी शैली का परित्याग नहीं किया है।

प्रकृति ने पन्त को विश्व और जीवन के प्रति एक गम्भीर भावना देकर 'चिन्तक' बना दिया है। वह प्रकृति के द्वारा अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। स्वयं कवि कह रहा है—"मैं रहस्यवादी नहीं, अपितु एक सच्चा प्रकृति-प्रेमी कवि हूँ।" कवि की धारणा है कि उसे तीव्रता भी प्रकृति से ही मिली है, जिसके द्वारा प्रकृति-चित्रण में उसे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है—

पावस ऋतु थी—पर्वत-प्रदेश,
पल-पल परिवर्तित प्रकृति-वेश।
मेखलाकार पर्वत अपार,
अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़।
अवलोक रहा है बार-बार,
नीचे जल में निज महाकार।

कवि प्रकृति के माध्यम से अपनी भावनाएँ प्रकट करता है, इसलिए उसकी प्रकृति के साथ घनिष्ठ मैत्री है। वह कहता है—

तड़ित-सा सुमुखी, तुम्हारा ध्यान,
प्रभा के पलक मार उर चीर।
गूढ़ गर्जन कर जब गम्भीर,
मुझे करता है अधिक अधीर।

कवि ने प्रकृति को नारी के रूप में देखा है परन्तु वह प्रकृति के आगे नारी को अपना नहीं सके। कहीं-कहीं कवि की रचना नितान्त अलंकार-शून्य है। देखिए—

बासो का झुरमुट,
सन्ध्या का झुटपुट।
हैं चहक रही चिड़ियाँ,
टी-वी-टी टुट टुट।

पन्तजी ने प्रकृति को कोमल, स्निग्ध भावना के अतिरिक्त दूसरे रूप में देखा तक नहीं। प्रकृति-प्रेम उनके आत्म-जगत् की वस्तु बन गया है जिसे वे छोड नहीं सकते। बाद में कवि कृषक तथा मजदूरो का प्रतिनिधित्व करने लगा है, तब भी उसकी प्रेयसी प्रकृति मनोहर छटा बरसा रही है। 'कवि प्रकृति में, प्रकृति कवि में' ओतप्रोत हो गये हैं।

दार्शनिक अनुभूतियाँ

पहले हम कह चुके हैं कि पन्तजी पर स्वामी रामतीर्थ और विवेकानन्द के भारतीय दार्शनिक विचारों का भी प्रभाव पड़ा है, इसलिए उन्होंने जगत् को नित्यानित्य और सारासार रूप में देखा। फिर उनमें, विश्व में व्याप्त एक महाशक्ति के दर्शन की लालसा पैदा हुई। वे लिखते हैं—

एक ही तो असीम उल्लास,
विश्व में पाता विविधाभास।
तरल जलनिधि में हरित विलास,
शान्त अम्बर में नील विकास।

कवि की कल्पनाएं वेदनापूर्ण थीं, उनमें अनुभूति थी। इसी ने कवि को प्रकृति के प्रति चिन्तनशील बना दिया था। प्रकृति की व्यापक शक्ति पन्तजी को अपनी ओर आकर्षित करती है तो वे बोल उठते हैं—

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार,
चकित रहता शिशु-सा नादान।

विश्व के पलकों पर सुकुमार,
विचरते हैं जब स्वप्न अजान।
न जाने नक्षत्रों से मौन,
निमन्त्रण देता मुझको कौन ?

प्रकृति के माध्यम के साथ ही कवि में तीव्र अनुभूति भी पैदा हो गई है जो कवि को चिरतनशील बनाती रहेगी। 'युगान्त' में पन्तजी के दृष्टि-कोण में अपूर्व क्रांति का आविर्भाव हुआ है और अब पन्तजी का विश्वास शोषितवर्ग की ओर आकृष्ट हुआ है। वे मानवता के पुजारी बन गये हैं और इसीलिए उनकी श्रद्धा 'बापू' के प्रति अगाध हो गई है। पन्तजी ने उन्हें 'भूगोल के देव' कहकर पुकारा है। इस परिवर्तनशील विश्व के आघातों ने पन्तजी को समाजवाद की ओर खींचा है। वे सोच-विचार के बाद लिखते हैं—

मनुष्यत्व का तत्त्व सिखाता, निश्चय हमको गांधीवाद।
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद॥

'गुंजन' की गुंजार अब कवि के कानों में नहीं गूंजती। वह सब के सुख-दुःख का भागी बन गया है। 'युगान्त' में 'मैं सृष्टि रच रहा नवल-नवल' की पुकार वह कर रहा है। वह पुरातन रूढ़िवाद का उपासक नहीं रहा। वह नवीनता लाना चाहता है। इसलिए 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में उसने विद्रोह की भावना प्रदर्शित की है। कवि ने बुद्धा चमार का घर, धोबी का घर आदि कविताओं में निम्नवर्ग का सजीव चित्रण किया है।

'युगवाणी' में कृषकों का कवि बनते ही पन्तजी को संघर्षों ने घेर लिया है। अब वह कल्पना-जगत् से कोसों दूर है। 'पल्लव' के कल्पना-शील, 'गुंजन' के दार्शनिक तथा 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' के शोषितवर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले पन्त में कितना परिवर्तन आ

गया है, यह विचारणीय है। शान्तिप्रिय द्विवेदी लिखते हैं—कोमल भावनाओं का एव नवल कल्पनाओ का कवि, रक्त-मांस-रहित हड्डियो में नवीनता भरने वाला कवि वन गया है। वह तूलिका का नहीं, कुदाली-फावड़े का कवि बन गया है; उसमें वेदना, अनुभूति सभी एकत्र हो गई हैं। पन्तजी यद्यपि संघर्ष के बाद आशावादी बन गये हैं तथापि वे निम्नवर्ग को सुशिक्षित करने पर तुले है, वे राजनीति से दूर हैं, वे तो मानवता की अखण्ड समानता के उपासक हैं।

आज वृहत् सास्कृतिक समस्या, जग के निकट उपस्थित।
खण्ड मनुजता को युग-युग की, होना है नव निर्मित।

कवि भावी समाज के लिए 'नारी का सहयोग' अनिवार्य समझता है और नारी की स्वतन्त्रता के लिए संदेश भी देता है—

योनि नही है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित।
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, रहे न नर पर अवसित।

इस प्रकार कवि प्रत्येक रूप में नवनिर्माण की दुंदुभि बजा रहा है और युग को सदेश दे रहा है—

आज असुकर लगते सुन्दर, प्रिय पीडित शोषित जन।
जीवन के दैत्यो से जर्जर, मानव-मुख हरता मन।

कलात्मक विकास

पन्तजी का स्थान कला की दृष्टि से भी अद्वितीय है। उन्होने इतिवृत्तात्मक कविता का तो विरोध किया ही है, वे अलंकार, छन्द तथा गीति-शैली के विद्रोह में भी सफल हुए हैं। प्रकृति के चित्र खींचने में पन्तजी की कला स्थिर एव सिद्ध है। वे लिखते हैं—

उस निर्जन टीले पर,
दोनो चिल-बिल।
एक दूसरे से मिल,
स्त्रियो-से हैं खड़े।

इस प्रकार 'नौका-विहार' आदि कविताओं में अस्थिर चित्रण है हिन्दी-कवियों में प्राय दुर्लभ है। शब्दविन्यास मनोहर है, मनोवैज्ञानिक और चिन्तन के आधार पर उनका पदविन्यास शक्तिमान् है।

अविदित भावाकुल भाषा-सी, पटी-कटी नव कविता-सी।

इस रचना में कला की व्यजना है, मात्रिक छन्दों का प्रयोग हुआ है, परन्तु सगीतात्मक पद्यों में वह बधन भी दूर हो गया है। भाषा विदेशी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है, परन्तु समाज के सम्पर्क में आ ही वे शब्द भी छूट गये हैं। कवि का भाषा पर अधिकार हो गया। 'युगवाणी' में आते ही पल्लव, ग्रन्थि और गुजन की भाषा, भाव कल्पना की कोमलता सहसा कठोरता में परिवर्तित हो गई है। कवि परिवर्तन आते ही उसकी कला में भी परिवर्तन आ गया है और उ अपनी भावना तथा कला को सुन्दर शब्दो में इस प्रकार व्यक्त किया है

अलभ है इष्टजात अनमोल।
साधना ही जीवन का मोल।

श्रीमती महादेवी वर्मा

परिचय

उत्तर-प्रदेशीय जिला फर्रुखाबाद के निवासी श्री गोविन्दप्रसादजी वर्मा की सुपुत्री महादेवी का जन्म सं० १९६४ में हुआ। अभी इनकी आयु केवल ९ वर्ष की थी कि सं० १९७३ में डाक्टर स्वरूपनारायण वर्मा के साथ इन का विवाह कर दिया गया। इन्दौर में इनकी प्रारम्भिक शिक्षा हुई और फिर निरन्तर घोर परिश्रम करते हुए आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत की एम० ए० परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली। विद्या-संबंधी सफलता इनके पूर्वजन्म के संस्कारों तथा दृढ़ अध्यवसायों का ही परिणाम कहा जा सकता है। आपकी जन्मसिद्ध कवित्वप्रतिभा की विशेषता को निस्सदेह आपके भव्य संस्कारों की जयन्ती ही कहना चाहिए। दार्शनिकता से रुचि एवं प्रकृति तथा रहस्यवाद के जटिल एवं पावन पथ का प्रदर्शन जो आपके काव्य में प्राप्त होता है, जन्मान्तरीय संस्कारों की घोषणा करता है।

आपने कुछ समय के लिए 'चाँद' (मासिक पत्रिका) की सम्पादिका रहकर इस क्षेत्र में भी अद्वितीय सफलता प्राप्त की। तदनन्तर आपको 'प्रयाग-महिला विद्यापीठ' के आचार्यापद पर विभूषित किया गया। यहाँ रहकर आपने महिला-जगत् की जो सेवा की है वह निस्सदेह प्रशंसनीय है। आपके पवित्र एवं सहानुभूतिपूर्ण सहयोग से अनेक महिलाएँ विदुषी बनी हैं, जो अनेक स्थानों पर आपके पवित्र विचारों का प्रसार कर रही हैं। अनेक निराश्रित महिलाओं को किसी-न-किसी शिल्प में शिक्षित

कर आपने स्वावलम्बी बना दिया है। इस प्रकार आपके पावन हृदय से बहते हुए करुणा-स्रोत में स्नान कर कई अमंगलाएँ मगला की मूर्ति बन गई हैं। आपकी योग्यता की सर्वत्र ख्याति है। आपके विद्यापीठ की 'विद्याविनोदिनी' परीक्षा प्राय सभी भारत के विश्वविद्यालयों द्वारा 'मैट्रिक' समकक्ष, 'विदुषी' एफ० ए० समकक्ष तथा 'सरस्वती' बी० ए० समकक्ष स्वीकृत हैं; आपकी परीक्षाओं की मान्यता केवल आपके विद्वत्तापूर्ण व्यक्तित्व एव हिन्दी-साहित्य की प्रतिभापूर्ण पुनीत सेवा का ही परिणाम है। सच तो यह है कि महादेवी वर्मा का 'प्रयाग-महिला-विद्यापीठ' स्वतन्त्र भारत में महिलाओं की एकमात्र यूनिवर्सिटी है, जिसमें केवल महिलाएँ विद्या प्राप्त कर सकती हैं और समस्त भारत की महिलाएँ परीक्षा भी दे सकती हैं। पुरुषों को इनकी परीक्षाओं में प्रविष्ट होने का अधिकार नहीं है। जिस प्रकार इनका कवित्व मानवता का प्रतीक है उसी प्रकार इनकी शिक्षा भी महिला-मात्र के लिए है। एकमात्र यह विशेषता इनके उद्दाम व्यक्तित्व की परिचायिका है।

आपने 'साहित्य-ससद्' संस्था द्वारा हिन्दी-लेखकों की प्रशसनीय सहायता की है। आपने 'नीरजा' लिखकर ५००) रु० का सेक्सरिया पुरस्कार प्राप्त किया, परन्तु आपकी उदारता ने यह धनराशि 'प्रयाग-महिला-विद्यापीठ' को भेंट कर दी। आपने 'यामा' नामक महाकाव्य लिखकर 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' से १२००) रु० का 'मगलाप्रसाद पारितोषिक' भी प्राप्त किया।

कवित्व

'मीरा' की मधुरता तथा वेदना महादेवी के प्रत्येक पद्य में प्रतिबिम्बित है। इसीलिए महादेवी को मीरा का अवतार कहा जाता है। नि·स·न्देह मीरा और महादेवी की परिस्थितियों में, शिक्षा में और वातावरण में महान् अन्तर है। मीरा प्राचीन पद्धति की जटिल शृङ्खलाओं में बँधी

हुई एव अनेक क्लेशों की परम्पराओं को सहन करती हुई 'उन्मुक्त' होती है और 'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई' यह कहती हुई अमर हो जाती है। किन्तु महादेवी वर्तमान पद्धति से सुशिक्षित, स्वतन्त्र एव अनुकूल वातावरण में साँस लेते हुए भी 'मैं नीर भरी दुख की बदली', कहकर अपनी अन्तर्वेदना का प्रसार कर रही है। मीरा, चातक की बोली सुन कर 'पपीहा रे तू पिय की बानी ना बोल' तड़प उठती है और हा-हा करती है, हाथ जोड़े मानो मिन्नतें कर रही है और कहती जाती है, 'तू पिय की बानी ना बोल' परन्तु महादेवी ने जब 'पिय पिय' की पुकार सुनी तो इतनी आघातित हुई कि कह उठी, "मैं आज चुपा आई चातक"। मीरा सिसकती है, तडपती है, आहें भरती है और बलाएँ लेती हैं, परन्तु महादेवी की वेदना बाहर के रूपों में स्फुटित नहीं होती, वह गीली लकडी की तरह 'विरहिन ओदी लाकरी, सपचे और धुंधआय'—सपचती और धुआँ देती है अर्थात् कराहती है और आहें भरती है। इसकी वेदना इतनी भयंकर है कि घुन की तरह अन्दर-ही-अन्दर खाये जा रही है। इस प्रकार दोनों में समता है। दोनों अपने-अपने 'प्रियतम' की स्मृतियो में व्यथित हो रही हैं, अन्तर इतना ही है कि मीरा स्पष्टरूप में 'मैं तो दरद दिवाणी, मेरा दरद न जाणे कोय' चिल्ला रही है और महादेवी—

पर शेष नही होगी, यह मेरे प्राणो की पीडा।
तुम को पीडा में ढूँढा, तुम में ढूँढूंगी पीडा।

कहती हुई अत्यन्त पीड़ित हो रही है। मीरा अपने प्रियतम की राह में आँखें बिछाये बैठी है 'जोगिया जी निसदिन जोहूँ बाट' कहकर उसे मानो मना रही है "जोगी मत जा, मत जा, मत जा, पाँइ परूँ मैं चेरी तेरी हौं" कभी अपने मन में शून्यता अनुभव करती हुई कहती है—"पिय बिन सूनो छं म्हारो देस"। इन सब भावनाओं में प्रियतम के लिए कितनी वेदना भरी हुई है। परन्तु महादेवी प्रियतम के विरह में दीवानी नहीं, सूनी नहीं और उत्तप्त नहीं प्रत्युत एक वेदना-भरी आह में भी उसे प्रियतम

की आशा है। वह कहती है—

विरह का जल जात जीवन विरह का जलजात।
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास।
अश्रु चुनता दिवस इसके अश्रु गिनती रात।
मुस्काता संकेत-भरा नभ अलि ! क्या प्रिय आने वाले हैं ?

और भी देखिए—

रजत करो की मृदुल तूलिका से ले तुहिन-बिन्दु-सुकुमार,
कलियो पर जब आँक रहा था, करुण कथा अपनी संसार।
तरल हृदय की उच्छ्वासें जब भोले मेघ लुटा जाते,
अंधकार दिन की चोटो पर अंजन बरसाने आते।
मधु की बूंदो में छलके जब तारक लोको के शुचि फूल,
विधुर हृदय के मृदु कम्पन-सा सिहर उठा वह नीरव कूल।
मूक प्रणय से, मधुर व्यथा से, स्वप्नलोक से आवाहन,
वे आये चुपचाप सुनाने, तब मधुमय मुरली की तान।
चल-चितवन के दूत सुना, उनके पल में रहस्य की बात,
मेरे निर्निमेष पलको में, मचा गये क्या-क्या उत्पात।
जीवन है उन्माद तभी से, निधियाँ प्राणो के छाले,
माँग रहा है विपुल वेदना के मन प्याले पर प्याले।
पीडा का साम्राज्य बस गया, उस दिन दूर क्षितिज के पार,
मिटना था निर्वाण जहाँ, नीरव रोदन था पहरेदार।
कैसे कहती हो सपना अलि ! उस मूक मिलन की बात,
भरे हुए अब तक फूलो में, मेरे आँसू उनके हास।

इस प्रकार महादेवी के विरह में आन्तरिक व्यथा चुलबुला रही है, एक कसक, एक टीस अन्दर-ही-अन्दर उठ-उठ कर तड़पा रही है। और बार बार प्रत्येक आह में 'माग रहा है विपुल वेदना के मन प्याले पर

प्याले' मन वेदना की पुकार कर रहा है। इतना मर्माहत हृदय जिसमें व्यथा स्वयं विकल हो रही है, प्रियतम की याद में स्वयं हृदयसात् हो रहा है। कितना कारुणिक चित्र है !

मीरा कभी-कभी सयोग शृङ्गार में उन्मत्त होकर गा उठती है—
"मैं गिरधर सग राती, सैया", "पग घुघरू बाँध मीरा नाची रे",
"डारी गयो मनमोहन पासी" और इसी प्रकार—

म्हारो ओलगिया घर आया जी।
तन की ताप मिटी सुख पाया, हिल-मिल मगल गाया जी।
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया, यो मेरे आनँद आया जी॥
मगन भई मिलि प्रभु अपणासूं, भौ का दरद मिटाया जी।
चन्दकू देखि कमोदणि फूलें, हरखि भया मेरी काया जी।
रग-रग सीतल भई मेरी सजनी, हरि मेरे महल सिधाया जी॥
सब भगतन का कारज कीन्हा, सोई प्रभु मैं पाया जी।
मीरा विरहणि सीतल होई, दुख दुन्द दूरि न्हसाया जी॥
मैं तो राजी भई मेरे मन में, मोही पिया मिले इक छिन में।
पिया मिल्या मोहि किरपा कीन्ही, दीदार दिखाया हरि ने।
सतगुरु सबद लखाया असरी, ध्यान लगाया धुन में।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, मगन भई मेरे मन में॥

अब आनन्द-विभोर होने पर जरा महादेवी की भी मस्ती देखिए—

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसन्त रजनी !
तारकमय नव वेणी-बन्धन,
शीशफूल कर शशि का नूतन,
रश्मिवलय सित घन अवगुण्ठन।
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे,
चितवन से अपनी।
पुलकित आ, वसन्त रजनी !

इस प्रकार—

भूलती थी मैं सीखे राग, विछलते थे कर वारवार,
तुम्हे तब आता था करुणेश ! उन्ही मेरी भूलो पर प्यार।
गये तब से कितने युग बीत, हुए कितने दीपक निर्वाण,
नही पर मैंने पाया सीख, तुम्हारा-सा मनमोहन गान।
नही अब गाया जाता देव ! थकी उँगली हैं, ढीले तार,
विश्व वीणा में अपनी आज, मिला लो यह अस्फुट झकार।

महादेवी मीरा का अवतार लेकर मानो हिन्दी-साहित्य में अवतीर्ण हुई हैं। वे युगयुगान्तरों तक बडी श्रद्धा से स्मरण की जायँगी। महादेवी निस्सदेह कवित्व की प्रतिमा हैं।

रचनाएँ

महादेवी की रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

(१) नीहार, (२) रश्मि, (३) नीरजा, (४) सान्ध्यगीत, (५) दीपशिखा, (६) यामा, (७) अतीत के चलचित्र, (८) श्रृंखला की कड़ियां, (९) हिन्दी का विवेचनात्मक गद्य।

महादेवी कवयित्री ही नहीं श्रेष्ठ चित्रकार भी हैं आपके चित्रों तथा कविताओं में एक प्रकार की जहां मार्मिक अनुभूति पाई जाती है, वहां महिलोचित सात्त्विकता भी दृष्टिगोचर होती है। इससे इनके काव्य की कमनीयता एव भावुकता भी बढ़ गई है।

उन हीरक के तारो को, कर चूर्ण बनाया प्याला।
पीडा का सार मिलाकर, प्राणो का आसव डाला।
मलयानिल के झोको में, अपना उपहार लपेटे।
मैं सूने तट पर आई, विरह-उद्गार समेटे।

महादेवी ने अपने छायावादी काव्य में प्रकृति के बाह्य व्यक्त सौंदर्य के प्रतीकों को नहीं लिया, उनकी अव्यक्त गतियों अथवा छायाओं का सकलन

किया है। इससे कविताओं में वेदना और रहस्यात्मकता की धारा प्रवाहित हो उठी है। आपकी कविताओ में भाव-चित्रण की प्रधानता पाई जाती है। देखिए—

वीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ।
शलभ जिसके प्राण में, वह निठुर दीपक हूँ।
फूल को उर में छिपाये, विकल बुलबुल हूँ।
एक होकर दूर तन से, छाँह वह चल हूँ।
दूर तुम से हूँ, अखण्ड सुहागिनी भी हूँ।

अर्थात् तुम बीनरूप, मैं उससे उत्थित रागिनी हूँ, नेत्रों में तुम बादल रूप हो, मैं 'तृषित चातक' हूँ। विरहरूपी दीपक में प्राणरूपी शलभ जल रहे हैं, मैं उस बुलबुल के समान हूँ, जो फूल पर बैठी हो और उसी के लिए तड़प भी रही हो। मैं उस चंचल छाया के समान हूँ, जो शरीर से सबधित होने पर भी उससे दूर ही दूर रहती है। मैं शरीरधारिणी होने के कारण तुम से दूर हो रही हूँ, परन्तु फिर भी आत्मा के रूप से तुम्हारी ही हूँ, इसलिए 'सुहागिनी' भी हूँ। इस प्रकार आत्मा और परमात्मा के अद्वैतवाद को कैसे सुन्दर रूपकों में व्यक्त किया गया है। जैसे वीणा के तार और उस पर गाई जाने वाली रागिनी में अभेद है, चातक और बादल में परस्पर प्रेमाकर्षण है, शलभ और दीपक में स्नेह की स्थिरता है, फूल और बुलबुल में सहज अनुराग है, शरीर और उसकी छाया में जैसे अभिन्नता है, एकता है उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा में भी अद्वैतता है। केवल भिन्नता की प्रतीति इसलिए होती है कि आत्मा शरीर-धारिणी है। इससे पृथक् होते ही आत्मा और परमात्मा की भेद-प्रतीति मिटकर अद्वैत हो जायगी। इन शब्दो में 'रहस्यवाद' का कितना सुन्दर आभास पाया जाता है।

नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी।
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी।
तार भी आघात भी झंकार की गति भी।
पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर-सी स्मृति भी।
अधर भी हूँ और स्मित की चांदनी भी हूँ।

नाश एव विकास का क्रम हूँ अर्थात् जैसे प्रलय के बाद उत्पत्ति और उत्पत्ति के पश्चात् प्रलय स्वाभाविक है और आसक्ति के अन्धकार के पश्चात् विरक्तिरूपी प्रकाश स्वाभाविक होता है इसी प्रकार देहधारी लौकिक आत्मा, अलौकिक में मिलकर तद्रूप हो जाती है, वहाँ अभेद हो जाता है, उस समय 'तार, आघात, झंकार' में तथा 'पात्र, मधु, मधुप' और उसकी स्मृति में नितान्त अभेदता हो जाती है। 'अधर और उसकी मुस्कान में भी भिन्नता नहीं रहती। जब जीवात्मा अपार ब्रह्म में लीन हो जाता है उसको भिन्न प्रतीति इसी प्रकार नहीं होती जिस प्रकार अग्नि में पड़े हुए लोहे की अग्निमय दशा हो जाती है, अथवा पानी में घुला हुआ नमक जलमय हो जाता है। जीवात्मा ब्रह्म में मिलकर 'ब्रह्ममय' हो जाता है। 'रहस्यवाद' का इससे सुन्दर चित्र और कहाँ मिल सकेगा?

'प्रसाद के आँसू', निराला की 'स्मृति'-जैसी एक भाव-कल्पना तथा 'पल्लव'-जैसा सौन्दर्यान्वेषण महादेवी में नहीं है, किन्तु वेदना का विन्यास और उसकी बहुरूपता एव विवरणपूर्ण चित्रण जैसा महादेवी ने किया है, वैसा उपर्युक्त तीनों कवियों में नहीं देखा जा सका। पढ़िए—

जाग जाग सुकेशिनी री,
अनिल ने आ मृदुल हौले, शिथिल वेणी-बन्ध खोले।
पर न तेरे पलक डोले,
बिखरती अलके झरे जाते सुमन वर वेणिनी री।
छाँह में अस्तित्व खोये, अश्रु के सब रग धोये॥
मद प्रेम दीपक सजोए,

पथ किसका देखती तू, अलस स्वप्न निवेषिणी री ।।
जाग जाग सुकेशिनी री !!!

महादेवी की कविताओं में छायावाद

छायावाद में शैलीगत तथा वर्ण्यविषय अथवा वस्तुगत, यह दो प्रकार की विशेषताएँ होती हैं. और ये दोनो विशेषताएँ महादेवी की कविताओं में पाई जाती हैं। छायावादी कवि या तो विश्व के अणु-अणु में अपने प्रियतम की झाँकी देखता है या प्रकृति के पदार्थमात्र में उसी का आभास देख-देख कर उसीमें तन्मय हो जाता है। महादेवी की कविताओ में भी उसी प्रियतम का साक्षात् दर्शन हो रहा है, सृष्टि के अणु-अणु में उसका अस्तित्व प्रतिभासित हो रहा है। छायावाद की शैली प्रायः प्रतीकात्मक लाक्षणिक, अभिव्यजनात्मक और चित्रमयी होती है।

छायावाद की विशेषताओं का वर्गीकरण

(१) भावमयता—द्विवेदी-युग में इतिवृत्तात्मकता की प्रचुरता थी, उसी की प्रतिक्रिया का रूप छायावाद है। इसीलिए इसमें स्थूल रूप की अपेक्षा सूक्ष्मरूप का भावात्मक वर्णन स्वीकार किया जाता है। सूक्ष्म भावो का चित्रण ही इसकी प्रथम विशेषता है। महादेवी की कविताओं में भावों की अन्त स्पर्शिता, सूक्ष्मता, गम्भीरता और विशदता अपने पूर्ण रूप में उपलब्ध होती है।

(२) प्रकृति—कलाकार प्रकृति को अचेतन नहीं समझता, वह उसे अपने समान चेतन समझता हुआ मानवीय भावनाओ का रंग देकर चित्रित करता हैं। इसीलिए उसके सुख-दुःख को, अपना सुख दुःख अनुभव करता है। महादेवी की कविताओ में और प्रकृति में मानवीय व्यापारों का सुन्दर आरोप हुआ है इसीलिए महादेवी लिखती हैं—"छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के सम्बन्धों में प्राण डाल दिये हैं जो बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप में चले आते थे।"

(३) वैयक्तिक अनुभूति की प्रधानता—यह भी छायावाद की

एक विशेषता है। मीरा की तरह महादेवी की कविताओं में भी आपका व्यक्तित्व प्रतीत हो रहा है। छायावाद में शृङ्गार-भावना भी एक नये रूप में प्राप्त होती है। कहीं प्रकृति में सुन्दरी का आरोप करके उसकी लीलाओं का वर्णन किया जाता है, और कहीं ललित कल्पनाओं के द्वारा कलाकार अपनी भावनाओं को ही मूर्तरूप देकर उसके सौन्दर्य और शृङ्गार का वर्णन करता है। इस प्रकार कल्पित प्रियतम की वास्तविक अनुभूति का वर्णन किया जाता है। रीतिकालीन स्थूल शृङ्गार के कुत्सित वर्णन की प्रतिक्रिया के रूप में यह प्रवृत्ति आरम्भ हुई। इसलिए इसमें पदार्थों के सूक्ष्म एव भावात्मक रूपों के सौन्दर्य तथा शृङ्गार का वर्णन हुआ है। छायावाद ने ससार के सभी पदार्थों के सुन्दर और सूक्ष्म रूपों का अत्यन्त सजीव वर्णन किया है और यही पद्धति महादेवी की कविताओं में पाई जाती है।

(४) रस—महादेवी करुणा की साक्षात् मूर्ति हैं, उनकी रचनाओं में शान्त और शृङ्गार का भी अभाव नहीं है इसलिए शृङ्गार, करुण और शान्त रसों का परिपाक भी छायावाद की एक विशेषता है।

(५) कल्पना—छायावादी कल्पना के लोक में विहार करता है, कभी-कभी वह कल्पना के पखों पर उडता हुआ बहुत ऊपर उठ जाता है। महादेवी की कल्पनाएँ भी सुन्दर, सजीव और अत्यन्त गम्भीर हैं, कहीं-कहीं तो इतनी गम्भीर हो गई हैं कि सहज बोधगम्य भी नहीं रहीं।

(६) प्रतीक-पद्धति—यह भी छायावाद की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है जिसे हम साधारणतया रूपक या उपमान आदि कहते हैं, उसे ही साहित्यिक भाषा में 'प्रतीक' कहते हैं। अथवा जहाँ उपमेयों का वर्णन न करके केवल उपमानों का ही वर्णन किया जाता है जिसे रूपकातिशयोक्ति कहा जाता है वही आधुनिक काव्यों में 'प्रतीक' के नाम से पुकारा जाता है। महादेवी ने भी इस पद्धति को प्रचुर मात्रा में अपनाया है। आनन्द

के लिए 'उषा', प्रफुल्लता के लिए 'मुकुल' और सौन्दर्य-स्निग्धता के लिए 'चांदनी' का प्राय. प्रयोग किया जाता है। महादेवी ने भी ऐसे प्रयोग बहुलता से किये हैं।

(७) **मूर्तामूर्त विधान**—साकार पदार्थ को निराकार रूप में तथा निराकार को साकार रूप में प्रस्तुत करना ही मूर्तामूर्त विधान कहलाता है। यह विशेषता भी महादेवी की रचना में प्रायः पाई जाती है।

(८) **मानवीकरण**—यह भी छायावाद की एक विशेषता है। इसमें प्रकृति को सुन्दर नायिका का रूप दिया जाता है। महादेवी की कविताओं में मानवीकरण की प्रवृत्ति भी अधिक पाई जाती है।

(९) **लाक्षणिक प्रयोगों की भरमार** भी छायावाद की एक विशेषता है, जैसे 'गान का सिसकना' 'वेदना का कसकना', 'अभिलाषा का करवट लेना' आदि लाक्षणिक प्रयोग हैं। महादेवी ने इनका भी पर्याप्त रूप से प्रयोग किया है।

(१०) **अभिनव छन्दो का प्रयोग** भी छायावाद की एक विशेषता है। इसलिए महादेवी ने भी पुराने छन्दों का प्रयोग न करके नवीन छन्दों का प्रयोग किया है।

(११) आध्यात्मिक प्रियतम को आलम्बन मानकर उसकी अनुभूति की विशेषता भी महादेवी की कविताओं में विशेष रूप से दिखाई देती है। इस पद्धति को छायावाद का आन्तरिक तत्त्व कहा जाय अथवा रहस्यवाद—इनके काव्य में यह पद्धति भी विशेष रूप से पाई जातो है। जैसे—

प्रिय मेरा निशीथ नीरवता में आता चुपचाप।
मेरे निमिषो से भी, नीरव है उसकी पदचाप।

अथवा

क्या पूजन क्या अर्चन रे,
उस असीम का सुन्दर मन्दिर, मेरा लघुतम जीवन रे।

महादेवी के काव्य में भाव, कल्पना एव अनुभूति, इन तीनों का मिश्रण पाया जाता है। कहीं-कहीं अनुभूति और कल्पना कोरी दार्शनिकता के कारण जटिल हो गई है। फिर भी ये दोनों महादेवी के काव्य की मुख्य विशेषताएँ हैं। महादेवी की अनुभूति मीरा के समान गभीर, सत्य और अनन्त है। इसमें माधुर्य और सगीत भी पाया जाता है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि उपर्युक्त सभी विशेषताएँ महादेवी के काव्य में पाई जाती हैं।

महादेवी में करुणा

महादेवी की काव्य-धारा में करुण भावना या वेदना की टीस, अनुभूति की एक प्रधान विशेषता है जो अन्यत्र दुर्लभ है। महादेवी के काव्य में कारुणिक वेदना का अत्यन्त विशद वर्णन है। इनके हृदय में वेदना ऐसी चुभी हुई है, मानों वह हृदय का एक स्थिर भाव बन गई हो। आपको वेदना से प्रेम भी है, करुण को लक्ष्य करके महादेवी लिखती हैं कि 'मेरी रचनाओं का आरम्भ करुण रस से ही हुआ है, सर्वप्रथम मैंने १०० छन्दो में एक करुण कहानी लिखी थी, इसके बाद वह करुणा विकसित हुई।' अब वही करुणा आपकी अधिकाश रचनाओं में चित्रित पाई जाती है। यह करुण भावना उत्तरोत्तर विकसित होती गई है, यह व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर होती गई है। व्यक्तिगत भावनाओं ने विश्वगत करुण भावनाओं का रूप धारण किया है। स्मरण रहे कि महादेवी की करुणा किसी मृत्यु आदि आलम्बनोद्दीपनादि से उद्बुद्ध शोक स्थायी भावात्मक करुणा से सर्वथा भिन्न है। वह तो एक रहस्यवादी की करुणा है जो निसर्गत चली आ रही है। उस अज्ञात प्रभु के विरह में

महादेवी का हृदय उत्तप्त हो रहा है, और वह उसी में लीन हो गई है। वह अपनी विरह-वेदना को स्थायी बनाना चाहती है, उसे इस वेदना में भी अनुपम माधुर्य अनुभव होता है। इसलिए वह कह रही है—

पर शेष नहीं होगी, यह मेरे प्राणों की पीडा,
तुम को पीडा में ढूंढा, तुम में ढूंढूंगी पीडा।

इस प्रकार उसे अपने में और प्रियतम में एक अनिर्वचनीय पीड़ा का ही अनुभव होने लगता है। यह पीड़ा प्रभु के दर्शन का आभासजन्य रूप कहा जाता है; क्योंकि—

इन ललचाई पलकों पर, पहरा था जब व्रीडा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला, उस चितवन ने पीडा का।

तभी से महादेवी उसके विरह में रो रही है, यहां तक कि उसके आंसू समाप्त-से हो रहे हैं।

उस सोने के सपने को देखे कितने युग बीते।
आंखों के कोश हुए हैं मोती बरसा कर रीते।

क्योंकि यह पीड़ा अपने प्रियतम से ही हुई है, इसलिए वह उसे अधिक मादक बना रही है, और उसी में लीन होना चाहती है। कहती है—

तुम अमर प्रतीक्षा हो मैं पग विरह-पथिक का धीमा,
आते जाते मिट जाऊं, पाऊं न पन्थ की सीमा।

इतना होते हुए भी उसका प्रियतम अलक्ष्य है, अज्ञात है और वह स्वय भी नहीं जानती कि वह कैसा है? इसलिए उसकी पीडा सीमा-रहित अर्थात् अनन्त है। वह चाहती है कि प्रियतम के न मिलने पर मैं उस पीड़ा में ही समा जाऊं जिससे उसकी पीड़ा का अन्त हो जायगा। और यह उसे सह्य नहीं है। वह कहती है—

वह सुनहला हास तेरा, अंक उर घनसार-सा,
उड़ जायगा अस्तित्व मेरा .... ।

महादेवी इस पीडा के बदले स्वर्ग का सुख भी नहीं चाहतीं।

क्या अमरो का लोक मिलेगा, तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव अरे ! यह मेरा मिटने का अधिकार।

यद्यपि आपकी करुणा में एक प्रकार का दिव्य सयम है तथापि जैसी गंभीरता आपकी कला में पाई जाती है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। यद्यपि मीरा की विरह-वेदना भी महादेवी के ही समान है तथापि दोनों में पर्याप्त अन्तर है। मीरा की करुण भावना में वैयक्तिक अनुभूति की प्रधानता, सरलता, स्वाभाविकता और सजीवता है, फिर भी किसी निश्चित चिन्तन-पद्धति का अग नहीं है परन्तु महादेवी की करुणा, रहस्यवादिनी करुणा है जिसका उद्भव जीवन के साथ हुआ है।

'विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।'

इसके सम्बन्ध में महादेवी ने स्वय लिखा है कि जीवन के इतिहास में पशुता से पशुता की, कठोरता से कठोरता की, और बुद्धि से बुद्धि की कभी पराजय नहीं हुई है, इसलिए परीक्षित सिद्धान्त की जैसी नई कसोटी हम चाहते थे, वैसी लेकर हमारा ध्वसयुग आया है। इसके ध्वसावशेष में निर्माणकार्य मनुष्यता, करुणा और भावनामूलक विश्वास से ही हो जायगा, यह मैं नहीं भूलना चाहती।

महादेवी की वेदना इसी सिद्धान्त पर आधारित है। उनके काव्य में करुणा या वेदना का जैसा सुन्दर अभिव्यजन हुआ है वैसा अन्य किसी कवयित्री में नहीं पाया जाता। इन्हीं कारणों से महादेवी वर्मा को करुणा की प्रमुख कवयित्री कहा जाता है।

संक्षिप्त आलोचना

यामा—यह महादेवी वर्मा का 'महाकाव्य' माना जाता है। इस पर आपको हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से १२००) रु० का मगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हो चुका है। इसमें नीहार, रश्मि और नीरजा—इन तीन काव्यों का समन्वय है। इसकी भाषा सजीव है। इसने अपनी स्निग्धता

से छायावाद की कर्कशता को ढक लिया है। 'यामा' की प्रधान विशेषता प्रसाद गुण का होना है। इसकी भाषा की कोमलता एवं सुन्दरता इतनी हृदय-ग्राहिणी है कि छायावादी कवियों की कविताओं में बहुत कम पाई जाती है। 'यामा' में छायावाद तो है ही, रहस्यवाद की भी सुन्दर अवतारणा हुई है। परन्तु इसमें साहित्यिक सामन्तिक प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होने के कारण 'आधुनिक कवि' की भूमिका में 'प्रगतिवाद' की उपेक्षा की गई है। वास्तव में जहाँ प्रियतम को 'हीरा' समझा जाय वहाँ अपने आपको भी कम-से-कम 'सुवर्ण' तो समझना ही चाहिए।

हीरक सी वह याद,
बनेगा जीवन सोना।
जल जल तप तप किन्तु,
खरा इसका है होना।

इस हीरे और सोने के जीवन में यदि दरिद्र नारायण की सुधि न रहे तो आश्चर्य ही क्या है? इसी प्रकार प्रगतिवाद की उपेक्षा भी अनुचित क्यों समझी जानी चाहिए? महादेवी के अनुसार "भविष्य में जो प्रगतिवाद की दशा होगी, उसकी कल्पना अभी समीचीन नहीं हो सकती। इतना स्पष्ट है कि यह श्रमिको की वाणी में बोलने वाली कविता मध्यम वर्ग के कण्ठ से उत्पन्न हो रही है। इसे समझने के लिए उसी वर्ग की पृष्ठभूमि चाहिए।" ऐसा प्रतीत होता है कि महादेवी के विचारो में प्रगतिवाद से उन्हें स्वयं निराशा है परन्तु वे समझती हैं कि छायावाद सदा इसी प्रकार सिंहासन पर बैठा रहेगा।

महादेवी की रचनाएँ निस्संदेह अनेक गुणों से गुम्फित हैं, पर जहाँ-तहाँ अशुद्ध भाषा के प्रयोग कुछ खटकते हैं, जैसे—"मैं आज चुपा आई चातक" इसमें 'चुप करा आई' के स्थान में 'चुपा आई' नितान्त अशुद्ध प्रयोग है। इसी प्रकार "झिपझिप आँखें कहती हैं" इसमें 'झपक-झपक'

के स्थान में 'झिपझिप' प्रयोग समीचीन प्रतीत नहीं होता। परन्तु ऐसे प्रयोग 'आटे में नमक' के समान हैं।

नीहार—यह महादेवी की प्रारम्भिक रचनाओं का सग्रह है। इसमें 'सूना देश', 'मेरा राज' और 'उनका प्यार' आदि कविताएँ उल्लेखनीय हैं। 'नीहार' की रचनाएँ वैयक्तिक अनुभूति प्रधान हैं। फिर भी ये कविताएँ भाव-प्रधान होने की अपेक्षा विचार-प्रधान अधिक हैं। इसमें सगीत के तत्त्व भी पाये जाते हैं।

देखिए—

इन ललचाई पलको पर, पहरा जब था व्रीडा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला, उस चितवन ने पीडा का।
उस सोने के सपने को, देखे कितने युग बीते,
आँखो के कोष हुए हैं, मोती बरसा कर रीते।

रश्मि—इस काव्य-सग्रह में चिन्तन-प्रधान कविताएं हैं। कवयित्री ने इनमें जीवन, मृत्यु, जीव, सुख और दु ख आदि पर अनेक विचार प्रकट किये हैं। यद्यपि इनके विषयों में मौलिकता नहीं है तथापि प्रस्तुत करने का ढग सर्वथा मौलिक है।

नीरजा—इस काव्य में चिन्तन और अनुभूति का सुन्दर सामजस्य है। कवयित्री ने इसमें दार्शनिक विचारो की सुन्दर अवतारणा की है। इसमें वेदना और हर्ष से पूर्ण विरह-भावना का समावेश है। इस विरह में अलौकिकता है। इसमें एक विचित्र प्रकार का माधुर्य है। कवयित्री ने इसमें प्राकृतिक उपकरणों का मानवीकरण और उनकी सुन्दरताओं का रोचक वर्णन किया है। पढ़िए—

मर्मर की सुमधुर नूपुर ध्वनि,
अलि-गुजित पद्मो की किंकिणि,
भर पदगति में अलस तरगिणि,

तरल रजत की धार बहा दे
मृदु स्मित से, सजनी,
विहँसती आ वसंत रजनी।

सांध्यगीत—इस संग्रह की कविताओं में कल्पना, अनुभूति तथा चिन्तन का सुन्दर समावेश किया गया है। इन गीतों का ईश्वरीय संयोग और वियोग से सम्बन्ध है। प्रकृति-सम्बन्धी गीतों में भी रहस्यवाद की पुट पाई जाती है। महादेवी सर्वत्र ईश्वर की सत्ता का अनुभव करती हैं, देखिए—

प्रिय साध्य गगन,
मेरा जीवन;
यह क्षितिज बना धुंधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग।
छाया - सी काया वीतराग,
सुधि - भीने स्वप्न रंगीले घन।

दीपशिखा—इसमें महादेवी ने अपनी कला को सुन्दर रूप में अभिव्यक्त किया है। इन गीतों में रहस्यवाद के निम्नलिखित तत्त्व पाये जाते हैं—

(१) परा विद्या की अपार्थिविकता।

(२) वेदान्त का अद्वैतवाद।

(३) लौकिक प्रेम की तीव्रता।

(४) कबीर के दाम्पत्य भाव के समान दाम्पत्य भाव।

(५) सूफीमत की प्रेममयी आत्मानुभूति और आत्मा एवं परमात्मा का चिरकालिक विरह।

(६) प्रकृति के अनेक रूपों में एक सुन्दर व्यक्तित्व का आरोपण।

इनके अतिरिक्त इन गीतों में ऋग्वेद, उपनिषद्, बुद्ध, कबीर, भवभूति और कालिदास आदि की विचारधारा के भी दर्शन हो जाते हैं।

सर्वांगीण आलोचना तथा महत्त्व

महादेवी की कविता में प्रसाद, पन्त और निराला से भिन्न कई विशेषताएँ हैं। प्रसादजी तो नवयुग के कवि माने जाते हैं, उन्होंने नवीन छन्दों में 'प्रेम-पथिक' काव्य लिखा। व्रजभाषा को छोड़कर, खड़ी-बोली को पल्लवित किया है, मानो उन्होंने साहित्य का कलेवर ही बदल दिया हो। निराला जी तो नवनिर्माण के आचार्य ही है। इनकी रचना छन्दो के सीमित बधन में न रह सकी, वह मुक्त होकर विचरण करती रही। पन्तजी ने भी प्रकृति का अद्‌भुत चित्रण किया है, नवगति, नवछन्द आदि सब कुछ नया-ही-नया कर दिया है, परिवर्तन की एक बाढ़-सी पैदा कर दी है। परन्तु महादेवी वर्मा ने कोई ऐसी नवीनता नहीं पैदा की। उन्होंने तो केवल हृदय की गभीर अनुभूतियाँ ही अकित की हैं जो हिन्दी-साहित्य में अन्यत्र नहीं पाई जातीं। पन्तजी की तरह आप शब्दों के लिंगों को बदलने के पक्ष में नहीं हैं, आपने तो कोमल कान्त पदावली में आत्मा-सबंधी विचारधारा का स्रोत ही बहा दिया है। दूसरे छायावादी कवियों से आप में यही भिन्नता है कि आप बहिर्मुखी नहीं, भावपक्ष के साथ ही हृदयपक्ष की प्रबलता की भी उपासिका हैं, जो काव्य में सजीव होकर निखर उठी है।

महादेवी की कविता के मूल स्रोत

महादेवी का जन्म एक सम्पन्न घराने में हुआ, इसलिए उनकी शिक्षा और जीवन का विकास उनकी कविता में चमत्कृत हो गया है। उनकी कविता के मूल स्रोत निम्नलिखित हैं—

(१) समृद्ध घराने में उत्पन्न होने के कारण उन्हें शिक्षा का अभाव नहीं रहा जिससे उनका गम्भीर एव विस्तृत अध्ययन कविता में निखर उठा।

(२) माता का विदुषी, कविताप्रिय तथा कलाप्रिय होना। चित्र-

कविता महादेवी की कविता में संगीत-प्रियता के कारण विशेष चमत्का-रिणी सिद्ध हुई है।

(३) बौद्ध साहित्य का अध्ययन उनके कवित्व में करुणा तथा चिन्तन भर गया है।

(४) निरन्तर सेवा-भाव तथा एकाकी जीवन ने उनको आत्मचिंतन की ओर प्रेरित किया है।

(५) जीवन मे बौद्धभिक्षु के रूप धारण करने पर मानवता के प्रति इतनी भावना जागरित हो गई, और कविता में रहस्यवाद का पूर्ण विकास हो गया।

इन मूल स्रोतों को लेकर महादेवी कविता-क्षेत्र में अवतरित हुई हैं। यद्यपि उन्हे साधना के लिए समय का अभाव है, तथापि आपकी चिन्तन-शील प्रवृत्ति ने कविता में वह चमत्कार पैदा कर दिया है जो अन्यत्र दुर्लभ है।

महादेवी वर्मा का रहस्यवाद

इसमें संदेह नहीं है कि वर्तमान हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र मे महादेवी रहस्यवाद की एकमात्र कवयित्री हैं। आपका रहस्यवाद व्यक्तिवाद से समष्टिवाद की ओर जा रहा है। वह स्वयं कहती हैं—"जब मानवीय भावों की छाया प्रकृति में स्थापित कर तादात्म्य स्थापित किया जाता है, तो वह 'छायावाद' कहलाता है और जब प्रकृति में एक मधुरतम व्यक्ति का आरोप करके, उसके प्रति आत्मनिवेदन किया जाता है तो वह 'रहस्यवाद' कहलाता है। परमात्मा के विराट् रूप से हमारी आत्मा कुछ काल के लिए माया के आवरण से उठकर उसे ही ढूंढती है। तब अन्वेषण के बाद वह मिल जाता है, उसमें तदाकार होना ही 'रहस्यवाद' कहलाता है।"

महादेवी के काव्य में चिन्तन है। चिन्तन दार्शनिकता का प्रेरक है और

उसी भावना का प्रकाशन 'रहस्यवाद' कहलाता है। महादेवी जी अपनी कविता में उस अनन्त एव असीम को ढूंढती हैं—

जब कपोल गुलाब पर शिशु प्रात के,
सूखते नक्षत्र कल के बिन्दु से।
रश्मियो की कनकधारा में नहा,
मुकुल हंसते मोतियो को चूम के।
स्वप्नशाला में यवनिका डाल जो,
तब दृगो को खोलता वह कौन है?

महादेवी की रहस्यानुभूति भी विचित्र रूपकों द्वारा व्यक्त हुई है। वह अपने-आपको उस चिरतन सत्य की आराधिका—विरहिणी मानती है। वह कहती है—"सीमा तो असीम में मिट जाती है, और असीम सीमा में बंध जाता है, तब समस्त ससार का सुख-दु ख दूर हो जाता है।" महादेवी की कविता में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। उनके रहस्यवाद में जो अस्पष्टता दीखती है, वह साधना के विकास के कारण ही है। ससार के साहित्य में रहस्यवाद का ऐसा विकास-क्रम कदाचित् ही किसी कवि में उपलब्ध हो सके।

कलापक्ष

महादेवी वर्मा का भावपक्ष जैसा सरल तथा उत्कृष्ट है, वैसा ही कलापक्ष भी है। आप कविता को हृदय की अनुभूति मानती हैं। उनकी कला सबल है, इसलिए उसमें चमत्कार की चेष्टा तक नहीं की है, हृदय के अनुभव के आधार पर लिखा है, इसी कारण कविता में अस्वाभाविकता नहीं आने पाई है। उनकी भाषा तथा भाव सभी सुन्दर हैं। कहीं-कहीं शब्दों की कोमलता के लिए उनमें तोड-मरोड भी की गई है परन्तु वह काव्यगति में कहीं भी बाधक सिद्ध नहीं हुई।

'अभिव्यक्ति' ही आपके कलापक्ष का एकमात्र गुण है। आपकी कला

में शब्दो के लाक्षणिक प्रयोग, अमूर्त वस्तुओ में मूर्त योजनाएँ, भावों और प्राकृतिक रूपो के मानवीकरण आदि सभी शैलियों के रूप पाये जाते हैं। चित्रकार होने के कारण आपकी कविता विशेष रूप से निखरी है।

कला की दृष्टि से महादेवी का 'गीतिकाव्य' सर्वश्रेष्ठ है। उनकी गीति की पद्धति बड़ी सुन्दर और आकर्षक है। वैदिककाल की गीति-पद्धति विद्यापति, कबीर, सूर से होती हुई महादेवी तक पहुँची है। महादेवी जी इस कला में पूर्ण हैं, अद्वितीय हैं।

महादेवी जी की भाषा जितनी प्राञ्जल और भावानुकूल है, कदाचित् ही ऐसी किसी कवि की हो। आपकी भाषा में नैसर्गिक प्रवाह है। हिन्दी साहित्य सदा इस कवयित्री का आभारी रहेगा।

महादेवी ने प्रायः आध्यात्मिक गीतों की रचना की है। इन गीतो में अलौकिक के प्रति प्रेम है, उसके वियोग में विप्रलम्भ-जनित भावनाओ का भी समावेश है। उनके भावो में जीवन का दिव्य सत्य निहित है। उनका सूक्ष्म (ईश्वर) अपने में पूर्ण है। महादेवो जी ने छवि, अमृत और सौन्दर्य से उसकी पूर्ण अभ्यर्थना की है। उनकी वृत्तियां अन्तर्मुखी हैं। गीतों में गीतिकाव्य के सभी तत्त्व पूर्ण हैं। इनमें वेदना, तन्मयता, माधुर्य तथा शब्दचित्रों की सुन्दर अवतारणा हुई है। आत्मनिवेदन, अनुभूति तथा आत्मविस्मृति का काव्य में पूर्ण समावेश है। वास्तव में उन्होने सीमित क्षेत्र में ही अपनी सूक्ष्म अनुभूतियों का सर्वश्रेष्ठ चित्रण किया है।

भावपक्ष की भाँति महादेवी का कलापक्ष भी पर्याप्त उन्नत है। उनकी कविताओं में भाषा का रूप अत्यन्त परिष्कृत है। यद्यपि उनकी भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों से पूर्ण है तथापि उसमें सरलता, प्रवाह तथा माधुर्य का सुन्दर समाहार मिलता है। उनका शब्द-चयन अत्यन्त श्लिष्ट तथा भावानुकूल है। भावनाओं के अनुसार उनकी शैली भी अत्यन्त रहस्यमयी है। फिर भी उसमें धारावाहिकता है, सुन्दर प्रवाह है। निश्चय ही महादेवी वर्मा हिन्दी की सांस्कृतिक कवयित्री हैं। हिन्दी साहित्य को आप पर सदा अभिमान रहेगा।

रामधारीसिंह 'दिनकर'

परिचय

श्री दिनकर का जन्म स० १९६५ में बिहार के मुंगेर ज़िले में हुआ। कविता की रुचि उन्हें आरम्भ से ही थी। इनका शैशव अनेक कष्टों में व्यतीत हुआ। ये अपने गांव से ४-५ मील की दूरी पर एक ग्राम में पढने जाया करते थे। न सिर पर टोपी रहती और न पैरो में जूता, न क़लम, न कापी। दरिद्रता के कारण वह सब अभाव उन्हें सहने पडते थे। ग्रामीणो की दीन दशा ने इनके हृदय को व्यथित कर दिया तथा स्वामी विवेकानन्द के ग्रन्थो, तिलक के गीतारहस्य, इकबाल और नीत्से के पाठों ने इन्हें कविता करने की प्रेरणा दी। हिमालय, ताण्डव और कर्म्म देवाय आदि कविताओं में इन्हीं कर्मयोगियों की पदध्वनि सुनाई पडती है। वीरबाला और प्रणभंग इनकी विद्यार्थिजीवन की रचनाएँ हैं।

इनकी रचनाओं में युद्ध और शान्ति, हिंसा और अहिंसा, श्रद्धा और तर्क, पशुबल और आत्मबल, हृदय और मस्तिष्क के द्वन्द्वों का सुन्दर चित्रण किया गया है। इनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता और विश्वबन्धुता की भावनाएँ मुख्य रहती हैं। आपकी भावनाओ में कभी-कभी शिव के समान प्रलयकारी ओज उमड पडता है। पूंजीपतियों और शोषकों की नीति पर भी आपने गहरी चोटें की हैं। आपने जनता को भी निराश न होने के लिए आश्वासन दिया है। आप भाग्यवाद में विश्वास नहीं करते, और मानव को उद्यम की ओर प्रेरित करते हैं। आपकी कविताओं के विषय भारत के अतीत गौरव को जगाते हैं। आपकी कविताओं के आधार पर आपको 'क्रान्तिकारी' कवि कहा जाता है।

पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी आपकी काव्य-साधना के विषय में लिखते हैं—"जब छायावाद के प्रथम उन्मेष के कवियों के बाद दूसरे उन्मेष के कवियों का आगमन हुआ, तो उनके सामने मानवतावाद का आदर्श अस्पष्ट रह गया था। दिनकर में वह आदर्श पूरे जोर पर है, इसीलिए दिनकर के काव्य का आकर्षण शिथिल नहीं हुआ है। आरम्भ से लेकर अब तक उनका विकास एकरस और गतिशील है।" श्री रामगोपाल चतुर्वेदी लिखते हैं, कि मुझे लखनऊ विश्वविद्यालय के अन्तर्गत कवि-सम्मेलन के विशाल आयोजन में, जिसकी अध्यक्षता श्री कुलपति आचार्य नरेन्द्रदेव जी स्वयं कर रहे थे, रात्रि के ९ बजे दिनकर जी की ओजस्वी कविताओं के सुनने का सौभाग्य मिला। जनता आपकी कविताओ को सुनकर मन्त्रमुग्ध-सी हो रही थी। उसके बाद भी अनेक बार उनकी कविताएँ सुनने का अवसर मिला है, पर उनकी उद्दाम शैली और प्रभाव में तनिक भी अन्तर नहीं आने पाया है। उनकी कविता और सुनाने का ढंग भी उसी के अनुकूल होने से एक जादू-सा होने लगता है। निस्सदेह दिनकर एक जीवट के मानव हैं, छोटी आयु में ही गृहस्थ के भार से दब जाने पर आपने ६० रु० मासिक की नौकरी भी कर ली थी, और सच तो यह है कि अभी तक भी पारिवारिक उत्तरदायित्वो से आपको मुक्ति नहीं मिली है। आजकल आप भारतीय संसद् के निर्वाचित सदस्य (एम. पी) हैं।

दिनकर जी ने जनता को उदात्त स्वर में आश्वासन देते हुए कहा था—

गरज कर बता सबको, मारे किसी के, मरेगा नही हिन्द देश।
लहू की नदी तैर कर आ गया है, कही से कही हिन्द देश।
लडाई के मैदान में चल रहे हैं, लेके हम उसका निशान।
खडा हो जवानी का झडा उठा, ओ मेरे देश के नौजवान।

यद्यपि आपने अनेक रचनाएं की हैं, परन्तु आपका 'कुरुक्षेत्र' महा-

काव्य माना जाता है। इस काव्य में आपने दया और क्षमा वीरों का भूषण सिद्ध किया है। दलितों, शोषितों एव दुर्बलों के लिए यही एक परम कलक माना है अर्थात् एक सबल व्यक्ति अपने क्रूर हाथो से निर्बल को दण्ड दे सकता है, परन्तु नहीं देना चाहता, यह उसकी 'दया' समझनी चाहिए और एक निर्बल पुरुष सबल के हाथों कष्ट सहता हुआ भी उसकी उपेक्षा इसलिए करता है कि मैंने उसे क्षमा कर दिया है, नितान्त उप हासास्पद है। अन्याय सहना अन्यायरूपी विषधर को दूध पिलाकर पुष्ट करने के समान है, हमें अपने अधिकारों की रक्षा के लिए अवश्य शस्त्र उठाने चाहिएँ और हमारे शस्त्रों से यदि ऐसे दुष्टों का सहार भी हो तो हमें उसे 'अहिंसा' ही समझना चाहिए। यही उपदेश महाभारत में भीष्मपितामह ने महाराज युधिष्ठिर को दिया था और यही उपदेश भगवान् श्रीकृष्ण गीता में अर्जुन को देते हैं। निस्सदेह दिनकर जी ने 'कुरुक्षेत्र' काव्य द्वारा भारत को उसके अतीत का गौरव सुनाकर, उसे कर्तव्यनिष्ठ एव कर्मवीर बनने की प्रेरणा दी है। यह 'सामयिक दर्शन' कहा जा सकता है। इन्हीं वीरोचित भावनाओं से हमारे हृदय और मस्तिष्क पर चिरकाल से जमी हुई काई हटाई जा सकती है। इन्हीं भावनाओं की रगड से मानवीय दुर्बलताएँ सबल बनाई जा सकती हैं। और अब समय आ गया है कि हम स्वतन्त्र होकर अपने अस्तित्व को पहिचानें, अपने अतीत की सस्कृति और भावनाओं का आदर करें। दिनकर प्रगतिवादी कवियों में भी आजकल सर्वश्रेष्ठ स्थान बना रहे हैं। हमें ऐसी राष्ट्रीय भावनाओं के पुजारी कवियों को सदा 'राष्ट्ररक्षक' के रूप में सम्मानित करते रहना चाहिए, जिससे ये देवता प्रसन्न होकर समय-समय पर अपनी हुकारों से देश को जीवित और जागरित रख सकें। 'कवि राष्ट्र की विभूति हैं' इसमें सदेह नहीं।

रचनाएँ

दिनकर की प्रसिद्ध रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

(१) रेणुका, (२) हुंकार, (३) रसवन्ती, (४) द्वन्द्वगीत, (५) कुरुक्षेत्र (६) बापूदर्शन, (७) सामधेनी, (८) धूपछाँह ।

रेणुका—सन् १९३५ में 'रेणुका' का प्रकाशन हुआ था। यद्यपि यह दिनकर की कविताओं का पहला ही संग्रह है तदपि यह बात बड़े गर्व से कही जा सकती है कि पन्त की 'वीणा', निराला की 'अनामिका' और गुप्त की प्रारंभिक रचनाओं के मुकाबले में 'रेणुका' भाषा, भाव और शैली की दृष्टि से अपूर्व है, अलौकिक है एव प्रतिभाशाली है। 'रेणुका' अपनी परवर्ती रचनाओं का प्रतिनिधित्व करने वाला सग्रह कहा जा सकता है। इसमें एक ओर जहाँ 'हुकार'-जैसी आग बरसाने वाली रचनाएँ हैं वहाँ दूसरी ओर 'रसवन्ती'-जैसी कोमल अनुभूतिपूर्ण रचनाएँ भी हैं। प्रकृति-सुषमा की झाँकी 'निर्झरिणी' और 'मिथिला में शरत्' आदि कविताओं में मिलेग । 'द्वन्द्वगीत' की 'धूल के हीरे' नामक रचना में जीवन-जगत् के दर्शन भी आप कर सकते हैं। अभिप्राय यह है कि 'रेणुका' में दिनकर की सभी परिवर्ती रचनाओं का संकेत पाया जाता है।

'रेणुका' का प्रकाशन छायावाद का उत्कर्ष शिथिल हो जाने पर ही समझिए। उस समय प्रसाद, पन्त या निराला की उत्कृष्ट रचनाएँ भी प्रकाशित हो चुकी थीं। 'कामायनी' के पश्चात् छायावाद का युग शिथिल होता गया और प्रगतिवाद की भावना साहित्य में जोर पकड़ती गई। उसके बाद प्रयाग से बच्चन ने 'मधुशाला' में सरल रचनाओ का स्रोत बहा दिया एवं दिनकर ने अपनी ओजस्वी रचनाओ द्वारा मानव के हृदय-रक्त को उष्ण बना दिया। हिन्दी-साहित्य में ये दो ही नक्षत्र अति शीघ्र लोकप्रिय बन सके हैं। यह सौभाग्य तीसरे को अप्राप्य ही रहा। बी. एन. कालेज पटना की साहित्य-परिषद् के अवसर पर दिनकर जी की ओजस्वी कविताओं ने वह समा बाँध दिया कि श्री माखनलाल चतुर्वेदी चुप न रह सके और कहने लगे कि यदि मुझे दिनकर जी की कविताओ को सुनने के लिए दक्षिणी अफ्रीका भी जाना पड़ता तब भी मुझे प्रसन्नता ही होती।

'रेणुका' में उसी समय की बहुत-सी रचनाएँ पाई जाती हैं।

दिनकर जी तमसा-कूल पर खिली हुई मधुर ज्योति से अपने हृदय को प्रदीप्त करना चाहते हैं। वह कहते हैं—

सूर सूर, तुलसी शशि जिसकी विभा यहाँ फैलाते हैं।
जिसके बुझे कणों को पा कवि अब खद्योत कहाते हैं।
उसकी विभा प्रदीप्त करे, मेरे उर का कोना कोना।
छू दे यदि लेखनी, धूल भी चमक उठे बनकर सोना।

इस पद्य में कवि की कितनी उत्कृष्ट भावना है! सूर-तुलसी की सूर्य-चन्द्र के समान फैली हुई विभा अब बुझ-सी रही है। उसी के बुझे हुए कणों को प्राप्त कर आज भी कवि खद्योत कहला रहे हैं। वही विभा कवि हृदय को भी प्रदीप्त कर दे, जिसके प्रताप से यदि कवि की लेखनी धूल को भी छू दे तो वह सोना बनकर चमक उठे। भावना में मार्मिक ओज है। इतना ही नहीं, 'कविता की पुकार' में कविता नगरों के आडम्बरपूर्ण जीवन से ऊब उठी है, उसे अब महल नहीं कुटिया चाहिए, नगर नहीं, ग्राम चाहिए। वह कहती है, हे कवि!

विद्युत छोड दीप साजूँगी, महल छोड तृण-कुटी प्रवेश।
तुम गाँवो के बनो भिखारी, मैं भिखारिणी का लूँ वेश॥

कभी कहती है—

सूखी रोटी खायेगा जब, कृषक खेत मे धर कर हल,
तब दूँगी मैं तृप्ति उसे बनकर लोटे का गगा-जल।
उसके तन का दिव्य स्वेदकण, बनकर गिरती जाऊँगी,
और खेत में उन्ही कणो से, मैं मोती उपजाऊँगी।

दिनकर जी ने प्रकृति-वर्णन के भी सजीव चित्र खींचे हैं, देखिए—

मधुयामिनी अचल-ओट में सोई थी बालिका-जूही उमगभरी।
विधुरजित ओसकणो से भरी, थी बिछी वन स्वप्न-सी दूब हरी॥

मृदु चांदनी बीच थी खेल रही, वनफूलो से शून्य में इन्द्रपरी।
कविता बन शैल-महाकवि के उर से मैं तभी अनजान झरी।।

'राजा-रानी' शीर्षक में प्रेम और करुणा का अत्यन्त मर्मस्पर्शी चित्र है। वसन्त और वर्षा के जीवन पर भी मार्मिक दृष्टि डाली गई है। सच तो यह है कि दिनकरजी ने इसी बहाने पुरुष की विलासप्रियता, हृदयहीनता और स्वार्थलिप्सा तथा नारी के त्याग, सहिष्णुता और यंत्रणा का चित्र खींचा है। राम और दुष्यन्त की निर्दयता के कारण सीता और शकुन्तला का जीवन कितना कारुणिक बन गया था—

राजा वसन्त, वर्षा ऋतुओ की रानी,
लेकिन दोनो की कितनी भिन्न कहानी।
राजा के मुख में हँसी, कण्ठ में माला,
रानी का अन्तर विकल, दृगो में पानी।

हुंकार—जब सन् १९३४ के पश्चात् समाजवादी भावनाओं का बोलबाला हुआ तब दिनकर भी अपनी कविताओं का गान करने के लिए सामयिक सामग्री जुटाने लगे। गान्धीजी ने देश को जगाया, परन्तु क्रान्ति का स्वरूप अहिंसात्मक कैसे हो, दिनकर के मन में यह चिन्ता व्याप्त हुई। उसने भारतीय इतिहास के ध्वंसावशेषों की ओर दृष्टिपात किया और इस यज्ञ में अपनी भी आहुति चढाने के संकल्प से 'हुंकार' की रचना की। इसमें अतीत का गान नहीं है, आगत का स्वागत करते हुए अनागत के गीत गाने के लिए दिनकरजी विकल हो उठे हैं। वे मानो अपने आपको कह रहे हों—

नये प्रात के अरुण ! तिमिर उर में मरीचि सन्धान करो।
युग के मूक शैल उठ जागो, हुंकारो, कुछ गान करो।

इसमें 'अरुण' शब्द से दिनकर का ही संकेत किया गया है। उन्हें अपने ऊपर पूर्ण विश्वास है, वे अपने को ज्योतिर्मय सौरमण्डल के कवि

के तुल्य मानते हैं। 'आलोकधन्वा' में जो अपना गर्वीला रूप प्रकट किया है, वह नितान्त रमणीय है। देखिए—

ज्योतिर्धर कवि में ज्वलित सौरमण्डल का,
मेरा शिखण्ड अरुणाभ, किरीट अनल का।
पाया निसर्ग ने मुझे पुण्य के फल-सा,
तम के सिर पर निकला मैं कनक-कमल-सा।
हो उठा दीप्त धरती का कोना-कोना,
जिस को मैंने छू दिया हुआ वह सोना।
मैं विभापुत्र, जागरण गान है मेरा,
जग को अक्षय आलोक दान है मेरा।

'कविता का हठ' रचना में कविता स्वर्गलोक को भूलोक में उतारने से लिए कवि की सहायता करना चाहती है। 'परिचय' शीर्षक कविता में कवि का व्यक्तित्व और उसका काव्यदर्शन निरूपण किया गया है। 'अनल-किरीट' कविता में दिनकर ज्वालामुखी के मुख पर बैठकर और नेजो-भालों पर चढकर ही अपनी मस्ती के तराने सुनाते हैं। आप ऐसे ही आशिक का चित्र प्रस्तुत करते हैं—

लेना अनल किरीट भाल पर, ओ आशिक होने वाले!
कालकूट पहिले पी लेना, सुधा बीज बोने वाले।
जिन्हे देख कर डोल गई, हिम्मत दिलेर मरदानो की।
उन मौजो पर चली जा रही, किश्ती कुछ दीवानो की।
अभय बैठ ज्वालामुखियो पर, अपना मन्त्र जगाते हैं।
ये हैं वे जिनके जादू, पानी में आग लगाते हैं।

'सिपाही' शीर्षक कविता में आपने एक सिपाही के कर्त्तव्य का चित्र खींचा है। वह इसी देश की मिट्टी से पैदा हुआ है और इसी देश के अन्न-जल आदि से पला है, अत वह इसी देश की रक्षा के लिए मिटना भी जानता है। सासारिक माता, पिता, पुत्र, स्त्री आदि की ममता उसे अपने

मोह-पाश में बांध नहीं सकती। लिखते हैं—

जीवन की क्या चहल-पहल है, इसे न मैंने पहिचाना।
सेनापति के एक इशारे पर मिटना केवल जाना।
जग भूले, पर मुझे एक बस सेवाधर्म निभाना है।
जिसकी है यह देह, उसी में इसे मिला, मिट जाना है।

'भविष्य की आहट' में एशिया के नवजागरण का चित्र अंकित किया गया है। 'भारत, चीन आदि देश मिलकर विराट् एशिया का महत्त्व स्थापन करेंगे' यह भावना भी कवि के हृदय को स्फूर्तिमान् कर रही है। आने वाले युग के सन्देश को सुनाना चाहता है—

आज कम्पित मूल क्यो ससार का ?
अर्थ का दानव भयाकुल मौन है।
झोपडी हँस चौंकती वह आ रहा,
साम्य की वशी बजाता कौन है ?

'त्रिपथगा' या 'दिगम्बरी' आपकी क्रान्तिकारिणी रचनाएँ हैं। त्रिपथगा का नामकरण कितना विचित्र है ! कोई क्या कह सकता है कि यह क्रान्ति कहां से, क्यों और कैसे आती है ? इसी कारण इसका नाम 'त्रिपथगा' रखा है, और दिगम्बर इसे इसलिए कहते हैं कि क्रान्ति चतुर्दिक् छा जाती है। बेनीपुरी का कहना है कि विश्व-साहित्य में जितनी भी क्रान्ति पर कविताएँ लिखी जा चुकी हैं, 'त्रिपथगा' उनमें सर्वश्रेष्ठ है। यह एक क्रान्तिकुमारी है, तलवार की झंकार ही जिसके पायलों की झंकार हो, बिजली का कड़कना ही जिसकी कड़क हो, अँगड़ाई में जिसके भूचाल हो, और श्वासों में उनचास प्रकार की पवन बह रही हो भला ऐसी क्रान्तिकुमारी का शृङ्गार कौन कर सकेगा ?

झन-झन--झन-झन-झन-झनन-झनन,
मेरे मस्तक के छत्र मुकुट, वसुकालसर्पिणी के शतफन।
मुझ चिरकुमारिका के ललाट मे नित्य नवीन रुधिर चदन।

आँजा करती हूँ चिता धूम का दृग में अन्ध तिमिर-अंजन।
संहार लपट का चीर पहन नाचा करती मैं छूम छनन।
झन-झन-झन-झन झन-झनन-झनन

'नई दिल्ली' कविता में कवि ने इसे ब्रिटिश भारत की राजधानी तो कहा ही है, पर साथ-ही-साथ उसे विलासिनी नायिका, परकीया, गणिका तक कह डाला है। इसमें कवि ने अनेक ऐतिहासिक घटनाओं के करुण प्रसगों का एवं ग्लानिपूर्ण दृश्यों का चित्र उपस्थित किया है जो सर्वथा रोमांचकारी हैं। दिनकर जी कहते हैं—

ओ दिल्ली!
तू वैभव-मद में इठलाती, परकीया-सी सैन चलाती।
री विलास की दासी! किसको इन आँखों पर ललचाती।
तू न ऐंठ मदमाती दिल्ली!
मत फिर यों इतराती दिल्ली!
वैभव की दीवानी दिल्ली!
कृपक मेघ की रानी दिल्ली!
अनाचार अपमान व्यंग्य की
चुभती हुई कहानी दिल्ली!!

फिर इसे कुलटा का रूप देते हुए कहते हैं—

अपने ही पति की समाधि पर,
कुलटे! तू छवि में इतराती।
परदेशी-संग गलबाँही दे,
मन में है, फूली न समाती।
दो दिन ही के बाल-डाँस में,
नाच हुई बे-पानी दिल्ली।
कैसी यह निर्लज्ज नग्नता,
यह कैसी नादानी दिल्ली!!

अरी ! सँभल, यह कब्र न फटकर कहीं बना दे द्वार।
निकल न पडे क्रोध में लेकर शेरशाह तलवार।

कवि को ऐसी विलासिनी की आवश्यकता नहीं है, इसलिए वह कगालों की रानी भारत माता को पुकार रहा है—

दिल्ली ! तेरे रूप रग पर, कैसे हृदय फँसेगा ?
वाट जोहती खँडहर में, हम कगालो की रानी।

इस कविता में दिल्ली को 'कृषक-मेघ की रानी' कहा गया है। यह सबोधन कितना मार्मिक है; क्योंकि इसमें हजारों-लाखो मजदूरो तथा कृषकों के रक्त का शोषण हुआ है, अतः यह 'विलासपुरी दिल्ली' भारतीय मजदूरों और कृषकों के अपमान का प्रतीक है। हजारों गाँवों के स्नेह-दीपक वुझा कर नई दिल्ली में विजली की जगमगाहट हुई है। कवि कहता है—

हाय ! छिनी भूखो की रोटी, छिन्न नग्न का अर्धवसन है,
मजदूरो के कौर छिने हैं, जिन पर उनका लगा दसन है।
आहें उठी दीन कृषको की, मजदूरो की तडप पुकारें,
अरी ! ग़रीवी के लोहू पर खडी हुईं तेरी दीवारें।

पराधीन भारत नई दिल्ली के वैभव को किस दृष्टि से देखता था। उस भावना का एक चित्र दिनकर जी ने प्रस्तुत किया है।

'हाहाकार' शीर्षक रचना में दिनकर जी ने जो दीन-हीन कृषकों की व्यथित दशा का चित्र खींचा है, उसे पढ़ते ही आँखों से अश्रुधारा वहने लगती है। यह भी कहा जाता है कि राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद जी ने जब यह स्थल सुना तो वे सहसा रो पड़े थे। कितना कारुणिक दृश्य है। वच्चे 'दूध-दूध' पुकारते मर जाते हैं, उनकी कब्रों से भी दूध की चीख सुनाई पड़ती है, परन्तु उसे कोई नहीं सुन पाता।

कवि कहता है—

कब्र कब्र में अबुध बालकों की भूखी हड्डी रोती है।
'दूध दूध' की कदम कदम पर, सारी रात सदा होती है।
'दूध दूध' ओ वत्स मन्दिरों में, बहरे पाषाण यहाँ हैं।
'दूध दूध' तारे बोले, इन बच्चों के भगवान् कहाँ हैं ?
'दूध दूध' दुनिया सोती है, लाऊँ दूध कहाँ, किस घर से ?
'दूध दूध' हे देव, गगन की कुछ बूँदें टपका अम्बर से।
'दूध दूध' गंगा तू ही अपने पानी को दूध बना दे।
'दूध दूध' उफ ! है कोई भूखे मुर्दों को जरा मना दे ?
'दूध दूध' फिर 'दूध' अरे क्या याद दूध की खो न सकोगे ?
'दूध दूध' मर कर भी क्या तुम, बिना दूध के सो न सकोगे !
वे भी यही दूध से जो अपने श्वानों को नहलाते हैं।
ये बच्चे भी यही कब्र में 'दूध'-'दूध' जो चिल्लाते हैं।
हटो व्योम के मेघ पन्थ से स्वर्ग लूटने हम आते हैं।
'दूध दूध' ओ वत्स, तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं।

इसी प्रकार कवि के अन्य गीत 'नमन उन्हें मेरा शत वार', 'क़लम, आज उनकी जय बोल' और 'व्यक्ति' आदि महत्त्वपूर्ण हैं। दिनकर की ओजस्वी एवं आग बरसाने वाली रचनाओं का मूल्य वे ही आँक सकेंगे जिनमें भारतीयता के प्रति मर मिटने की पूरी आस्था है, जिनके रोम-रोम में एक अभूतपूर्व मद की भावनाएँ छलछलाती हैं, जिनके रक्त की उष्णता धमनियों में एक नूतन सर्ग की रचना कर रही है, जिन्हें भारतीय दीन-हीन कृषकों एवं मजदूरों की शोषित अस्थियों में भी एक सहानुभूति की वेदनात्मक बन्धुता का स्वर सुनाई देता है। यह है दिनकर की ओज-स्विनी रचनाओं का ताण्डव, जिसे सहृदय नहीं, प्रस्तर-हृदय ही सुन सकेंगे और सहन कर सकेंगे, जिन्हें अपने आँसू स्वयं पीना आता हो, जिन्हें परता से प्रेम हो, अतीत के वैभव को अपना सर्वस्व समझकर उसी की

वेदी पर अपने कोमल कलेवरो की हँसते हुए आहुति दे सकने के लिए उत्सुकता हो। भला ! दुर्गा का रिझाना कोई हँसी-खेल है ? उसे रिझाने के लिए तो अपने शोणित के प्याले भर-भर के उसे पिलाने होगे, और अपने शव के सिंहासन पर उसे बिठा कर अर्चना करनी होगी। क्या भारतीय व्यक्ति अपने अतीत के गौरव को इतनी आसानी से भुला सकेंगे ? इतिहास और इस युग को ऐसी आशा कदापि नहीं है। इन्हीं भावनाओं को एक 'हुंकार' दिनकर कवि ने अपनी रचनाओ में भर दी है जिसे पढ़कर हृदयहीन भी एक वार भारतभूमि के प्रति सहृदय एव कर्तव्यनिष्ठ हो सकेगा।

रसवन्ती—इसमें सन्देह नहीं कि 'रसवन्ती' की रचना केवल मनोरजन के उद्देश्य से ही हुई है। कई आलोचकों ने 'रेणुका' और 'हुकार' जैसी ओजस्विनी रचनाओ के लेखक की लेखनी से सरस, कोमल एवं प्रेम की भावनाओ से परिपूर्ण 'रसवन्ती'-जैसी रचना देखकर आश्चर्य के साथ कहा कि रेणुका और हुंकार का कवि अब पथभ्रष्ट हो गया है; परन्तु उन्होने यह भी नहीं जाना कि यह वही कवि है जिसने 'निर्झरिणी', 'मिथिला में शरत्' और 'परदेशी'-जैसी प्रेमभरी, सरस रचनाएँ की हैं। हलाहल पीनेवाले नीलकण्ठ के अर्धशरीर में भी अमृत का आवास होता है, सूर्य के ताप से संतप्त पर्वत भी चन्द्र की शीतल ज्योत्स्ना को पाकर एक मधुर-सगीत गाते सुने जाते हैं। 'रास की मुरली' का स्वर भी रसवन्ती में गूंज रहा है। कवि का स्वरूप नन्दन-वन की कोकिला के रूप में दग्धारण्य में कुहक रहा है। 'रसवन्ती' में 'गीत-अगीत', 'प्रीति और आश्वासन', 'प्रभाती', 'अज्ञेय की ओर' और 'शेषगान' गीतशैली की रचनाएँ हैं। 'रास की मुरली', 'वालिका से वधू', 'नारी और कवि' तथा 'सन्ध्या' अत्यन्त उच्चकोटि के प्रगीतमुक्तक हैं। 'गीत-अगीत कौन सुन्दर है' इस रचना में कवि ने यह भाव अभिव्यक्त किया है कि वेगवती तटिनी अपनी विरह-व्यथा को प्रस्तरो से कहती जाती है, मानो अपना दुःख कम करती

जा रही है, परन्तु साथ ही उसके किनारे खड़ा हुआ मूक पाटल भी कम रमणीय नहीं है। उसका 'अगीत-रूप' भी सहृदयों के लिए कम आकर्षक नहीं। देखिए—

दो प्रेमी हैं यहाँ, एक जब,
बड़े साँझ आल्हा गाता है।
पहिला स्वर उसकी राधा को,
घर से यहाँ खींच लाता है।
चोरी-चोरी खड़ी नीम की,
छाया में छिपकर सुनती है।
हुई न क्यों मैं कड़ी गीत की,
विधना ! यों मन में गुनती है।
वह गाता, पर किसी वेग से,
फूल रहा इसका अन्तर है।
गीत-अगीत कौन सुन्दर है ?

इस कविता में दिनकर की भावुकता बिखरी पड़ी है जो नितान्त सुन्दर है। 'प्रीति' शीर्षक गीत में प्रेम की व्यजना और भी मधुर बन पड़ी है।

प्रीति न अरुण साँझ के घन सखि !
पल-भर चमक बिखर जाते तो,
मना कनक-गोधूलि लगन सखि !
चूम रहा जो विनत धरणि को,
निज सुख में नित मूक गगन सखि !

कवि का कहना है कि विरहिणी को तृण की भाँति धधक-धधक कर जल जाने में प्रीति का स्वाद नहीं मिलता। वह स्वाद तो उसे पल-पल, तिल-तिल जलने में ही प्राप्त होता है। इसका आभास कवि के शब्दों में पढ़िए—

तृणवत् धधक-धधक मत जल सखि !
ओदी आँच धुनी विरहिणि की,
नही लपट की चहल-पहल सखि !
अन्तर्दाह मधुर मगल सखि !
प्रीति-स्वाद कुछ ज्ञात उसे जो,
सुलग रहा तिल-तिल पल-पल सखि !

'आश्वासन-गीत' भी अनुपम है। छन्द की गति और लय नवीन है, मरुभूमि में जल और वृक्ष में फल की आशा देकर दु खी हृदय को सुन्दर आश्वासन दिया गया है। 'प्रभाती' का सम्वाद सुनकर प्रकाश के स्रोत की खोज में भटकना हमारी आध्यात्मिक जिज्ञासा की ओर संकेत करता है। 'द्वन्द्वगीत' में अनन्त की सत्ता के रहस्य को जानने की इच्छा व्यक्त हुई है। 'नारी' शीर्षक गीत में नारी के मोहन रूप का पुरुष पर जो प्रभाव पडता है, उसका वर्णन किया गया है। नारी के सामने पुरुष की सदा हार हुई है और उसकी कोमलता पुरुष की कठोरता पर सदा विजय प्राप्त करती रही है—

हो गया मदिर दृगो को देख,
सिंह विजयी वर्बर लाचार।
रूप के एक तन्तु में नारि,
गया बँध मत्त-गयन्द कुमार।
एक इगित पर दौडे शूर,
कनक-मृग पर होकर हतज्ञान।
हुई ऋषियो के तप का मोल,
तुम्हारी एक मधुर मुस्कान !

इस प्रकार 'रसवन्ती' में अत्यन्त मधुर, सरस, एवं कोमल गीतो की सृष्टि हुई है। 'कवि' के सम्बन्ध में दिनकर का कहना है कि "धरणी की

आह जब कल्पद्रुम से टकराई तब इस विश्व-मरु में एक पारिजात का कुसुम गिर पड़ा, वही पारिजात 'कवि' है।" कैसी मोहक कल्पना है।

द्वन्द्वगीत—इसमें दिनकर की एक विशेष प्रकृति पाई जाती है। इसमें आत्मा-परमात्मा, प्रकृति-दर्शन, जीवन और जगत् के सम्बन्ध में मार्मिक उक्तियाँ कही गई हैं। इसकी रचना चतुष्पदी शैली (रुबाइयात) की पद्धति पर की गई है। संसार में चित्र-विचित्र सृष्टि, हर्ष-विषाद, सुख-दुःख, हास-अश्रु और अनुराग-विराग का मिश्रण दिखाई देता है। इस प्रकार जीवन की समता-विषमता, सुन्दरता-कुरूपता, कोमलता-कठोरता का गान ही 'द्वन्द्वगीत' है। जीवन और मरण की समस्याओं का द्वन्द्व इस जगत् की एक परिवर्तनशील समस्या है—

मैं रोता था हाय, विश्व
हिमकण की करुण कहानी है।
सुन्दरता जलती मरघट में,
मिटती यहाँ जवानी है।
पर, बोला कोई कि ज़रा,
मोती की ओर निहारो तो।
दो दिन का ही सही, किन्तु
देखो कैसा यह पानी है।

इसमें जीवन की क्षणिकता, अस्थिरता का कैसा सजीव चित्रण किया गया है—

यह फूलों का देश मनोरम,
कितना सुन्दर है रानी!
फूल फूल पर फिरे न क्यों,
कविता तितली-सी दीवानी।

यौवन का सौंदर्य क्षणिक है। इस पर भी मानव की मनोवृत्ति दीवानी हो रही है। कवि की कविता भी तितली की तरह उन्मत्त हो

रही है। कवि ने एक बार 'रेणुका' में 'माया के मोहक वन की, क्या कहूँ कहानी परदेशी' यह गीत गाया था। साथ ही जीवन की लता को अधर-सुधा से सींचने का उपदेश दिया था; क्योंकि जीवन की मादकता से मृत्यु भी मधुर बन जायगी। यद्यपि जगत् की सुषमा नित्य नवीन बनी रहती है, तथापि यह मानव उस मधुधारा को पीने के लिए सदा नहीं रहता। यह क्षणभंगुरता रह-रह कर खटकती है।

दूब-भरी इस शैल-तटी में,
उषा विहँसती आयेगी।
युग-युग कली हँसेगी,
युग-युग कोयल गीत सुनायेगी।
घुल-मिल चन्द्रकिरण में
बरसेगी भू पर आनन्द-सुधा।
केवल मैं न रहूँगा यह
मधुधार उमड़ती जायेगी।

इस प्रकार के मधुर गीतों की 'द्वन्द्वगीत' में कमी नहीं है। 'द्वन्द्वगीत' में कवि ने अपनी कविता को एक स्थान पर 'दाह की कोयल' कहा है। जब विश्व-वन के दग्ध वृक्ष पर वह दृष्टि डालता है तब अपने-आप को 'दाह की कोयल' समझकर कहता है—

बोल दाह की कोयल मेरी,
बोल दहकती डारों पर।
अर्द्धदग्ध तरु की फुनगी पर,
निर्जल-सरित कगारों पर।

कुरुक्षेत्र—दिनकर जी ने महाभारत के युद्ध को अपने 'कुरुक्षेत्र' काव्य का आधार बनाकर सभ्यता और संस्कृति के संबंध में जो विचार प्रकट किये हैं, वे निस्संदेह मनन-योग्य हैं। महाभारत का युद्ध जो

तत्कालीन योगिराज श्रीकृष्ण की सम्मति से हुआ था। उसमें भीषण नर सहार हुआ। इसमें धर्माधर्म, कर्तव्याकर्तव्य तथा कर्माकर्म के विषय में एक विशद विवेचन किया गया है। ऐसा विवेचन अन्यत्र दुर्लभ है। इसमें केवल देह से देह का ही सघर्ष नहीं हुआ अपितु आत्मा का आत्मा से भी सघर्ष हुआ है। श्रीकृष्ण ने उपनिषद्‌रूपी गौओ को दुहकर जो गीतामृतरूपी दुग्ध दिया जिसे पीकर मानव अमर हो गया है, कुरुक्षेत्र में इसी को स्पष्ट किया गया है। अन्याय का सहना अन्यायरूपी साँप को दूध पिलाकर पुष्ट करना है। अपने अधिकारों की रक्षा के लिए यदि अस्त्र भी उठाने पड़ें और ससार का सहार भी करना पड़े तो यह भी धर्म और कर्तव्य है।

अत्याचार का उत्तर नम्रता नहीं है। अत्याचार को मिटाते-मिटाते यदि हिंसा भी करनी पड़े तो यह हिंसा 'अहिंसा' से कम महत्त्वपूर्ण नहीं। यही सदेश महाभारत का युद्ध हमारे सामने प्रस्तुत करता है और यही विषय अथवा सदेश 'कुरुक्षेत्र' काव्य में उपलब्ध होता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि दया और क्षमा वीरता का शृङ्गार हैं परन्तु अत्याचारी के अत्याचारों में पिसते हुए मनुष्य के लिए महान् कलक हैं। धर्मभीरु युधिष्ठिर विजयलक्ष्मी का आलिंगन करके भी भीष्मपितामह के चरणों में अपना मस्तिष्क झुका रहा है और अपनी मनोव्यथा प्रकट कर रहा है। वह चाहता है—

जानता कही जो परिणाम महाभारत का,
तनबल छोड मैं, मनोबल से लडता।
तप से, सहिष्णुता से, त्याग से सुयोधन को,
जीत नई नींव इतिहास की मैं धरता।

जब युधिष्ठिर इस चिन्तन में थे कि मुझे अहिंसा द्वारा ही विजय प्राप्त करनी चाहिए थी, उस समय भीष्म द्वारा दिनकर ने पुन उसी सिद्धान्त को अपनी वज्रवाणी में दुहराया—

करुणा क्षमा हैं क्लीव जाति के कलक घोर,
क्षमता क्षमा की शूरवीरो का शृङ्गार है।

महाभारत-युद्ध को धर्मयुद्ध, कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र और युधिष्ठिर को धर्मराज क्यों कहा गया है ?—इसके सम्बन्ध में भीष्मपितामह 'कुरुक्षेत्र' में कहते हैं—

जिनकी भुजाओ की शिराएँ फडकी हीं नही,
जिनके लहू में नही वेग है अनल का।
शिव का पदोदक ही पेय जिनका है रहा,
चक्खा ही जिन्होने नही स्वाद हलाहल का।
जिनके हृदय मे कभी आग सुलगी ही नही,
ठेस लगते ही नही अहकार छलका।
जिनको सहारा नही भुज के प्रताप का है,
बैठते भरोसा किये वे ही आत्मवल का।

भीष्म युधिष्ठिर से कह रहे हैं कि जब तक ससार में हिंसा का राज्य है, अहंकार, लोभ, मोह, छल, क्रोध आदि का सचार हो रहा है, और जब तक सुयोधन अनेक और युधिष्ठिर एक है तब तक शान्ति हो नहीं सकती—

शरो की नोक पर लेटे हुए गजराज जैसे,
थके टूटे गरुड से मस्त पन्नगराज जैसे।
मरण पर वीर जीवन का अगम वलभार डाले,
दवाये काल को, सायास सज्ञा को सँभाले

भीष्मपितामह कहने लगे—

चुराता न्याय जो, रण को बुलाता भी वही है
युधिष्ठिर ! स्वत्व की अन्वेषणा पातक नही
नरक उनके लिए जो पाप को स्वी
न उनके हेतु जो रण में उसे

जब भरी सभा में द्रोपदी के केश खींचे गये और पौरुष चुपचाप यह दृश्य देखता रहा तब मनुष्य को नारी की लाज रखने में असमर्थ देख कर नारायण ने अपना सुदर्शन संभाला । देखिए दिनकर जी क्या कह रहे हैं—

नर की कीर्तिध्वजा उस दिन कट गई देश में जड से,
नारी ने सुर को टेरा जिस दिन निराश हो नर से ।

क्या कुरुक्षेत्र का कवि अहिंसा-मार्ग का विरोधी है ? क्या उसीने हिमालय शीर्षक कविता में नहीं कहा है ?

तू रोक युधिष्ठिर को न यहाँ,
जाने दे उनको आज धीर ।
पर फिरा हमें गाण्डीव, गदा,
लौटा दे अर्जुन भीम वीर ।

कुरुक्षेत्र का कवि निराश नहीं है, परन्तु अहिंसा की निष्ठा के साथ-साथ समाज की विषमता का भी अन्त करना चाहता है । वह कहता है—

नर संस्कृति की रणछिन्न लता पर,
शान्ति सुधाफल दिव्य फलेगा ।
कुरुक्षेत्र की धूल नही इति पथ का,
मानव ऊपर और चलेगा ।
मनु का यह पुत्र निराश नही,
नवधर्म-प्रदीप अवश्य जलेगा ।

दिनकर कवि की कामना है कि मनुष्य के हाथ में विज्ञान वज्र न बन जाय अपितु फूल बनकर रहे । वह आग्नेय विज्ञान नहीं चाहता, करुण शीतल विज्ञान चाहता है जिसके छींटे मानव के मूर्छित प्राणों को हरा-भरा कर दें और मानवता का रहस्य मानव समझ सके ।

रसवती भू के मनुज का श्रेय,
यह नही विज्ञान कटु, आग्नेय ।

श्रेय उसका, प्राण में वहती प्रणय की वायु,
मानवो के हेतु अर्पित मानवो की आयु।

हम भी कवि के शब्दो में भगवान् से प्रार्थना करते हैं—

साम्य की वह रश्मि स्निग्ध उदार,
कव खिलेगी, कव खिलेगी विश्व में भगवान्!
वह सुकोमल ज्योति से अभिषिक्त
हो, सरस होगे, जली सूखी रसा के प्राण?

इस प्रकार 'कुरुक्षेत्र' मे दिनकर कवि ने नवयुग की चेतना को सप्राण किया है, और मानव को अमर शान्ति का सन्देश देकर उसे अमर वनाने का सत्प्रयत्न किया है। यह दिव्य भावनाओ का सुन्दर काव्य है।

बापूदर्शन—महात्मा गांधी 'वापू' कहलाते थे। समस्त भारत ने उन्हें अपने पिता की भाँति देखा। वापू युगावतार ही नहीं थे, वे युगाधार युग के पुरुषोत्तम थे। वापू ने ही देश को पराधीनता की वेडियो से उन्मुक्त किया। ऐसी दिव्य विभूति के पवित्र जीवन से इस युग के कवि का प्रभावित होना स्वाभाविक है। दिनकर कवि ने अपनी श्रद्धांजलियां अर्पित कर अपने को धन्य माना है। जव सन् १९४६–४७ में कलकत्ता और नोआखली आदि स्थानों में नरक-कुण्ड धधक रहा था, उस समय भी वापू हिमालय की तरह अचल थे। उस समय दिनकर की श्रद्धा उमड़ पड़ी और विराट् के चरणो में एक वामन का दिया हुआ क्षुद्र उपहार रूप 'वापू' नामक काव्य रच डाला। यह काव्य गाधी-प्रशस्तियो में सर्वोत्कृष्ट है। खेद है कि कवि को यह सौभाग्य नहीं मिल सका कि वह स्वय उपस्थित होकर अपनी कविताएँ वापू को सुना सके और अपने-आपको कृतकृत्य कर सके; पर उनके निकट सम्पर्क में रहने वाली श्री मृदुला बेन ने यह कविताएँ सुनीं और कहा कि वापू की मनोदशा ठीक ऐसी ही थी जैसी इस काव्य में वर्णित है। कवि ने अपनी कल्पना से

उनके अन्तरतम का चित्रवत् वर्णन कर दिया है। वह स्वय लज्जित है कि ससार अपने इष्टो की पूजा फूलों के हारो तथा रोली के तिलकों से करता रहा है। परन्तु उसने उनकी पूजा अगारो से की है। आज बापू के दिव्य तेज के सम्मुख कवि के अगारे भी जब मलिन और निस्तेज हो रहे हैं तो वह चिन्तित हो उठा है कि किस प्रकार बापू की पूजा करे! यह उसकी समझ में नहीं आता। कवि कहता है—

तू सहज शान्ति का दूत,
मनुज के सहज प्रेम का अधिकारी।
दृग मे उडेल कर सहज शील,
देखती तुझे दुनिया सारी।
धरती की छाती से अजस्र,
चिर सचित क्षीर उमडता है।
आंखो में भर कर सुधा तुझे,
यह अम्बर देखा करता है।

कवि इस करुणामृत-वारिधि बापू को सर्वोच्च भावना का केन्द्र समझता है, उसकी तुलना किससे करे क्योंकि उसकी बुद्धि स्वय पराजित हो रही है। प्रभु की गोद ही जिसकी सग्राम-भूमि हो, ऐसे वीर का कौन वर्णन कर सकता है। बापू ने शान्ति द्वारा क्रांति की, अहिंसा और प्रेम के शस्त्रो से युद्ध किया, मानव को देवालय में न भेजकर उसके हृदय में देवत्व प्रकट कर दिया। सबसे भिन्न बापू में यही अन्तर है। कवि कहता है—

सबने देखे विद्वेष-गरल,
तूने देखा अमृत-प्रवाह।
सब ने वडवानल लिया,
लिया तूने करुणा-सागर अथाह।

नर के भीतर की दुनिया मे,
है कही अवस्थित देवालय।
सदियो में कभी कभी कोई,
कर भी पाता जिसका परिचय।
मानवता का मरमी सुजान!
आया तू भीति भगाने को,
अपदस्थ देवता को नर में,
फिर से अभिषिक्त कराने को।
तू चला लोग कुछ चौंक पडे,
तूफान उठा या आँधी है।
ईसा की वोली रूह, अरे!
यह तो वेचारा गान्धी है।

वापू ने जव देखा कि नोआखली में दानवता का भीषण ताण्डव ो रहा है, हिंसा की विकराल ज्वाला जल रही है, मानवता रह-रहकर राह रही है तव उसने तुरन्त आगे वढकर कहा कि अव या तो मैं ही हूंगा या यह दानवता ही रहेगी। संसार इस दिव्य ज्योति के साहस ो देखकर आश्चर्य-चकित रह गया। कवि के शब्दो में यह चित्र इस कार है—

जल रही आग दुर्गन्ध लिये,
छा रहा चतुर्दिक् विकट धूम।
विप के मतवाले कुटिल नाग,
निर्भय फरण जोडे रहे घूम।
द्वेषो का भीषण तिमिर-व्यूह,
पग-पग प्रहरी हैं अविश्वास।
है चमू सजी दानवता की,
खिलखिला रहा है सर्वनाश।

पर हो अधीर मत मानवते !
पर हो अधीर मत मेरे मन !
है जूझ रही इस व्यूह बीच,
धरती की कोमल एक किरन।
सामान्य मृत्तिका के पुतले,
हम समझ नही कुछ पाते हैं।
तू ढो लेता किस भाँति पाप,
जो हम दिन-रात कमाते हैं ॥

जब नोआखली में नरमुण्डों के रक्त से कुण्ड भरे जा रहे थे, अग्नि-ज्वालाएँ भयकर गति से लपलपाती हुई मानवता को भस्म कर रही थीं, उस समय बापू दिल्ली के स्वराज्योत्सव में आशीर्वाद देने तक को न ठहर सके। वे कहने लगे कि मेरा स्थान नोआखली है—इतना कहकर वे अकेले ही चल पड़े। उस समय बापू ने कहा था—

मत साथ लगे कोई मेरे,
एकाकी आज चलूंगा मै।
जो आग उन्हे है भून रही,
उसमें जा स्वय जलूंगा मै।
एकाकी, हाँ एकाकी हूँ,
डँसना चाहे तो व्याल डँसे।
करुणा को जिसने ग्रसा, बढे
आगे, मुझको वह काल ग्रसे।
बामी बामी पर घूम घूम,
मै तब तक अलख जगाऊंगा।
जब तक न हृदय की सीता को,
तुमसे वापिस फिर पाऊंगा।

या दे दूंगा मैं प्राण,
खमण्डल में हो चाहे जो उपाधि।
मानवता की जो क़ब्र वही,
गान्धी की भी होगी समाधि।

आज कवि लज्जित अंगारों से बापू की पूजा करने में संकोच अनुभव कर रहा है, वास्तव में विराट् की पूजा के लिए साकल्य भी विराट् चाहिए। वह कहता है—

लज्जित मेरे अगार, तिलक
माला भी यदि ले आऊँ मैं।
किस भाँति उठूं इतना ऊपर,
मस्तक कैसे छू पाऊँ मैं।
ग्रीवा तक हाथ न जा सकता,
उँगलियाँ न छू सकती ललाट।
वामन की पूजा किस प्रकार,
पहुँचे तुझ तक मानव विराट् ?

इसके एक वर्ष के पश्चात् ही कवि को बापू की मृत्यु के समाचार ने मानो हतप्रभ कर दिया। वह बोल उठा—

यह लाश मनुज की नही,
मनुजता के सौभाग्य-विधाता की।
बापू की अरथी नही चली,
अरथी यह भारत माता की।

सामधेनी—इस सग्रह में दिनकर कवि की सन् १६४१ से १६४६ तक की रचनाएँ हैं। इसमें अनेक सामयिक हैं। 'सामधेनी' शब्द कुछ असंगत-सा है, 'सामिधेनी' होना चाहिए था; क्योंकि 'समिधा' शब्द से सामिधेनी शब्द की योजना की गई है। यज्ञ के लिए समिधाएँ चाहिएं। कवि उसका स्वयं पुरोधा है।

इसका प्रथम गीत 'अचेतन मृत्ति अचेतन शिला' है। मिट्टी और शिला यद्यपि अचेतन हैं तथापि कवि की चेतना पाकर सजीव हो गई हैं। वास्तव में मृत्तिका भी साकार घट का रूप बन जाती है। शिला भी सजीव प्रतिमा बन गई थी। इन भावनाओं में कवि ने अपने प्रियतम का स्पर्श करना चाहा है। अगले गीत में कवि पुरोधा है। वह समिधाएँ एकत्र करके आग सुलगाने का प्रयत्न कर रहा है। अभी इससे धुआं उठ रहा है, परन्तु वह धुआं देखना नहीं चाहता, वह तो ज्वाला के तीर छोड़कर अग्नि जलाना चाहता है—

सुलगती नही यज्ञ की आग,
दिशा धूमिल, यजमान अधीर।
पुरोधा कवि कोई है यहाँ,
देश को दे ज्वाला का तीर।

यहाँ अग्नि को निमत्रण देने वाला स्वय कवि है। उसने अपने-आपको 'अमर विभा का दूत' और 'धरणी का अमृतकलशवाही' कहा है। एक दिन चन्द्र ने मानव को चुनौती देते हुए कहा कि मानव का स्वप्न क्षणिक है, एक बुलबुला है। मानव बोल उठा कि मानव की कल्पना की रसना में धार और उसके स्वप्न में तलवार होती है। बुलबुला कहना मानव का घोर अपमान करना है। कवि की रागिनी तलवार की धार है, वह नव-निर्माण करने आई है—

मनु नही, मनुपुत्र है, वह सामने जिसकी,
कल्पना की जीभ में भी धार होती है।
बाण ही होते विचारो के नही केवल,
स्वप्न के भी हाथ में तलवार होती है।

'प्रतिकूल' कविता में कवि ने चारों ओर प्रतिकूलता देखी। वह चाहता था कि मानव को देवता बना सके, इसीलिए उसने अम्बर को

छोडकर धरा का गान गाया था। परन्तु अनुभव ने सिद्ध कर दिया कि देवता बनने के लिए मानव को तपस्या करनी होगी। वह कहता है—

मृत्तिका, तिलक लेकर प्रभु का आदेश मान,
मैंने अम्बर को छोड धरा का किया गान।
मानव की पूजा की, मैंने सुर के समक्ष,
नर की महिमा का लिखा पृष्ठ नूतन वलक्ष।
मैंने न सुयश की भीख माँगते किया गान।
थी चाह कि मेरा स्वप्न कभी हो मूर्तिमान्।

सामधेनी की कविताओ में आग की भीख, जवानियाँ और 'साथी' विशेष स्थान रखती हैं। इनमें आग की ज्वाला धधक रही है, बलिदान की भावना काम कर रही है। इन रचनाओं में 'हुकार' की-सी प्रवृत्ति पाई जाती है। 'दिल्ली और मास्को' में साम्यवाद तथा उसकी जन्मभूमि 'रूस' पर हृदयोद्गार प्रकट किये हैं। 'जयप्रकाश' भी एक प्रशस्तिकाव्य है जो इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। 'आग की भीख', 'जवानियाँ' और 'साथी' ये तीनो रचनाएँ उर्दू के ढग पर हैं। कवि भगवान् से आग की भीख माँगता है ताकि वह ससार के अंधकार को दूर कर सके। वह तूफान, भूचाल, विस्फोट और अगारों की भीख माँगता है। पढ़िए—

दाता पुकार मेरी, सदीप्ति को जिला दे,
बुझती हुई शिखा को, सजीवनी पिला दे।
प्यारे स्वदेश के हित अगार माँगता हूँ,
चढती जवानियो का शृगार माँगता हूँ।
उन्माद, बेकली का उत्थान माँगता हूँ,
विस्फोट माँगता हूँ, तूफान माँगता हूँ।

और भी—

हम दे चुके लहू हैं, तू देवता विभा दे,
अपने अमल विशिख से आकाश जगमगा दे।

प्यारे स्वदेश के हित वरदान माँगता हूँ,
तेरी दया विपद में भगवान् माँगता हूँ।

'दिल्ली और मास्को' कविता में कवि ने साम्यवाद में श्रद्धा और भारतीयता में विश्वास—इन दोनो को गगाजमुनी के रूप में देखा है। भारत ने तो साम्यवाद का सिद्धात अपना ही लिया है, परन्तु मास्को के वीरों को भी दिल्ली की स्वतत्रता के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए था। जो दिल्ली—

दिल्ली, आह कलक देश की,
दिल्ली, आह ग्लानि की भाषा।
दिल्ली, आह, मरण पौरुष का,
दिल्ली, छिन्न भिन्न अभिलाषा।
विवश देश की छाती पर, ठोकर की एक निशानी।
दिल्ली पराधीन भारत की जलती हुई कहानी।

कवि ने 'जयप्रकाश' के सबध में सुन्दर प्रशस्ति लिखी है, देखिए—

है 'जयप्रकाश' वह जो कि पगु का चरण, मूक की भाषा है,
है 'जयप्रकाश' वह टिकी हुई जिस पर स्वदेश की आशा है।
हाँ, 'जयप्रकाश' है नाम समय की करवट का, अँगडाई का,
भूचाल बवडर के ख्वाबो से, भरी हुई तरुणाई का।
वह सुनो भविष्य पुकार रहा, यह दलित देश का त्राता है,
स्वप्नो का द्रष्टा 'जयप्रकाश' भारत का भाग्य-विधाता है।

धूपछाँह—दिनकरजी का यह बालोपयोगी कविता-सग्रह सन् १९४६ में प्रकाशित हुआ था। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी बँगला में शिशु और किशोर बालकों के लिए अत्यन्त सुरुचिपूर्ण साहित्य प्रस्तुत किया था जो बँगला भाषा की विभूति बन गया है। हिन्दी भाषा में अभी बालोपयोगी साहित्य का नवाकुर ही उत्पन्न हो रहा है। अयोध्यासिह

उपाध्याय ने इस दिशा में कुछ लिखा है परन्तु प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी-जैसे महान् कवियो ने इस विषय की सर्वथा उपेक्षा की, जो आज तक खटक रही है। बच्चे राष्ट्र की अतुल सम्पत्ति हैं। उन्हे समय पर मिली हुई भावनाएँ कभी-कभी अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होती हैं। अत. उनके लिए भी उन्हें अवश्य लिखना चाहिए था। यही सोचकर दिनकरजी ने 'धूपछाँह' लिखा। इसमें केवल ६ कविताएँ मौलिक हैं, शेष छायानुवाद प्रतीत होती हैं। मौलिक रचनाओ में 'शक्ति या सौन्दर्य' तथा 'कलम और तलवार' महत्वपूर्ण हैं। 'पुस्तकालय' शीर्षक कविता में भी पुस्तकों के महत्त्व पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। कवि ने 'दो शब्द' में कहा है कि 'धूपछाँह' में धूप कम और छाया अधिक है। इसका यही अभिप्राय है कि कवि ने दूसरों की छाया लेकर संग्रह किया है अन्यथा दिनकर की रचना में यदि 'धूप' न हो तो फिर कहाँ हो? कवि कहता है—"हमारे किशोर रजनी के चाँद न बनें, दिन के प्रचण्ड मार्तण्ड बनें।" वह कहता है—

सचित करो लहू, लोहू है
जलता सूर्य जवानी का।
धमनी में इससे बजता है,
निर्भय तूर्य जवानी का।
कौन बडाई उस नद की,
जिससे न उठी उत्ताल लहर।
आँधी क्या, उनचास हवाएँ,
उठी नही जो साथ हहर।
सिन्धु नही सर कहो उसे,
चचल जो नही तरगो से।
मुर्दा कहो उसे, जिसका दिल,
व्याकुल नही उमगो से।

'क़लम' के विषय में कवि लिखता है—

कलम देश की बड़ी शक्ति है, भाव जगाने वाली,
दिल ही नहीं, दिमागों में भी, आग लगाने वाली।
पैदा करती कलम विचारों के जलते अंगारे,
और प्रज्वलित प्राण देश क्या कभी मरेगा मारे।

अनूदित रचनाओं में 'पानी की चाल', 'तन्तुवाय' और 'दो बीघा ज़मीन' सुन्दर एवं भावपूर्ण हैं।

सर्वाङ्गीण आलोचना

हमने दिनकरजी की प्रमुख रचनाओं के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डालने का भरसक प्रयत्न किया है। आपने रेणुका (१९३५), हुंकार (१९३८), द्वन्द्वगीत (१९४०), रसवन्ती (१९४०), कुरुक्षेत्र (१९४६), रश्मिरथी (१९५२), धूप और धुआँ (१९५२) लिखे हैं। शेष रचनाओं के विषय में भी प्रकाश डाला जा चुका है। वास्तव में प्रत्येक रचना अपने में पूर्ण है। यह भ्रम है कि 'रेणुका' और 'हुंकार' के बाद दिनकर में शिथिलता आ गई या वह पथभ्रष्ट हो गया। नहीं, कदापि नहीं। जब वह 'मिथिला में शरत्' आदि रचनाएँ माधुर्य-पूर्ण लिख चुका है तब 'रसवन्ती' को देखकर उद्भ्रान्त होने की क्या आवश्यकता है? इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं कि दिनकरजी का प्रमुख विषय क्रान्ति है। वे समस्त राष्ट्र मे विषमता के विरोधी हैं, दरिद्रता के संहारक हैं, अनाचारों के लिए त्रिनेत्र दृष्टि ही नहीं रखते अपितु 'कुरुक्षेत्र' द्वारा उनके सर्वथा विध्वंस की प्रेरणा करते हैं। 'रेणुका' और 'हुंकार' में उन्होंने राष्ट्रीय जागरण तथा देश की दरिद्रता का प्रभावपूर्ण वर्णन किया है। 'रसवन्ती' में मधुर और सरस रचनाओं का स्रोत उमड़ रहा है। 'द्वन्द्वगीत' में अनेक द्वन्द्वों का सचित्र वर्णन हुआ है। 'बापू-दर्शन' में महात्मा गान्धी के प्रति अनन्य भक्ति का प्रदर्शन किया गया है, उन्हें

युगावतार तथा युगाधार कहा गया है, भूगोल का देवता तक कहा गया है। 'धूप-छाँह' में कुछ रचनाएँ बालकोपयोगी भी रची गई हैं। इस प्रकार दिनकर जी ने अपने साहित्य में एक अद्भुत चिनगारी भर दी है जो पाठको को समय-समय पर उद्बोधन करती रहेगी।

श्री व्रजकिशोर चतुर्वेदी भाषा-सम्बन्धी समीक्षक हैं। उन्होने 'आधुनिक कविता की भाषा (प्रथम खड)' में आपके भाषा-शैथिल्य के संबंध में भी कुछ सकेत किये हैं। वे लिखते हैं—'हरे हुए दिल के फोले' यहाँ 'फफोले' शब्द प्रयुक्त होना चाहिए था। उनकी दृष्टि में आपका 'याकि' शब्द बहुत ही खटक रहा है 'फूट रहे बुलबुले याकि मेरे दिल के छाले' 'या तो बांधो हृदय फूल से याकि इसे आजाद करो' यहाँ 'याकि' के स्थान पर या, वा, अथवा, कोई ऐसा शब्द प्रयोग करना चाहिए था। इसके वाद चतुर्वेदीजी आपकी 'चू' पर बहुत चिढ रहे हैं। आपने कविता में लिखा है 'दृग से पडता यह चू क्या है ?' चाहिए तो यह था, 'दृग से यह क्या चू पडता है ?' चिढकर चतुर्वेदी ने आपकी 'चू-चू' का खाका खींचा है। वे लिखते हैं—

मैं नहीं जानता था अब तक,
तुक-वदी में 'हा हू' क्या है ?
द्वन्द्वगीत की 'हँसी हँसी' पढ,
समझा यह 'चू चू' क्या है !!

चतुर्वेदी जी ने तो बहुत कुछ लिखा है, परन्तु हमने जानबूझ कर दिङ्मात्र सकेत किया है। हम समझते हैं, जब मनुष्य जोश में होता है, तो यह शब्द क्या, बहुत कुछ अस्त-व्यस्त कह डालता है, वीर रस में सभी उपयुक्त है।

निस्सदेह दिनकर आज के युवकों के कर्णधार हैं, भारत की नैया के नाविक हैं। देश का पतन अभी कई दिनकर पैदा करेगा, तब इसकी बुराइयां नष्ट होंगी। देश की दरिद्रता ने एक दिनकर उत्पन्न किया है। अभी अनेक गर्त हैं, जिन्हें भरने के लिए कई दिनकर चाहिएं।

माखनलाल चतुर्वेदी

परिचय

श्री चतुर्वेदी जी का जन्म सं० १९४५ में मध्यप्रान्त के होशगाबाद ज़िले में हुआ। इनके पूर्वज जयपुर राज्य के निवासी थे। माधवराव सप्रे के सहयोग से इन्होंने साप्ताहिक 'कर्मवीर' नाम के एक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। तत्पश्चात् आपने 'प्रताप' तथा 'प्रभा' का भी सम्पादन किया। अब फिर से आप 'कर्मवीर' पत्र का ही सम्पादन तथा प्रकाशन कर रहे हैं। आप क्रान्तिकारी विचारों के अत्यन्त भावुक भक्त एवं वयोवृद्ध सेनानी हैं। आपकी वाणी में ओज भी है, कड़क भी है और एक अपूर्व उत्साह भी भरा हुआ है। देशभक्ति और वीरता ही आपका सर्वस्व है। 'अखिल-भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' के हरिद्वार अधिवेशन के आप सभापति चुने गये थे। यद्यपि आपकी रचनाएं परिमाण में स्वल्प हैं, तथापि अपनी उत्कृष्टता के कारण वे साहित्य में परम आदर की दृष्टि से देखी जाती हैं। आपने जनता की मानसिक धारा और राष्ट्रीय चेतना को अत्यन्त ओजस्वी शब्दों में व्यक्त किया है। आपने राष्ट्रीय प्रेम-सम्बन्धी, सौन्दर्य-विषयक तथा रहस्यात्मक, तीनों प्रकार की कविताएँ लिखी हैं।

'पुष्प की अभिलाषा' शीर्षक देशभक्ति-सम्बन्धी कविता अत्यन्त प्रसिद्ध है। चतुर्वेदी जी भाषा, शैली तथा विषय आदि सभी दृष्टियों से सर्वथा मौलिक हैं। आपकी छायावादी तथा रहस्यवादी रचनाओं में अभिव्यंजनात्मकता और लाक्षणिकता की प्रधानता पाई जाती है। कृष्ण मन्दिर (जेलखाना) में रहकर आपने अपनी देशभक्ति और कृष्णभक्ति का

क्रियात्मक परिचय दिया है। जैसाकि पहिले से ही कहा जाता है कि चतुर्वेदीजी आज के युग की नवीन धारा के प्रथम कवि हैं। आपकी निम्नलिखित रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं—'हिमकिरीटिनी', 'हिमतरंगिणी' (कविता-संग्रह); 'कृष्णार्जुन-युद्ध' (नाटक); 'साहित्यदेवता' (गद्यकाव्य) और 'वनवासी' (कहानी-संग्रह)।

इसके अतिरिक्त 'बलिदान', 'उन्मूलित वृक्ष', 'सिपाही', 'मरणत्यौहार' आदि आपकी उत्कृष्ट राष्ट्रीय रचनाएं हैं। आप अपनी कविताओं में 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से सुप्रसिद्ध हैं। आपकी 'हरियाली की घड़ियाँ' कितनी मनोहारिणी है—

कौन सी हैं मस्त घड़ियाँ चाह की, हृदय की पगडडियो की राह की।
दाह की ऐसी कनक सुन्दर बने, मौन की मनुहार की है आह की।
भिन्नता की भीत सहसा फांद कर, नैन प्राय जूझते लेखे गये।
बिनु सुने, हँसते चले, चलते हुए, विन बुलाये बूझते देखे गये।

हिमतरंगिणी—श्री माखनलालजी चतुर्वेदी की कविताओं का यह प्रसिद्ध सग्रह है। इसमें कुल ५५ कविताएँ हैं। इस संग्रह के सम्बन्ध में, हम स्वयं विशेष न लिखते हुए चतुर्वेदीजी के 'दो शब्दो को ही दुहरा देते हैं, जिनसे 'हिमतरंगिणी' का वास्तविक स्वरूप स्वय प्रकट हो जाता है। वे लिखते हैं—"मेरे जीवन-का कुछ 'कभी-कभी' यह संग्रह बनकर पाठकों के हाथों में जा रहा है। इसे निर्माल्य जानकर, युग-रुचि के चरणों में कांटा-सा कुछ गड़ न जाय, अतः इसे बरसों रोक रखा। इनमें से एक-दो तुकवन्दियां बीस बरस पहले जब एक सामयिक में छप गई थीं तब एक सज्जन ने मेरी लिखास और युग की धारणा की दूरी को इन शब्दो में मुझे लिखा था : 'तुम्हारे काव्य को तो यार तुम्हीं लिखो तुम्हीं पढ़ो', तब भी मैं लिखता क्यो गया ? मेरे निकट तो यह 'परम सत्य' है। आज भी वे क्षण, वे उतार-चढ़ाव, वे आंसू, वे उल्लास, वे जीवन-मरण मेरे निकट खडे-से हैं, यही क्षण थे। जब मैं युग से हाथ जोड़कर मन-ही-

मन कहता था—कभी-कभी मुझे अपना भी रहने दो"—पूजागीत कहो जाने की उम्मीदवार इन तुकबन्दियों की भी यही दुर्गति हुई। ये गीत पूजा रहे नहीं, प्रेम बने नहीं, अत यह निर्माल्य शिखर की ऊँचाई से भागते हुए 'निमग्न' हो गये और 'हिमतरगिणी' नाम पा गये। प्रलय की आग होती तो ऊपर को सुलग कर भड़कती, 'पानी' थे कि ढालू जमीन ढूँढते चल पड़े नीचे स्तर की ओर।

चतुर्वेदीजी की कविताओं के इस सग्रह के सम्बन्ध में और अधिक परिचय की कुछ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

एक पद्य में आप प्रभु से व्यग्य कर रहे हैं—

'तू ही क्या समदर्शी भगवान्,
क्या तू ही है अखिल जगत् का न्यायाधीश महान् ?
क्या तू ही लिख गया, वासना दुनिया में है पाप ?
फिसलन पर तेरी आज्ञा से, मिलता कुम्भीपाक ?
फिर क्या तेरा धाम स्वर्ग है, जो तप-बल से व्याप्त,
होती है वासना पूरिणी, वही अप्सरा प्राप्त।
क्या तू ही देता है जग को, सौदे में आनन्द,
क्या तुझ से ही पाते हैं, मानव सकट दुख-द्वन्द्व।
क्या तू ही है जो कहता है, सम सब मेरे पास,
किन्तु प्रार्थना की रिश्वत पर, करता शत्रु-विनाश।

अर्थात् कवि प्रभु को व्यग्य-वचन सुनाता हुआ कहता है कि हे भगवान्! तुझे कोई क्यों समदर्शी कहता है, और तुझे सारे ससार का न्याय करने वाला भी क्यों कहा जाता है, जबकि तूने ही इस ससार के पाप और वासनाओं का विकास किया है और ऐसी दशा में उनसे कुछ चूक हो जाने पर तुम्हीं तो उन्हें 'कुम्भीपाक' नरक में डाल देते हो। यह भला कहाँ का न्याय है कि पहले तो पाप उत्पन्न करो और फिर पाप

करने वालो को नरक में डालो। और फिर तुम्हारा स्वर्ग भी कैसा है, जिसमें इतनी कठिन तपस्या का परिणाम वासना को पूर्ण करनेवाली अप्सरा के रूप में ही प्राप्त होता है। तू ही तो मनुष्य को भक्ति के वदले में सौदा करके उसे आनन्द प्रदान करता है और तू ही तो हमें दुःख देता है। यूँ तो तू कहता है कि मेरे लिए सब समान हैं पर जब तुझे कोई प्रार्थना की रिश्वत दे देता है तो तू उसके शत्रुओ को मार डालता है।

जब कवि जेल के सींखचो में बंद पडा था तब कवि ने कहा था—

पत्थर के फर्श कंगारो में, सीखो की कठिन कतारो में,
खभो लोहे के द्वारो मे, इन तारो में दीवारो में,
कुण्डी, ताले, सन्तरियो में, इन पहरो की हुकारो में,
गोली की इन बौछारो में, इन वज्र वरसती मारो में,
इन सुर-शरमीले, गुणगर्वीले, कष्ट-सहीले वीरो मे,
जिस ओर लखूँ तुम ही तुम हो, प्यारे इन विविध शरीरो में।

अर्थात् कवि जेल के वातावरण में भी अपने ही प्रियतम की सर्वत्र झलक पा रहा है। उसे प्रत्येक वस्तु में उसी के दर्शन होते हैं। कविता में उन्हीं वस्तुओ की गणना की गई है।

हिम-किरीटिनी—श्री चतुर्वेदीजी की 'हिमकिरीटिनी' वड़े ऊँचे भावों से भरी हुई है। राष्ट्रीय काव्य-ग्रन्थो में 'हिमकिरीटिनी'-जैसे उच्चभाव अभी तक अन्य ग्रन्थो में देखने को नहीं मिले। आपकी 'कैदी और कोकिला' शीर्षक कविता भी वहुत अच्छी है। उसका कहीं-कहीं भाषा-प्रवाह भी अत्यन्त सुन्दर है। उसमें क़ैदी और कोकिल की अवस्था की तुलना करते हुए कवि कहता है—

तेरा नभ-भर में सचार।
मेरा दस फुट का ससार।

देख विषमता मेरी तेरी,
बजा रही तिसपर रण-भेरी ।

इसे सुनकर हृदय पर एक ऐसा प्रभाव होता है, जिसे वर्षों तक हटाया नहीं जा सकता। परन्तु कहीं-कहीं भाषा में बडी भारी अस्तव्यस्तता दिखाई पडती है जिसपर श्री बृजकिशोरजी चतुर्वेदी को बडा तरस आ रहा है। जैसे—

हूँ मोट खीचता, लगा पेट पर जूआ,
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड का कूआ।

इस पद में रेखांकित शब्दों को पढकर उन्हें निम्नलिखित पंक्तियाँ याद आ रही हैं—

'हिन्दी कविता में, बडा भला यह हूआ,
तुम अब लिख सकते, छूआ, दूआ, सूआ ।

इसी प्रकार 'अमरराष्ट्र'-सम्बन्धी कविता बडी अच्छी है। उसमें एक स्थान पर लिखा है—

जिस रस में कीडे पडते हो,
उस रस पर विष हँस हँस डालो ।

चतुर्वेदीजी कहते हैं कि इसमें क्या विशेषता है कि जिस रस में कीडे पड रहे हैं, वह विष के समान तो है ही, फिर उसमें विष डालने की आवश्यकता ही क्या है ?

कहीं-कहीं संस्कृत-उर्दू और कहीं-कहीं संस्कृत-ग्रामीण-मिश्रित प्रयोग एक ही पंक्ति में मिल जाते हैं। जैसे—

"जिसके स्नेह-जोर से, आँखें प्रलयकारिणी मीचे ।"

रेखांकित पदों से उपर्युक्त कथन की पुष्टि हो ही रही है। एक स्थान पर लिखा है—

सद्य स्नाता भू-रानी के गोद-भरे अहसान ।

ये रेखांकित पद भी दर्शनीय हैं ।

इन्हें देखकर एक सज्जन ने लिख डाला—

'सद्यःस्नाता भू-रानी के, गोद-भरे अहसान,
'हिमकिरीटिनी' में देखो 'उर्वर-ज़रखेज़ मिलान ।

इसी प्रकार—

'अन्तस्तल का सौदा,
आमिषपूर्ण मसौदा ।'

सर्वाङ्गीण आलोचना

चतुर्वेदीजी की कविताओं को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) राष्ट्रीय, (२) प्रेमसम्बन्धी, (३) रहस्यवादी या छायावादी । 'पुष्प की अभिलाषा'-जैसी महत्त्वपूर्ण रचनाएं राष्ट्रीय कही जा सकती हैं। और 'कुंजकुटीरे यमुनातीरे' तथा 'लूंगी दर्पण छीन' आदि कविताएं 'प्रेमभाव' की आभा से आभासित हो रही हैं। ऐसी कविताओं की संख्या पर्याप्त है ।

इनकी रहस्यवादी कविताओं में सीम-असीम, शेष-अशेष, आत्मा-परमात्मा और व्यक्त-अव्यक्त, ये द्वन्द्वभाव दिखाई पडते हैं। इन रचनाओं में इनकी भाषा भी क्लिष्ट हो गई है और रहस्यवादी भाव में भी दुरूहता आ गई है। आपकी भाषा में उर्दू-शब्दों का अधिक प्रयोग पाया जाता है, जो श्री वृजकिशोरजी चतुर्वेदी तथा प्रत्येक साहित्य-रसिक की दृष्टि में खटकता है ।

आपकी 'स्मृति के मधुर वसन्त' रचना अत्यन्त सुन्दर है। भाषा तथा भाव की दृष्टि से इसका विशेष आदर है। देखिए—

तरु - अनुराग, साधना - डाली,
लिपटी प्रीति-लता हरियाली।
विमल अश्रु-कलिकाएँ उन पर।
तोडूंगी ऋतुराज, उभारो।

इस रचना में प्रत्येक पद नगीने की तरह जडा हुआ है, कोई कहीं से हटाया नहीं जा सकता। फिर अलकार की दृष्टि से भी 'समस्त-वस्तु-विषयक साङ्ग रूपक' है। अर्थात् 'प्रीति-लता' 'तरु-अनुराग' की 'साधना-डाली' से लिपटी हुई है। और 'अश्रु-कलिका' में भी निरङ्ग-रूपक है। इसी प्रकार 'जवानी' में भी कैसी मधुर एव उत्साहवर्द्धिनी भावना के दर्शन हो रहे हैं। देखिए—

वही कली के गर्भ से, फल रूप में, अरमान आया।
देख लो मीठा इरादा किस तरह, सिर तान आया।
डालियो ने भूमिरुख लटका दिये फल, देख आली!
मस्तको को दे रही, सकेत कैसे वृक्ष-डाली।
फल दिये, या सिर दिये, तरु की कहानी।
गूंथ कर युग में, बताती चल जवानी।

इस प्रकार चतुर्वेदीजी की राष्ट्रीय भावनाओं ने काव्य-जगत् में एक नवीन क्रान्ति पैदा कर दी है। वह युग शीघ्र आ रहा है, जब इन भावनाओं का मानव-समाज में अधिकाधिक गौरव माना जायगा।

इसी प्रकार आपकी कहानियों में भी सामान्य प्रतिभाओं का सुन्दर विकास पाया जाता है। उनकी नैतिक शिक्षाओं में मानवता का आभास स्पष्ट दीख पडता है।

आपका 'कृष्णार्जुन-युद्ध' अत्यन्त रोचक शैली से लिखा गया है। इसका हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर सफल अभिनय भी किया जा चुका है। आपने एक ही नाटक लिखकर नाट्य-जगत् में अमर कीर्ति प्राप्त कर ली है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

परिचय

हिन्दी-आयोग के सम्माननीय सदस्य, सुप्रसिद्ध कवि श्री पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' हिन्दी के इने-गिने महारथियो में से हैं। साहित्य-जगत् में आपका नाम चिरकाल से विख्यात है। काव्य-क्षेत्र में आपका एक विशिष्ट स्थान है। वाद-विवाद के चक्करो से दूर रहकर आपने व्रजभाषा तथा खडीबोली दोनो में पर्याप्त साहित्य-सेवा की है। दोनों भाषाओ पर आपका अधिकार है। अखिल-भारतीय व्रजभाषा-सम्मेलन तथा प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलनों की आप अध्यक्षता भी कर चुके हैं। सत्य बात तो यह है कि आपका अधिकांश जीवन स्वतन्त्रता-सग्राम में जूझते हुए बीता है। साहित्य-साधना के लिए जिस अवकाश और निश्चिन्तता की आवश्यकता होती है वह आपको बहुत कम प्राप्त हुई है।

नवीनजी स्वतन्त्रता-सग्राम के एक माने हुए सिपाही रहे हैं। आपने अपनी अनेक कविताएँ जेलों में ही लिखीं। राष्ट्रीय राजनैतिक सघर्ष से कुछ अवकाश पाते ही आपको कविता लिखने का समय मिला।

आपके अनेक ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित हैं जिस कारण आपकी साहित्य-साधना का पूरा चित्र हमारे सामने नहीं आ सका। जो पुस्तकें अभी-अभी प्रकाशित हुई हैं उनमें भी आपकी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ नहीं आ रही हैं। जिन रचनाओ ने राष्ट्र के जीवन में एक नई चेतना, नया जीवन और जोश भर दिया वे भी इनमें नहीं हैं, जो पुस्तकें आपके मित्रों और भक्तों के प्रयत्न से अब तक प्रकाश में आ सकी हैं उनके नाम हैं—कुंकुम, अपलक, रश्मिरेखा, क्वासि और विनोबा-स्तवन आदि।

आपका 'विस्तृत उर्मिला' महाकाव्य भी प्रकाशित हो गया है। इसमें उर्मिला का चरित्र-चित्रण विचित्र ढग से किया गया है। उर्मिला को निराशावाद का प्रतीक बनाकर कवि ने अपने हृदय के भाव व्यक्त किये हैं। कला की दृष्टि से यह महाकाव्य कुछ अधिक सफल नहीं हो सका। स्फुट कविता में यद्यपि आप सर्वथा सफल हैं पर महाकाव्य में आप वैसे नहीं उतर सके।

सामयिक कविताओं में 'विप्लव-गान' सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसमें तो कवि इतना मस्ताना हो गया है कि समस्त ससार की व्यवस्था को ही नष्ट-भ्रष्ट करना चाहता है। इस कविता में ओज-बल है, भाषा, वेग और कल्पनाओं में भीषणता है। 'पराजय-गीत' भी एक ओजस्विनी रचना है। इसमें भी हृदय की उथल-पुथल और जीवन की जागृति है। 'उन्माद' कविता में एक कुचले हृदय की मार्मिक कहानी है, जीवन की तडप है। कवि को न सुख की चाह है और न दुःख की ही। वह तो एक फक्कड सन्त है। 'विषपान', 'यौवन-मदिरा' और 'विदिया' में मादकता और मधुरता दोनों का ही स्रोत प्रवाहित हो रहा है। कवि रोना चाहता है। देखिए—

टुक रो लेने दो जरा देर, क्यो छेड रहे हो बेर बेर
आँखो का नशा उतरता है।
झरना अब झर झर झरता है।

कवि रोने को व्यथा-स्रोत समझता है। कवि अपने नशे में चूर रहना चाहता है। यह नशा ही यौवन है। इसमें सदेह नहीं कि नवीनजी एक मनमौजी व्यक्ति हैं, इसलिए इन्हें अपनी कविताएँ संभालकर रख सकना भी असम्भव था। भला हो श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी का, जिन्होंने आपकी रचनाओं के प्रकाशन का भार उठाया, अन्यथा ये रचनाएँ भी अन्धकार में ही पडी रहतीं। परन्तु सबसे बडी सेवा जो आपने की है, वह है अनेक उदीयमान कवियों और साहित्यकारों को क्षेत्र में अग्रसर

करना। यह साधारण बात नहीं है। इस काम में आपकी शक्ति और समय सभी लगा है। श्री रामगोपालजी चतुर्वेदी लिखते हैं—"मैंने देखा है, कि उनके घर पर मिलनेवालों का ताता कभी टूटता नहीं, यह क्रम सुबह से ही शुरू हो जाता है। असल बात यह है कि वह दाता ही क्या जिसके घर भीड न लगी रहे। लोग बुलाने पर भी नहीं पहुँच पाते। फिर उनके घर पर ऐसा रोज ही होता है, इसका मूल कारण उनके स्वाभाविक गुण हैं जो इस युग में उत्तरोत्तर विलीन हो रहे हैं, उनके सहज स्नेह और हृदयग्राही व्यवहार की जितनी भी प्रशसा की जाय, थोड़ी है।" नवीनजी की दानशीलता ही उनके महान् व्यक्तित्व का मूल आधार है। दान से अभिप्राय यह है कि उन्होने अपना सर्वस्व सदा दूसरों को समर्पित कर दिया। ऐसे मनुष्यो की भी एक बड़ी भारी सख्या है कि जिनकी समय-समय पर नवीनजी ने आर्थिक सहायता की। 'नेकी कर कुएँ में डाल' वाली कहावत आपने चरितार्थ की। इतने पर भी आपने अपनी जिह्वा से कभी आत्म-प्रशसा नहीं की। जो-कुछ हम सुन पा रहे हैं वह सब दूसरों की जवानी। इस बात को बहुत कम लोग जानते हैं कि आपने कितने नौसिखियों अथवा तुक्कड़-कवियों के लिए अपना समय, शक्ति और साधन व्यय किया। यह स्वभाव उन्हे बहुत ही मँहगा पड़ रहा है; क्योंकि अपने काम के लिए उन्हें अवकाश नहीं मिल पाता। सबसे बड़ी बाधा भी आपकी साधना में यही है। फिर भी कुछ समय निकालकर आपने जो-कुछ लिखा है विद्वानों ने उसकी गणना भी साहित्य में की है। यहाँ उसका कुछ निर्देश करना असंगत न होगा। कई वर्ष हुए, नवीनजी का सर्वप्रथम कविता-संग्रह 'कुंकुम' प्रकाशित हुआ था। 'कुकुम' में नवीनजी राष्ट्रीय कवि के रूप में चमके थे, यद्यपि जीवन और जवानी के मधुर गीतो का भी उसमें समावेश हुआ है। हमें नवीनजी के गीतकार होने का परिचय उनके तीन सग्रहों से मिलता है। एक 'रश्मिरेखा' जो १९५१ में प्रकाशित हुआ, और शेष दो 'अपलक' १९५२ और 'क्वासि' १९५३ में प्रकाशित

हुए। इन तीनो सग्रहों में कुल २०० गीत हैं, अभी लगभग १०० गीत शेष हैं। इन ३०० गीतो के आधार पर नवीनजी हिन्दी के मधुर गीतकारो में प्रतिष्ठित हो गये हैं।

इन गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे आध्यात्मिक चिन्तन और अनुभूति की सरसता के साथ ललित और गेय शैली में पाठकों के सामने प्रस्तुत हुए हैं। निस्सदेह नवीनजी के गीतों में पार्थिव अनुभूतियाँ प्रधान और अपार्थिव सकेत गौण हो गये हैं, परन्तु रसात्मकता उच्चकोटि की होने के कारण उनके गीत मन की गहराई को छूते हैं। अधिकाश गीतों में अपार्थिवता का आभास है जो पाठक को मुग्ध भी करता है और उदात्त भाव-भूमि तक घसीट ले जाता है।

गीतों में जहाँ रस-निष्पत्ति गौण और चिन्तन प्रधान हो गया है, वहाँ नवीनजी पूर्ण सफल नहीं हो सके, परन्तु यह कम गीतों में देखा गया है। नवीनजी की काव्य-साधना के अन्दर जीवन और जगत् की नित्य-प्रति की हलचल का समावेश है। नवीनजी की अभी-अभी प्रकाशित पुस्तक 'विनोबा-स्तवन' में सन्त विनोबा के जीवन और कार्यों को एक विचारशील और भावुक कवि की दृष्टि से वर्णन किया गया है। 'विनोबा-स्तवन' में सवेदनशील कवि 'नवीन' ने आज के युग की एक महान् विभूति और उसके महान् यज्ञ 'भूदान' को समझाने और व्यक्त करने का बड़ा ही सफल प्रयास किया है।

आपका 'उर्मिला' नामक महाकाव्य, जिसके सबंध में पहले लिखा जा चुका है, हिन्दी साहित्य की वृद्धि करेगा, इसमें कोई सदेह नहीं। इसके अतिरिक्त एक 'प्राणार्पण' नामक खडकाव्य भी आपने लिखा है जिसमें अमर शहीद, श्रद्धेय गणेशशकर विद्यार्थी के बलिदान की अमर कथा का आश्रय है। इसके अतिरिक्त दार्शनिक, राष्ट्रीय एव महात्मा गाधी सम्बन्धी कविताओं के भी सग्रह हैं। दोहों और स्फुट (फुटकर) कविताओं के तीन सग्रह अभी और प्रकाशित होनेवाले हैं। हमें

पूर्ण आशा है कि इन सब संग्रहों के प्रकाशित हो जाने के पश्चात् ही, हिन्दी-साहित्य के मर्मज्ञ पाठकों को नवीनजी का पूर्ण परिचय प्राप्त हो सकेगा।

हमें यह लिखने में भी संकोच नहीं कि नवीनजी की काव्यभाषा अटपटी और आपका शब्द-चयन बीहड़ है। उर्दू और ब्रजभाषा के शब्दों को यत्रतत्र अपनाया गया है। शैली अतिरंजित है। अधिक रूपकों का प्रयोग करके शैली को बिगाड़ दिया गया है; कुछ कृत्रिमता-सी आ गई है। फिर भी आपकी कविताओं में मादकता है। यह आपकी रचनाओं की विशेषता है कि उनमें हूक और टीस की चिनगारियाँ भरी हुई हैं।

नवीनजी वास्तव में प्रगतिवादी एवं क्रान्तिकारी कवि हैं जिन्होंने संसार की विषम एवं रूढ़िग्रस्त परम्परा को समूल नष्ट करने का संकल्प किया है। पुरानेपन को मिटाकर नवीनजी नवीनता पैदा करना चाहते हैं, इसलिए इन्हें पुरानेपन से चिढ़ है। आप 'गतानुगति' के पूर्ण विरोधी हैं। आपकी रचनाओं में निस्संदेह आग-सी बरसती है, ओजस्विता का मानो नग्ननृत्य हो रहा है।

सामान्य जन-जीवन को सुखी बनाने की चेष्टा में प्रायः आप अपनों की भी उपेक्षा कर जाते हैं। वास्तव में आप अपनी धुन के धनी हैं।

हिन्दी-साहित्य आप-जैसे वीर कर्मठों का सहयोग पाकर अदम्य उत्साह से कार्यक्षेत्र में प्रतिपल बढ़ता ही जा रहा है। आपकी ओजस्विनी रचनाएँ एक बार तो कायर की धमनियों में भी उष्ण रक्त का संचार कर देती हैं। आज के युग के लिए तो आप-जैसे भावुक एवं अनुभवी कर्मवीरों की आवश्यकता है जो अपने उत्साह, पुरुषार्थ एवं वज्रमयी गंभीर गर्जना से विरोधी-दल के हृदयों को भी कम्पायमान कर दें। आज के युग की सहायता करते हुए नवीनजी दीर्घायु बने रहें, यही कामना है।

रचनाएँ

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की निम्नलिखित रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। कुकुम, अपलक, रश्मिरेखा, क्वासि, विनोबास्तवन, प्राणार्पण (खंड-काव्य), उर्मिला महाकाव्य आदि।

कुंकुम—इस संग्रह में नवीनजी के राष्ट्रीय जीवन और यौवन के मधुर मादक गीतों का रूप पाया जाता है। राष्ट्रीय गीतों से ही आपको विशेष प्रसिद्धि हुई है। आपके राष्ट्रीय गीतों में एक प्रकार की मादक शक्ति की उद्भावना पाई जाती है जो देश-प्रेम और देश-भक्ति की ज्वलन्त प्रेरणाओं से ओतप्रोत है तथा जिनके सुनते ही वृद्धों की धमनियों में भी एक बार फिर से उष्ण रक्त का संचार होने लगता है। नवयुवकों की भुजाएँ कुछ कर सकने के लिए फड़क उठती हैं, परतंत्रता की बेड़ियों को नष्ट करने के लिए उन्मत्त हो जाती हैं, युवकों को बलिवेदी पर हँसते-हँसते चढ़ने के लिए उभार देती हैं।

'कुंकुम' मानो वीरों का भालभूषण है। उन्हें वीरता, धीरता, राष्ट्रीयता एवं कर्तव्यपरायणता का नवीन पाठ पढ़ाना ही इसका उद्देश्य है।

साथ ही 'कुंकुम' में जीवन और यौवन-सम्बन्धी मधुर गीतों का भी समावेश है जो मानो वीररस में उमड़े हुए वीरों को, जीवन-संबंधी मधुर मादक प्याले पिला-पिलाकर अपने पथ का दीवाना बना देता है। 'कुंकुम' का प्यारा नाम तथा इसके रंग की वेशभूषा को पहिनकर जब वीर समराङ्गण में निकलता है, उस समय एक नई उमंग भर लेता है, जो उसे दीपक पर पतंगे की भाँति उत्सर्ग कराकर साहित्य-संसार में अमर बना देता है। नवीनजी की ओजस्वी भावना, अदम्य साहस तथा उद्दाम प्रेरणा का यह ज्वलन्त प्रतीक है।

अपलक, रश्मिरेखा और क्वासि—ये गीत-संग्रह भी भिन्न-भिन्न

भावनाओं को ध्वनित करते हुए पाठको की हृत्तन्त्री पर सहसा गूंज उठते हैं। इन गीतो में माधुर्य, स्फूर्तिमय ओज, निष्ठा एव आनन्द का प्रवाह वह रहा है। सच तो यह है कि नवीनजी के इन गीत-संग्रहों ने ही उन्हें हिन्दी-साहित्य के उच्चकोटि के गीतकारों में प्रतिष्ठित करा दिया है। आप आज के गीतसाहित्य में प्रमुख स्थान वना चुके हैं। आज भी युवको के हृदय-पटल पर आपके ओजस्वी गीतों का प्रभाव अकित है। पाठकों के मन-मदिर में आज भी आप गूंज रहे हैं।

लगभग इन ३०० गीतों के कारण आपका सिहासन अचल हो गया है। गेय शैली की प्रधानता होने के कारण सवकी रसनाओ को इनके गीत सरस बना देते हैं। पाठक पढते-पढते मन-ही-मन गुनगुनाने लगते हैं। एक स्वाभाविक मस्ती-सी मचल उठती है, और पाठक उसी मस्ती में ऐसा झूम जाता है कि वह सचमुच आत्मविभोर हो जाता है। इन गीतों में आध्यात्मिक चिन्तन भी है, और अनुभूति की सरसता भी। जैसे भक्त भगवान् के आनन्द को पाकर—'न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा'—मुग्ध हो जाता है, उसी प्रकार इन गीतों की आध्यात्मिकता की भावनाओं के चिन्तन में भी उसे अपार आनन्द का अनुभव होने लगता है। उस आनन्द की अनुभूति इतनी सरस और मधुर होती है कि गूंगे के गुड़ की भाँति वताई नहीं जा सकती।

गीतों में अपार्थिवता का सकेत होने पर भी उसकी रसात्मकता का प्रभाव इतना स्थायी प्रतीत होता है कि पाठक उसकी प्रधानता को अनुभव करता है, और वह उसे उदात्त भाव-भूमि की ओर बलात् आकृष्ट कर देता है।

विनोबा-स्तवन—इसमें सन्त विनोवा भावे के जीवन तथा कार्य-कलापो का प्रभावशाली वर्णन किया गया है। उनके त्याग, शील, सहिष्णुता, औदार्य एव नम्रभाव आदि का समीचीन वर्णन करके, पाठको में वैसा बनने की प्रेरणा का प्रकाश भर दिया गया है। निस्संदेह आज के

में यह पुस्तक महात्मा गान्धी के चरित्र का प्रतिनिधित्व कर रही है। सन्त विनोवा के 'भूदान' की सुन्दर व्याख्या की गई है। इस यज्ञ द्वारा प्रत्येक मानव 'नारायण' का रूप बन सकता है। उदारता-मानवता का प्रतीक बनकर यह स्तवन मानव को 'देवत्व' की ओर ले जा रहा है।

प्राणार्पण—नवीनजी का यह एक खण्डकाव्य है। इसमें कानपुर के 'प्रताप' समाचारपत्र के सम्पादक, स्वनामधन्य, स्वर्गीय, अमरशहीद श्री गणेशशंकरजी विद्यार्थी के जीवनचरित की झाँकी है। हिन्दू-मुस्लिम दंगे को शान्त कराने के लिए प्रचण्ड क्रोधभरे संघर्ष में जब विद्यार्थीजी उनमें कूद पड़े तो क्रोधान्धों ने इस शान्ति के दूत की हत्या करके अमिट कलंक का टीका अपने माथों पर लगा लिया। उस समय विद्यार्थीजी के मन में एक क्षण के लिए भी यह विकल्प नहीं उठा कि मैं अपने कर्तव्य से विचलित हो जाऊँ। वे वीरों की भाँति कर्तव्य-पथ पर बलिदान हो गये और उनका स्थायी यश संसार में रह गया। उनके दिव्यालोक का एक स्थायी स्तम्भ 'प्राणार्पण' खण्डकाव्य है। इसमें इसके अतिरिक्त अनेक दार्शनिक, राष्ट्रीय एवं महात्मा गान्धी-विषयक कविताओं का भी संग्रह है जिनसे इस काव्य का मूल्य आशातीत हो गया है। लोकदृष्टि में यह एक संग्रहणीय वस्तु बन गई है।

तीन संग्रह—अभी निकट भविष्य में दोहों और फुटकर कविताओं के तीन संग्रह भी प्रकाशित होने वाले हैं, केवल समय की प्रतीक्षा है। इन पद्यों और कविताओं द्वारा हिन्दी-साहित्य का कितना कल्याण हो सकेगा, यह बात उनकी प्रकाशित काव्य-सामग्री को देखकर भावुक पाठक अनुमान कर सकेंगे।

उर्मिला महाकाव्य—इसमें कवि ने 'उर्मिला' के चरित्र का चित्रण एक विचित्र प्रकार से किया है, अर्थात् उर्मिला को निराशावाद का प्रतीक

मानकर अपनी विचारधारा व्यक्त की है। वास्तव में यह एक प्रकार से निराशावाद का काव्य है। विशेष प्रतिभा का चमत्कार इसमें नहीं पाया जाता, फिर भी कई ऐसे प्रसग हैं जिनके द्वारा यह ग्रन्थ अपना स्थान साहित्य में स्थिर रख सकेगा।

इनके अतिरिक्त 'पराजय-गीत', 'विप्लव-गान' आदि गीतों में नवीनजी ने एक जीवन-जागृति भर दी है जो हृदय में एकदम उथल-पुथल मचा देती है। 'विप्लव-गान' में आप गा रहे हैं :—

बरसे आग, जलद जल जायें,
भस्मसात् भूधर हो जायें।
पाप-पुण्य सदसद् भावो की,
धूल उड उठे दायें-बायें।
नभ का वक्षस्थल फट जाये,
तारे टूक-टूक हो जायें,
माता की छाती का मधुरस,
मय पय कालकूट हो जाये।
आंखो का पानी सूखे, हां—
वह खून की घूंट हो जाये।
एक ओर कायरता कांपे,
गतानुगति विगलित हो जाये।
अधे मूढ विचारो की वह,
अचलशिला विचलित हो जाये।
नियम और उपनियमो के ये,
बधन टूक टूक हो जायें।
विश्वम्भर की पोषक वीणा
के सब तार मूक हो जायें।
.. . .
.. ..

विश्वमूर्ति ! हट जाओ—यह
बीभत्स प्रहार सहे न सहेगा।
टुकडे टुकडे हो जाओगे,
नाशमात्र अवशेष रहेगा।
जीवनगीत भुला दो,
मिला दो मृत्युगीत के स्वर से।
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान है
निकली मेरे अन्तरतर से।

इस 'गीत' में नवीनजी ने मानो ज्वालामुखी को समेट कर शब्दों में भर दिया है, जिसकी जलती धधकती आग की लपटें, संहार करने के लिए अशान्त हो रही हैं। नवीनजी इन "गतानुगति की भावनाओं से, अन्धे मूढ विचारों से" इतने रुष्ट हैं कि सारे विश्व को नष्ट करके मानो उसका नवनिर्माण चाहते हैं। और उनकी संहार-पद्धति के सम्मुख यदि बाधक रूप में 'विश्वम्भर' भी आ खडा होगा तो वे उसकी भी परवाह करना नहीं चाहते, उसे भी मानो अल्टीमेटम दे रहे हैं —

विश्वमूर्ति ! हट जाओ—यह,
बीभत्स प्रहार सहे न सहेगा।
टुकडे टुकडे हो जाओगे,
नाशमात्र अवशेष रहेगा।

एक बानगी के रूप में हमने नवीनजी की कुछ पंक्तियां ऊपर दी हैं। पाठकों को इनसे उनकी ज्वलंत प्रवृत्तियों का परिचय मिल सकेगा। नवीनजी हिन्दी-साहित्य-गगन के जाज्वल्यमान मंगल-नक्षत्र हैं। हमें आपसे अभी बडी-बडी आशाएँ हैं।

प्रश्नावली

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

१ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की वंश-परम्परा का सक्षिप्त परिचय देते हुए, इन्हे आधुनिक काल का 'कर्णधार' सिद्ध कीजिए।

२ भारतेन्दु के जीवन के विषय में विस्तारपूर्वक परिचय देते हुए, इन्हें हिन्दी-साहित्य का 'आदि सफल नाटककार' सिद्ध कीजिए।

३ भारतेन्दु जी की नाट्य-रचनाओ को हम कितने रूपो में विभक्त कर सकते हैं, यह निर्देश करके इनकी 'मौलिक' रचनाओ का सक्षिप्त परिचय दीजिए।

४ भारतेन्दु जी के आविर्भाव के समय भारत की राजनैतिक एव धार्मिक परिस्थितियो पर भी प्रकाश डालिए और भारतेन्दु जैसे व्यक्तित्व की आवश्यकता पर भी अपने विचार व्यक्त कीजिए।

५. भारतेन्दु जी के विद्यासुन्दर, पाखण्डविडम्बन, मुद्राराक्षस, दुर्लभ-बन्धु और सत्यहरिश्चन्द्र नाटको के विषय में आप क्या जानते हैं ? समीक्षापूर्वक परिचय दीजिए।

६. "भारतेन्दु जी ने नाटक, प्रहसन और एकाकी भी लिखे हैं", इस उक्ति का समर्थन इनके लिखित ग्रन्थो के आधार पर कीजिए।

७ "भारतेन्दु जी ने हिन्दी-साहित्य के रगमच पर नाटक, काव्य, उपन्यास, इतिहास, सुधारक सामग्री आदि सभी प्रकार के कुसुमो की भेंट चढाई है"—आपका इस सम्बन्ध में क्या विचार है ? युक्तिप्रमाणपूर्वक निर्देश कीजिए।

८. हिन्दी-साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पुनीत सेवाओ का उल्लेख

करते हुए, इनके महत्त्व पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

९ भारतेन्दु-युग की सामान्य प्रवृत्तियो का सक्षिप्त परिचय दीजिए।

१० "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की साहित्यिक सफलता का क्या रहस्य है ?" उनकी कृतियो के आधार पर इस उक्ति की समीक्षा कीजिए।

अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध'

१. श्री प० अयोध्यासिह उपाध्याय का सक्षिप्त जीवन-परिचय देकर उनके काव्यो की विशेषताओ का वर्णन कीजिए।

२. 'प्रियप्रवास' की राधिका व प्राचीन भक्त एव शृगारिक कवियो की राधिका में क्या अन्तर है ? सप्रमाण उल्लेख कीजिए।

३ क्या 'प्रियप्रवास' एक सफल महाकाव्य है ? पक्ष-विपक्ष की युक्तियाँ देकर अपने विचार सप्रमाण प्रकट कीजिए।

४ उपाध्याय जी की भक्ति-भावना पर अपने विचार प्रकट करते हुए स्पष्ट कीजिए कि उपाध्याय जी ने श्रीकृष्ण को किस रूप में चित्रित किया है—परब्रह्म के रूप में या एक आदर्श महापुरुष के रूप में ? उनकी भक्ति-पद्धति का प्राचीन भक्त कवियो से साम्य-वैषम्य भी दिखाइए।

५. उपाध्याय जी के विरह-वर्णन की प्राचीन भक्त कवियो और गुप्त जी के विरह-वर्णन से तुलनात्मक समालोचना करते हुए प्रत्येक की विशेषता पर प्रत्यक्ष प्रकाश डालिए।

६ उपाध्याय जी के 'प्रियप्रवास' नामक काव्य का महाकाव्यत्व, प्रकृति-चित्रण, चरित्र-चित्रण, विरहवर्णन और भाषा-प्रयोग की दृष्टि से आलोचनात्मक परिचय दीजिए।

७ उपाध्याय जी के 'वैदेही-वनवास' के भावतत्त्व और कलातत्त्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

८ उपाध्याय जी की हिन्दी-साहित्य में की गई रचनाओ का निर्देश

करते हुए वैदेही-वनवास, प्रियप्रवास इन दो ग्रन्थो का विस्तार-पूर्वक परिचय दीजिए।

मैथिलीशरण गुप्त

१. गुप्त जी के जीवन का प्रादुर्भाव किन परिस्थितियो में हुआ ?—सक्षेप में वर्णन कीजिए।

२ गुप्त जी के जीवन का सक्षिप्त परिचय देते हुए उनके व्यक्तित्व का चित्रण कीजिए।

३. "खडी बोली के विकास में गुप्त जी का सर्वप्रथम स्थान होना चाहिए"—यह कथन कहाँ तक ठीक है ? विवेचन कीजिए।

४ "गुप्त जी के कथानक अतीत-इतिहास के पृष्ठो से लिये गये हैं।" —युग के साथ चलने वाले कवि ने ऐसा क्यो किया ?

५. मैथिलीशरण जी गुप्त की भाषा तथा भाव-सचय पर विवेचना कीजिए।

६. "खडीबोली का विकास गुप्त जी द्वारा हुआ—गुप्त जी के भाषा-धिकार द्वारा। गुप्त जी के भावो का स्रोत तो उनके काव्यो में यत्र-तत्र फूट रहा है। वह देश की परिस्थिति को पुन गौरवमयी बनाना चाहते हैं और उसके लिए जो प्रयास उन्होने किया है, वह सराहनीय और चिरस्मरणीय हैं"—विवेचन कीजिए।

७ क्या यशोधरा के सम्बन्ध में गुप्त जी एक मान्य धारा प्रस्तुत कर पाये हैं ? उल्लेख कीजिए।

८. " 'द्वापर' ने सर्वतोमुखी क्रान्ति का तथा 'नहुष' ने 'जीवन के उत्थान-पतन' की धारा का प्रचार किया है।" समालोचना कीजिए।

९ "गुप्त जी अपना सिद्धान्त 'कला जीवन के लिए है' मानते हैं।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।

१० 'अनघ' को गुप्त जी ने किस विचारधारा से प्रेरित होकर लिखा है, संक्षिप्त आलोचना करते हुए कवि की मानसिक धाराओं का स्पष्टीकरण कीजिए।

११. 'साकेत' ने गुप्त जी में कौन-कौन-सी विशेषताएं पैदा कर दी है? उल्लेख कीजिए।

१२ 'साकेत' महाकाव्य की आलोचना करते हुए गुप्त जी द्वारा ध्वनित वाणी की विवेचना कीजिए।

१३. गुप्त जी का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए और विशेष कृतियों पर संक्षिप्त आलोचनात्मक टिप्पणियाँ दीजिए।

अथवा

"गुप्त जी राष्ट्रीय महाकवि हैं", यह सिद्ध करते हुए उनके पंचवटी द्वापर, यशोधरा और साकेत की संक्षिप्त आलोचना कीजिए।

१४ हिन्दी-साहित्य में मैथिलीशरण गुप्त का स्थान भारतीय संस्कृति, सुधारात्मक भाव, भाषा और प्रसादगुण-पूर्ण काव्य की दृष्टि से निर्णय कीजिए।

जयशंकर प्रसाद

१ 'प्रसाद' जी के जीवनवृत्त पर प्रकाश डालते हुए, कालक्रम की दृष्टि से उनकी रचनाओं का विभाजन कीजिए, और उनकी काव्य-सम्बन्धी विशेषताओं को भी स्पष्ट कीजिए।

२ 'प्रसाद' जी की काव्य-कृतियों का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

३ 'कामायनी' की कथा का संक्षिप्त परिचय देते हुए उसके महा-काव्यत्व और दार्शनिकता के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए।

४ 'प्रसाद' जी की विभिन्न नाट्य-रचनाओ का परिचय देते हुए उनके नाटको की विशेषताओं का वर्णन कीजिए ।

५. 'प्रसाद' जी के उपन्यास, कहानी और निवन्ध-साहित्य की चर्चा करते हुए उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा पर प्रकाश डालिए ।

६. छायावाद और रहस्यवाद का स्वरूप सोदाहरण स्पष्ट करते हुए इनका पारस्परिक अन्तर भी स्पष्ट कीजिए ।

७ जयशकर 'प्रसाद' तथा उनके साहित्य का परिचय देकर हिन्दी-साहित्य में 'प्रसाद' जी का स्थान निर्धारित कीजिए ।

८. 'कामायनी' की कथा का मूल आधार क्या है ? उसमें वर्णित दार्शनिक विचारो पर भी प्रकाश डालिए ।

६ चित्राधार, काननकुसुम, करुणालय, झरना—इन काव्या में कवि किन-किन धाराओ में वहता दिखाई दे रहा है ? विवेचन कीजिए ।

१० कवि का 'आँसू' और 'लहर' काव्यकला, भावकला एव भाषा की दृष्टि से कहाँ तक सफल माने जा सकते हैं ?

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

१ निरालाजी के प्रारम्भिक जीवन की घटनाओ का उल्लेख करते हुए सिद्ध कीजिए कि उनकी कविता 'छायावाद' का प्रतिनिधित्व करती है ।

२. निरालाजी की कविता में दार्शनिक तत्त्व का चिन्तन किस ढग से हुआ है ? विवरण-सहित लिखिए ।

३. निरालाजी के करुण चित्रण तथा प्रकृतिचित्रण के सबंध में अपने विचार स्पष्ट कीजिए ।

४. निरालाजी की कविता की विशेषताओ का आलोचनात्मक ढग से उल्लेख कीजिए ।

५ निरालाजी की साहित्यिक गतिविधियो पर विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए ।

६ निरालाजी के तुलसीदास की भाषा, विषय और शैली के आधार पर संक्षिप्त समीक्षा कीजिए ।

७ "निरालाजी हिन्दी-साहित्य में निराले ढग से ही आये हैं" सप्रमाण सिद्ध कीजिए ।

सुमित्रानन्दन पन्त

१ 'छायावाद' का जन्म किस ढग पर हुआ, उसमें पन्तजी का क्या सहयोग है ? वर्णन कीजिए ।

२ "कवि का प्रकृति-प्रेम तथा प्रकृति-चित्रण साहित्य में अनुपम हैं" आलोचनात्मक पद्धति से निरूपण कीजिए ।

३ कवि की दार्शनिक अनुभूतियो पर विवेचनात्मक प्रकाश डालिए ।

४ 'युगान्त' के कवि की विशेषताएँ स्पष्ट करते हुए सिद्ध कीजिए कि अब कवि 'जनता का कवि' बनता जा रहा है ।

५ कवि 'पन्त' के कलात्मक विकास पर अपने विचार स्पष्ट कीजिए ।

६ कवि सुमित्रानन्दन पन्त के जीवन का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनकी रचनाओ की विशेषताओ का उल्लेख कीजिए ।

७ पन्तजी की छायावादी काव्य-रचनाओ का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके 'पल्लव' और 'गुजन' के काव्य-सौन्दर्य पर विस्तृत प्रकाश डालिए ।

८. 'प्रगतिवाद' किसे कहते हैं ? पन्तजी की 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' शीर्षक काव्य-रचनाओ में प्रगतिवादी धारणाओ का किस सीमा तक समावेश हुआ है । अपने मत को सोदाहरण पुष्ट कीजिए ।

९ पन्तजी के नवीन आध्यात्मिक काव्य का सोदाहरण परिचय दीजिए ।

१० पन्तजी की काव्यधारा में समय-समय पर जो परिवर्तन हुए उनका परिचय दीजिए ।

श्रीमती महादेवी वर्मा

१. महादेवी वर्मा की काव्य-शैली में अन्य छायावादी कवियो से क्या अन्तर है ? स्पष्ट कीजिए ।

२. महादेवी वर्मा की कवित्व-शक्ति के मूल स्रोतो का वर्णन कीजिए ।

३ महादेवी वर्मा की कविता की मूल विशेषताएँ कौन-कौन-सी है ? विचारपूर्वक लिखिए ।

४. "महादेवी वर्मा का रहस्यवाद एक चेतनशक्ति की यथार्थ अनुभूति है ।" सिद्ध कीजिए ।

५. महादेवी वर्मा के कलापक्ष पर अपने विचार प्रकट कीजिए ।

६ महादेवी वर्मा के जीवन-काल का सामान्य परिचय देते हुए उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का उल्लेख कीजिए ।

७ 'छायावाद' से आपका क्या तात्पर्य है ? उसकी विशेषताओ का उल्लेख करते हुए महादेवी के काव्य के छायावादी सौन्दर्य का आलोचनात्मक परिचय दीजिए ।

८. महादेवी वर्मा प्रगतिवाद की अपेक्षा छायावाद की ओर क्यो अधिक आकृष्ट हैं ? युक्तिपूर्वक लिखिए ।

९. महादेवी के काव्य में करुणा का पूर्ण साम्राज्य लक्षित होता है, इस विषय में आपका क्या मत है ? अपने मत को पुष्ट करने के लिए आवश्यक उदाहरण भी दीजिए ।

१०. महादेवी की रचनाओ का सोदाहरण आलोचनात्मक परिचय दीजिए और उनके काव्य की प्रमुख विशेषताओ को भी स्पष्ट कीजिए ।

११ महादेवी वर्मा के 'गीत काव्य' की उत्कृष्टता का वर्णन कीजिए ।

रामधारीसिंह 'दिनकर'

१ श्रीरामधारीसिंह 'दिनकर' का परिचय देते हुए उनकी रचनाओं का भी सक्षिप्त उल्लेख कीजिए।

२ 'दिनकर' की विचारधाराओ का विशद वर्णन कीजिए।

३. रेणुका, हुकार, वापूदर्शन की सप्रमाण समीक्षा कीजिए।

४ 'रसवन्ती' और द्वन्द्वगीत' के विपयो पर आलोचनात्मक विचार प्रदर्शन कीजिए।

५ " 'दिनकर' एक क्रान्तिकारी कवि हैं"—सप्रमाण समर्थन कीजिए।

६ " 'दिनकर' का प्रतिवादियो मे उत्कृष्ट स्थान है" सिद्ध कीजिए।

७ 'दिनकर' पर सर्वाङ्गीण दृष्टि से एक विस्तृत लेख लिखिए।

माखनलाल चतुर्वेदी

१. श्री माखनलाल चतुर्वेदी का सक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुए उनकी रचनाओ का दिग्दर्शन कराइए।

२ 'हिम-तरगिणी' और 'हिम-किरीटिनी' दोनो काव्यो की सत्ता एव क्षमता का दिग्दर्शन कराते हुए, उनकी भापा का भी विवेचन कीजिए।

३. चतुर्वेदीजी की रचनाओ की सर्वाङ्गीण आलोचना कीजिए।

४ हम चतुर्वेदीजी की रचनाओ को कितने भागो में विभक्त कर सकते है ? उनका सोदाहरण विवेचन कीजिए।

५. चतुर्वेदी का हिन्दी-साहित्य मे स्थान-निर्णय कीजिए।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

१ बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का विस्तृत परिचय देते हुए आधुनिक कवियो में इनका स्थान-निर्णय कीजिए।

२ "प्रगतिवादी कवियों में आप अग्रणी हैं", इस उक्ति से आप कहाँ तक सहमत हैं ? विवेचन कीजिए।

३ हिन्दी-काव्य में 'नवीन' जी की नवीनताओं का सप्रमाण निर्देश कीजिए।

४ 'नवीन' जी की रचनाओं का निर्देश करते हुए सर्वोत्कृष्ट रचना का साहित्यिक विवेचन कीजिए।

५. 'विप्लवगान' शीर्षक का आदर्श एवं महत्त्व प्रतिपादन करते हुए उस पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।

६. नवीन जी तथा भट्ट जी की प्रगतिवादात्मक पद्धति की युक्तियुक्त समीक्षा कीजिए।

७ नवीन जी की साहित्यिक विशेषताओं का परिचय देते हुए बताइए कि वे भावी राष्ट्र के लिए कितनी उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं ?